प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास में मानव नियति का प्रश्न-अज्ञेय के विशेष संदर्भ में

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए

शोध प्रबन्ध

निर्देशक :
डा० सत्य प्रकाश मिश्र एम० ए०, डी० फिल०

हिन्दी-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्री :
(श्रीमती) चन्द्र बाला एम० ए०

हिन्दी-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

१९९०

भूमिका

युगोस्लाव उपन्यासकार इवो आन्द्रिच के शब्दों में उपन्यासों में 'मानव-नियति' की ही कहानी है जो निरंतर गढ़ी जा रही है, जिसे मनुष्य एक-दूसरे को सुनाते कभी नहीं थकते -------- कभी-कभी तो अपने को यही विश्वास दिला लिया जा सकता है कि चेतना के उषाकाल से ही हर युग में मानव-जाति अपनी साँस और नाड़ी के ताल पर अपने को वही एक कहानी निरंतर सुनाती रही है। उपन्यास अपने काल के भीतरी चेहरे को, उन चेतन-अचेतन प्रवृत्तियों और द्वन्द्वों को जो इतिहास बना रहे होते हैं, उद्घाटित करते हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में छः अध्यायों का समावेश करके विषय का पूर्णरूप से विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

प्रथम अध्याय में 'नियतिबोध और भाग्यवाद' का विवरण उनकी व्याख्यायें तथा मनुष्येतर शक्ति पर विश्वास और कर्मफलवाद पर आधारित भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोणों का समन्वय किया गया है।

अध्याय-दो में 'नियतिबोध और भाग्यवाद का अन्तर' स्पष्ट किया गया है। विज्ञान के वर्तमान युग में मनुष्य की धारणायें भी कार्य-कारण परम्परा की यथार्थ बातों में विश्वास करने को बाध्य हैं। उन्हें मानवेतर शक्तियों में अविश्वास होता जा रहा है। मनुष्य की क्रियाशीलता और संघर्ष की प्रवृत्ति निरंतर उसे विकास की ओर अग्रसित करती जा रही है। जिसके फलस्वरूप मनुष्य भाग्य के भरोसे बैठा नहीं रह सकता अपितु वह अपने पुरुषार्थ और प्रयत्नों से संसार की प्रत्येक वस्तु को अर्जित करने का सफल प्रयास करता है।

अध्याय-तीन में "साहित्य और नियतिबोध, अन्तःसम्बन्ध और अभिव्यक्ति विधान" के अन्तर्गत उपन्यासों में मनुष्य की अवधारणा का स्वरूप, उसके लक्ष्य और प्रयत्न का उद्घाटन तथा परिवेश एवं समाज में निहित उसकी भूमिका का यथोचित वर्णन किया गया है।

अध्याय-चार में, "प्रेमचन्द और उनके पूर्व के उपन्यासों में नियतिबोध" का विवरण चन्द्रकान्ता, संतति से गोदान तक की यात्रा में रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। ऐयारी, तिलिस्मी, जासूसी, ऐतिहासिक एवं सामाजिक कुछ उपन्यासों का मूल्यांकन नियति के परिप्रेक्ष्य में करने का आयास किया गया है।

अध्याय-पाँच में, "प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नियतिबोध के विविध रूप" की चर्चा नियतिवादी दृष्टिकोण से निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए विश्लेषण करने की कोशिश की गई है।

1. मानव बनाम परिस्थिति.
2. मनुष्य बनाम समाज.
3. व्यक्ति बनाम समाज.
4. व्यक्ति बनाम व्यक्तिमन.

"अज्ञेय के उपन्यासों में नियतिबोध का स्वरूप" का विवरण छठें अध्याय में किया गया है - जिसमें शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप तथा अपने-अपने अजनबी सम्मिलित हैं।

अंत में उपसंहार के अन्तर्गत पहले के छः अध्यायों के विभिन्न प्रकरणों में किये गये अध्ययन के आधार पर 'प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में मानव नियति' की संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत की गई है - अज्ञेय के विशेष संदर्भ में।

मैं डा० सत्य प्रकाश मिश्र, एम०ए०, डी०फिल०, रीडर, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की अनन्य आभारी हूँ जिनके निर्देशन एवं संरक्षण में मुझे इस शोध-कार्य को सम्पन्न करने का गौरव प्राप्त हुआ। शोध-प्रबंध को परिमार्जित एवं संयोजित करने में उन्होंने जो सहायता की उसके लिए धन्यवाद ज्ञापन करने के लिए मेरे पास सम्भवतः कोई उपयुक्त शब्द नहीं है। मैं केवल इतना ही कह सकती हूँ कि मेरे इस शोध-कार्य की सफलता का एक मात्र श्रेय उन्हें ही है।

मुझे प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी, विभागाध्यक्ष एवं प्रो० राजेन्द्र कुमार वर्मा, हिन्दी-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति सादर आभार प्रकट करने में अत्यन्त हर्ष हो रहा है, जिन्होंने इस शोध-प्रबंध के सम्पन्न होने में सदैव उत्साह वर्द्धन और विभागीय सुविधायें प्रदान कीं ।

मैं प्रो० रघुवंश, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिन्होंने समय-समय पर मुझे प्रोत्साहित किया और जिनकी प्रेरणा से यह शोध-कार्य पूरा हो सका ।

मैं हिन्दी-विभाग के अन्य सभी गुरुजनों के प्रति ससम्मान आभार व्यक्त करने में गौरव अनुभव करती हूँ जिनकी सद्भावना एवं शुभकामनायें सदैव मेरे साथ रहीं हैं ।

मैं अपनी गुरु-पत्नी श्रीमती मिश्र की ऋणी हूँ जो मुझे सदैव प्रोत्साहित करती रहीं और प्राय: अपने व्यस्त पारिवारिक जीवन में समय देती रहीं ।

मैं विश्वविद्यालय एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पुस्तकाध्यक्षों के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने मुझे अध्ययन की सुविधायें प्रदान कीं ।

मैं डा० रामजी पाण्डेय, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे आवश्यक पुस्तकों को समय-समय पर उपलब्ध कराने की कृपा की ।

मैं स्व० उमाकान्त मालवीय परिवार के सभी सदस्यों के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने मेरी इस शोध-कार्य की अवधि में बहुत सहायता की, विशेष रूप से चि० अंशु मालवीय का योगदान अत्यन्त सराहनीय रहा ।

मैं डा० आर०एस०डी० दुबे एवं डा० बालकृष्ण मालवीय के कुटुम्ब के सभी लोगों की ससम्मान प्रशंसा करती हूँ जिन्होंने सदैव मुझे प्रोत्साहित किया ।

मैं अपने पूज्य ज्येष्ठश्री प्रो0 शिवमोहन वर्मा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रति कृतज्ञ हूँ और अपने पूज्य पिताश्री मृत्युंजय लाल श्रीवास्तव, एवं अग्रजों प्रो0 महेन्द्र प्रताप श्रीवास्तव एवं श्री विनोद शंकर श्रीवास्तव को सादर आभार प्रकट करती हूँ। जिन्होंने सदैव अपनी प्रेरणा से मेरा उत्साह-वर्धन किया।

इस शोध-प्रबंध के सुरुचि पूर्ण टंकण के लिए श्री राम बरन यादव को मैं विशेष रूप से धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझती हूँ।

मैं अपने पति डा0 मुरारी मोहन वर्मा, रीडर, रसायन-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं सुपुत्रों चिरंजीव अजय और पवन को भी अपने साथ इस कृतज्ञता-ज्ञापन के पुनीत कार्य में सम्मिलित करती हूँ।

अंत में, मैं उन सभी लोगों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरे इस शोधकार्य की अवधि में सहायता की।

चन्द्रबाला

मई 1990.
इलाहाबाद.

(चन्द्र बाला)
हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय.

अनुक्रमणिका

अध्याय - एक

क. नियति और भाग्य की व्याख्यायें.

ख. मनुष्येतर शक्ति पर विश्वास और कर्मफलवाद.

ग. भारतीय और पाश्चात्य मतों में नियति
और भाग्य संबंधी मत-मतान्तर.

नियतिबोध और भाग्यवाद

क. नियति और भाग्य की व्याख्यायें

नियति

मानव द्वारा अर्जित अनन्य ज्ञान-विज्ञान के इस युग में कुछ घटनाओं का विश्लेषण करने पर निर्धारित कारणों के फलस्वरूप प्रतिफल की दिशा निर्दिष्ट आयामों न होकर पृथक रूप से घटित हो जाती है, इस असामान्यता को मानव 'नियति' स्वरूप स्वीकार करने को बाध्य हो जाता है ।

प्रामाणिक हिन्दी कोश[1] के अनुसार नियति का अर्थ होता है 'यह सिद्धांत कि जो कुछ होता है वह सबसे पहले ईश्वर द्वारा नियत रहता है और किसी प्रकार टल नहीं सकता ।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'नियम्यते आत्मा अनयेति नियतिः' अर्थात् आत्मा नियामिका शक्ति नियति है ।[2]

'तंत्रालोक' में माहेश्वराचार्य अभिनव गुप्त ने 'नियतिर्योजनां धत्ते विशिष्टे कार्य मंडले' कहकर नियति को कार्य-कारण का नियोजन करने वाली एक शक्ति के रूप में व्यक्त किया है ।[3]

प्रवृत्ति निमित्त अर्थ को लक्ष्य में रखते हुए ज्ञात होता है कि 'नियति' का प्रयोग भाग्य, दैव, अदृष्ट, भागधेय, विधि, भवितव्यता, दैष्टिकता, प्रारब्ध, कर्म और ईश्वरेच्छा के पर्याय के रूप में होता रहा है ।

अमरकोश[4] में नियति का प्रयोग इसी रूप में किया गया है :-

> दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः ।
> हेतुर्ना कारणं बीजं निदानं त्वादिकारणम् ॥

---

1. प्रामाणिक हिन्दी कोश, पृ0 697.
2. शब्द कल्प द्रुम, खण्ड 2, पृ0 886.
3. तंत्रालोक, भाग 6, पृ0 160.
4. अमरकोश, प्रथम खण्ड, वर्ग 4, पृ0 27.

महाकवि माघ[1] ने अपने काव्य में इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करते हैं :-

> असादितस्य तमसा नियतेर्नियोगा -
> दकांक्षतः पुनरप कृमेन कालम् ॥

संस्कृत ग्रन्थों में उपलब्ध 'नियति' की पूर्वोक्त व्याख्याओं से निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं ।[2]

1. नियति एक अनिवार्य एवं अपरिहार्य सत्ता है ।
2. यह सत्ता ईश्वर की शक्ति एवं इच्छा से प्रादुर्भूत होती है ।
3. यह सत्ता कार्य-कारण के नियम्य और नियामक के रूप में स्थित है तथा संसार की सभी घटनाओं का नियमन हेतु है ।
4. बुद्धि ज्ञान एवं शक्ति का प्रयोग करके हम उसके शासन का उल्लंघन नहीं कर सकते ।

सामान्यतः नियति शब्द के पर्याय के रूप में - भाग्य, दैव, अदृष्ट, भागधेय, विधि, प्रारब्ध, भवितव्यता कर्म आदि का प्रयोग साहित्य में किया जाता रहा है । प्रत्येक शब्द एक दूसरे से अत्यंत सूक्ष्म अंतर छिपाये हुए है जिनकी व्याख्या निम्न प्रकार दी गई है ।

दैव-दैवात् नियतागतम्[3] अर्थात् नियत दैव के द्वारा प्राप्त । अमरकोशकार ने इसका अर्थ भाग्य निरूपित किया है । योगवसिष्टकार[4] ने भी भाग्य के रूप में दैव नाम न किंचन दैवं न विद्यते आदि कहकर यत्र-तत्र इस शब्द का प्रयोग किया है । कुछ स्थानों पर पूर्व जन्म में किए गये शुभाशुभ कर्मों के अर्थ में भी दैव का प्रयोग मिलता है ।

---

1. माघ शिशुपाल वध, 4-34.
2. डा० राजगोपाल शर्मा, हिन्दी काव्य में नियतिवाद, पृ० 16.
3. अमरकोश : 1-1-28.
4. योगवशिष्ठ : पृ० 130.

अदृष्ट - न-दृष्टम्, दृश-क्त, न -तत् ।[1] पुण्यापुण्य रूप भाग्य, जन्मान्तरीय संस्कार किस्मत । कोई यह नहीं कह सकता कि कपाल में क्या लिखा है इसी कारण भाग्य को अदृष्ट मानते हैं ।

भागधेय - भागधेय से तात्पर्य है भाग्य, किस्मत, प्रारब्ध ।[2] हिन्दी विश्व-कोश[3] में इसकी परिभाषा 'भागेन धीयते सौवा कर्मण्यित' कहकर दी गई है । स्पष्ट है कि इस शब्द का प्रयोग भी भाग्य के अर्थ में होता है ।

विधि - शास्त्रों में विधि शब्द धर्म की उस आज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता है जिसका पालन नियमानुसार अवश्य किया जाना चाहिये । 'विधियेते सुख दुखे अनेनेति विधाकि'[4] अर्थात् विधि वह है जिसके अनुसार सुख-दुख का विधान होता है ।

प्रारब्ध - व्याकरण के अनुसार इसकी शाब्दिक व्याख्या[5] इस रूप में होती है - 'प्रकृष्टमारब्धं स्वकार्यनमनायेति' अर्थात् एक ऐसा अदृष्ट विशेष जो शरीर के द्वारा किसी कार्य का प्रारम्भ करने वाला हो ।

प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षय: ' इस शब्द का प्रयोग अदृष्ट, भाग्य और किस्मत के पर्याय के रूप में किया जाता है ।[6]

भवितव्य - भवितव्य का अर्थ है अवश्य होने वाली बात । इसका शाब्दिक अर्थ है होने योग्य किन्तु यह भाग्य के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है अथवा 'भवितव्यतानां द्वारणि भवन्ति सर्वत्र' ।[7]

---

1. हिन्दी विश्वकोश, भाग 1, पृ0 334.
2. नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ0 1016.
3. हिन्दी विश्वकोश (नगेंद्र नाथ वसु) भाग 16, पृ0 15.
4. वही, पृ0 407.
5. वही, पृ0 738.
6. डा0 राजगोपाल शर्मा, हिन्दी काव्य में नियतिवाद, पृ0 13.
7. नालन्दा विश्वसागर, पृ0 621.

नियति के पर्यायों का वर्गीकरण

उपरोक्त नियति शब्द के पर्यायों का भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है । निम्न वर्गीकरण द्वारा नियति शब्द के पर्यायों का बोध जैसे क्रिया, कर्ता, कार्य, दिव्यता, नियम आदि संदर्भों में इस प्रकार किया जा सकता है :-

क्रिया अथवा फलसूचक शब्द	कर्ताबोधक शब्द	दिव्यतासूचक शब्द	नियमबोधक शब्द
भाग्य	अदृष्ट	दैव	नियति
प्रारब्ध	विधि	सितारा	ऋत
भवितव्य	विधाता	हठ	कर्म
भावी	काल	संयोग	दैष्टिकता
होनी	नियति		अदृष्ट
होनहार	कृत		
भाग्यांश			
भागधेय			
वृत्तांत			
किस्मत			
नसीब			
तकदीर			
मुकद्दर			
ललाट रेखा			

भाग्य

व्यक्ति के हिस्से (भाग) में जो कुछ करना होता है, भोगना होता है उसे भाग्य कहते हैं ।[1] भाग्य वह अदृश्य शक्ति है जो मानव जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का संचालन करती है, जो व्यक्ति या समाज को प्रभावित करती है, जो पूर्व निर्धारित होती है, जिस पर किसी का वश नहीं चलता, जो अपरिवर्तनीय है । जिसका किसी को पूर्व ज्ञान नहीं होता इसलिये भाग्य का सम्बन्ध परोक्ष जगत से माना जाता है । मनुष्य उसके विषय में कुछ भी कहने में सर्वथा असमर्थ होता है ।

---

1. हिन्दी साहित्य कोश - डा0 धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 540.

प्रत्येक घटना और उसके परिणाम का औचित्य अथवा कारण निर्धारित कर सकने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर लें ऐसी अवस्था में ज्ञान विज्ञान का बल होते हुए भी हम भाग्य में विश्वास करने को विवश हो जाते हैं। मानव की यह विवशता सनातन है। धर्म और दर्शन पर तो भाग्य की भावना का अत्यन्त व्यापक प्रभाव पाया जाता है। दैनिक जीवन में भी हम इस भावना को अपनाये हुये हैं।

उक्त विवेचन के अनुसार भाग्य का शाब्दिक अर्थ भाग, हिस्सा या खण्ड मान लेने पर एक और दृष्टि से विचार किया जा सकता है। विश्व की समस्त वस्तुएँ हमें दो स्वरूपों में दृष्टिगोचर होती हैं। एक नित्य दूसरी अल्पकालीन। दूसरे शब्दों में समष्टि रूप वस्तुएँ और व्यष्टि रूप वस्तुएँ दोनों क्रमशः अमृत और विष रूप हैं।[1] अतः अमृत से आपूरित इस समष्टि का एक भाग या अंश ही हमें प्राप्त होता है। प्राणी को इस मिलने वाले भाग का जो स्रोत है, उसी को कुछ लोगों ने भाग्य माना है।

यद्यपि भाग्य में विश्वास करने वालों के कुछ ध्येय अवश्य होते हैं और वे इस बात पर भी गहनतम विचार करते हैं कि हमें देश को किधर ले जाना है अथवा समाज को किधर ले जाना है। परन्तु उनके सामने कुछ ऐसी मुसीबतें आ जाती हैं जिसके कारण अपने कार्यों को पूरा करने में सफलता नहीं मिलती और हारकर भाग्यवादी हो जाते हैं। वे विश्वास करते हैं कि हमारे भाग्य में यही लिखा था, इसके आगे हमारा कोई वश नहीं है। वस्तुतः भाग्य शब्द मानवीय प्रयत्न और पुरुषार्थ का खण्डन करके घटनाओं और उनके फलों को नियत करने में किसी बाहरी शक्ति, सत्ता या नियम का हाथ बतलाते हैं। उसी अर्थ को पूर्वोक्त अन्य शब्द भी भिन्न-भिन्न रूपों में प्रस्तुत करते हैं।

ईसाई धर्म के अनुसार[2] भाग्य ईश्वरेच्छा का ही दूसरा नाम है। ईश्वर सर्वशक्तिमान है, वह सर्वव्यापी है, सर्वज्ञ है। वही समस्त शक्तियों का संचालन और

---

1. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राचीन भाग्यवादी दर्शन, सा० भारत (22.5.1960), पृ० 3.

2. रिलीजिया रैलिजन एण्ड एथिक्स, पृ० 210.

नियमन करता है । इसलिए मनुष्य की सभी बातों और घटनाओं का सूत्र भी उसी के हाथों में है ।

इस्लाम धर्म[1] में भी भाग्य का ऐसा ही उल्लेख मिलता है । उनके अनुसार भाग्य एक सर्वोपरि सत्ता है जिसे किस्मत, मुकद्दर, नसीब आदि कहते हैं, जिसका आधिपत्य ब्रह्मांड के समस्त भौतिक नियमों पर स्थायी और अनन्त है । जिसके कारण पूर्व-निर्धारित समस्त घटनायें घटित होती हैं ।

भाग्य की महिमा से महाभारत[2] भरा पड़ा है । भाग्य के सम्मुख ययाति और धृतराष्ट्र दोनों ही निश्चेष्ट हो जाते हैं । भीष्म पितामह का पुरूषार्थ भी भाग्य के आगे शिथिल सा दीख पड़ता है । धर्मराज युधिष्ठिर तो सर्वथा भाग्यवादी बने हुए हैं। उनका विश्वास है कि भाग्य ही अंतिम और चरम सत्ता है । भाग्यहीन पुरूष बलवान होने पर भी धन प्राप्त नहीं कर सकता और जो भाग्यवान हैं वह बालक और दुर्बल होने पर भी धन प्राप्त कर लेता है ।

---

1. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, भाग 8 , पृ0 108 .
2. महाभारत, अनु0 पर्व, अ0 163, पृ0 323.

<u>Fate</u> - The idea of fate is found only in conditions where some attempt has been made to trace all phenamena, and more particularly the phenamena of human life to an ultimate unity. Fate indeed is precisely this unity apprehended as an inevitable necessity controlling all things; it is the absolutely inscrutable power to which all men are subject and may be either personified or represented as impersonal.

<u>Fate (Muslim)</u> - To the outstanding accidents of human life and specially to death, which it represents as happening of necessity at such and such a time and in such and such circumstances no matter what one may do to avoid it; it is, we may say a physical fatalism. In moral fatalism, it does not apply specially to death but refers to all human actions holding these to be decreed by God.

नाभागधेयः प्राप्नोति धनं सुबलवानपि ।
भागधेयान्वितस्त्वर्थान्कृशो बालश्च विन्दति ॥

धृतराष्ट्र भी किसी बात के होने या न होने में मनुष्य का नहीं भाग्य का ही हाथ मानते हैं। विधाता सूत में बंधी कठपुतली की भांति सबको नचा रहे हैं।[1]

अनीश्वरो यं पुरुषो भवाभवे सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा ।
धात्रा तु दिष्टस्यवशे किलायं तस्माद वदत्व श्रवणे धृतोहम् ॥

अंग्रेजी का 'फेट' शब्द उस विश्वास को प्रकट करता है जिसके अनुसार यह माना जाता है कि सभी घटनायें निश्चित सिद्धांत से कारण और कार्य की श्रृंखला में घटित होती रहती है।[2]

'फेट' के सम्बन्ध में ग्रीस निवासियों का होमर[3] के समय में यह विश्वास था कि भाग्य का सूत्र संचालन देवताओं के हाथ में है। किन्तु बाद में तीन देवियों के रूप में उनकी अधिष्ठात्री शक्ति की कल्पना की गई जिसको क्रूर तथा कठोर माना गया।

सारांश में भाग्य वह मनोवृत्ति है जिसके प्रभाव से मानव-जीवन में स्वतंत्रता को अवास्तविक समझा जाता है और इसमें यत्र-तत्र धार्मिक विश्वास का भी पुट है। जिसके कारण कभी-कभी भाग्य को ही ईश्वरेच्छा मान लिया जाता है।

---

1. महाभारत, उद्यो० पर्व, पृ० 389.
2. इनसाइक्लोपीडिया रेलिजन, पृ० 273.
3. डा० रामगोपाल शर्मा, हिन्दी साहित्य में नियतिवाद, पृ० 8.

Homer assumes a single fate (Moipa), an Impersonal power which makes all human concerns subject to the gods; it is not powerful over the gods, however, for 'Zeus' is spoken of as weighing, out, the fate of man.

— Encyclopaedia Britannica, Vol.9, page 109.

शब्दों के प्रयोगजन्य विविध अर्थों की विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए निष्कर्ष निकलता है कि तंत्र को छोड़कर 'नियति' का प्रयोग भारतीय दर्शन की कर्मफल-वादी धारणा से जुड़ा हुआ है जो धारणा मनुष्य के 'कर्म' के परिणाम के प्रति चिन्ता का निषेध करती है । भारतीय चिन्तनधारा कहीं भी उद्योग का निषेध नहीं करती है ; नीतिग्रन्थों में तो उद्योग को ही महत्व दिया गया है । उद्योग करने पर यदि लक्ष्य प्राप्त नहीं होता है तो कहा जाता है कि यही नियति थी । कुछ दर्शनों में निश्चित लक्ष्यवादिता भी नियतिवादिता मानी जाती है । मार्क्सवाद या बौद्धदर्शन इसके प्रमाण माने जाते हैं । साहित्य के सन्दर्भ में नियतिबोध का अर्थ होता है कि रचनाकर्म में रचनाकार को रचना का सम्पूर्णतया बोध होना । सम्पूर्ण रचना का स्पष्ट होना ही साहित्य की दृष्टि से लेखक की नियति का बोध होना है । स्वतंत्रता के पूर्व के लेखकों में नियतिबोध स्पष्ट है और बाद में कम । इसका कारण सामाजिक संदर्भ में खोजा जा सकता है । उपन्यास के भीतर यह पात्रों के कर्म और उसके परिणाम का सम्पूर्ण रचना में एक वाक्य की तरह सम्बद्ध होना ही महत्वपूर्ण है ।

ख. <u>मनुष्येतर शक्ति पर विश्वास और कर्मफलवाद</u>

सामान्य धारणाओं के अनुसार नियति एक मनुष्येतर शक्ति है जो जीव पर कभी प्रसन्न होती है और कभी क्रुद्ध । वह जीव के कर्मों का भी ध्यान रखती है तथा ईश्वर के संकेत पर भी उसका भाग्य निर्धारित किया करती है । मानवीय प्रयत्न और पुरुषार्थ उस शक्ति के विधान में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर सकती ।

ईश्वरीय शक्ति मनुष्य को किसी भी कार्य के वरण तथा संकल्प को आकस्मिक या सांयोगिक बना देता है तथा उसकी स्वतंत्रता केवल संयोग या दैवयोग प्रतीत होती है । मनुष्य पहले से अपने कार्यक्रम एवं योजनाओं को निश्चयपूर्वक निर्धारित करने में प्राय: समर्थ नहीं हो पाता क्योंकि वह स्वयं नहीं जानता कि दैव या ईश्वर उसे किस विशेष क्षण में क्या करवायेगा ।

> अघटितघटितं घटयति सुघटितघटितानि दुर्घटीकुरुते ।
> विधिरेव तानि घटयति यानि पुमान्नैव चिन्तयति ॥[1]

---

1. डा० संगमलाल पाण्डेय, नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण, पृ० 43.

अघटित होने योग्य की विधि घटित कराता है और सुघटित को दुर्घटित कर देता है। पुरुष घटना चक्र का विचार नहीं कर सकता है। विधि ही उसको घटित कराता है।

मनुष्य की मानवेतर शक्ति के सामने विवशता का स्वीकार उसके मूल में है।

कर्मफलवाद

नियति को ईश्वर की इच्छा या विधान घोषित करने वाले कुछ लोग यह मानते हैं कि ईश्वर जीव का भाग्य उसके कर्मों के अनुरूप ही नियत करता है। अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का फल बुरा होता है। कर्म का फल अनिवार्य है। 'स्वकर्मसूत्र-ग्रथितो हि लोक:' अर्थात् लोक अपने कर्म सूत्र से बंधा हुआ है। जिस प्रकार प्राकृतिक जगत कार्य-कारण के नियम से बंधा है वैसे ही मानवीय व्यापार या नैतिक जगत कर्मफल के नियम से प्रतिपादित होता है। इस सिद्धांत को कर्मफलवाद कहते हैं।

हमारे वर्तमान जीवन के सुख-दुख पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप है जिसका भोग हमारे लिए अनिवार्य है। अपने पुरुषार्थ या किसी अन्य की सहायता से हम उनमें अल्पमात्र परिवर्तन नहीं कर सकते। कर्मों का फल नियत करने वाली शक्ति के प्रश्न पर इस वर्ग के नियतिवादी दो श्रेणियों में विभक्त हो गए हैं। प्रथम श्रेणी के वे नियतिवादी हैं जो यह मानते हैं कि पूर्व कृत कर्मों का फल कारण कार्य की परम्परा से स्वयं निर्धारित होता रहता है। दूसरी श्रेणी के नियतिवादी वे हैं जो ईश्वर को कर्मफल का नियतकर्ता मानते हैं। उनका विश्वास है कि ईश्वर निष्पक्ष होकर सत कर्म का सत और असत कर्म का असत परिणाम नियत करता है तथा जो कुछ एक बार नियत हो जाता है उसमें वह स्वयं भी कोई परिवर्तन नहीं कर सकता।

कर्म और फल के संबंध को सार्वभौम नियम के रूप में अभिव्यक्ति सर्वप्रथम ऋग्वेद में ऋत के सिद्धांत में मिलती है। तत्व चिंतकों ने कर्म की तीन गतियां बताई हैं - संचित, क्रियमाण (वर्तमान) और प्रारब्ध। अनेक जन्मों से संचित किए हुए पुराने कर्म को संचित कर्म कहते हैं। बहुत समय से संचित किया हुआ शुभ अथवा अशुभ कर्म वर्तमान जन्म में पुण्य एवं पाप के रूप में सामने आता है तथा प्रत्येक जन्म में प्राणियों द्वारा कर्म

संचय होता रहता है जिसे क्रियमाण कर्म कहते हैं उसी को वर्तमान कर्म कहते हैं प्रारब्ध कर्म उसे समझना चाहिये जो संचित में से प्रारम्भ हो गया है । मनुष्य के वर्तमान सुख दुख पूर्व जन्म के कर्म के ही परिणाम हैं । अतः अनेक जन्मों में संचित जितने कर्म हैं उनमें से क्रमशः एक एक कर्म का भोग प्राणियों के सामने समयानुसार आता रहता है -

कर्मणा बध्यन्ते जन्तुर्विद्यया तु प्रमुच्यते ॥[1]

भगवद्गीता में भी कहा गया है कि अच्छा कर्म करने वाला कभी दुर्गति नहीं पाता -

न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गति तात गच्छति ।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी मानस में इसको स्पष्ट किया है -

जो जस करै सो तस फल चाखा ।

सूर, मीरा, कबीर आदि सन्तों ने इस मान्यता को स्वीकार किया है -

करम गति टारे नहीं टरी ।

कर्म कभी बिना भोग के नष्ट नहीं होता है । शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के किए गये कर्मों को अवश्य भोगना पड़ता है -

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥[2]

मनुष्य की नियति का संबंध कितना मनुष्य से जुड़ा है और कितना नहीं जुड़ा है, इनके बीच का द्वन्द्व मानव नियति का प्रमुख द्वन्द्व है । मनुष्य या पात्र अपने कर्मों से अपने नियति का साक्षात्कार करते हैं, और नहीं भी कर पाते हैं । परिवेश को बदलने के क्रम में या स्वयं अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के क्रम में भी चरित्र, पात्र व्यक्ति की नियति का

---

1. महाभारत, शा०प०, 240, 7.
2. डा० संगमलाल पाण्डेय, नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण, पृ० 43.

साक्षात्कार होता है। व्यक्ति की नियति और मनुष्य की नियति में भी अन्तर होता है। मानव-नियति स्वतंत्रता, स्वाधीनता आदि मूल्यों के महत्वपूर्ण प्रतिफलों से जुड़ी होती है। रचना में व्यक्ति की नियति, मानव नियति का पर्याय बनकर बहुत बड़ी रचना का कारण बनती है।

ग. भारतीय और पाश्चात्य मतों में नियति संबंधी मत-मतान्तर

नियतिवाद विश्व के प्राचीनतम विचारधाराओं में सर्वोपरि है। पूर्वी जगत में विशेष रूप से भारत में सबसे पहले नियतिवाद का चिंतन दार्शनिक स्तर पर हुआ। नियतिवाद के संबंध में पाश्चात्य मान्यताओं में कुछ भिन्नता पाई जाती है। अतः भारतीय एवं पाश्चात्य मतों में नियति की पृथक-पृथक रूप से विवेचना प्रस्तुत की जा रही है।

भारतीय मत

महर्षि बाल्मीकि कृत रामायण में नियति को संसार की उत्पत्ति का कारण कर्म का साधन तथा प्राणि मात्र का मूल प्रेरक तत्व घोषित किया है -

नियतिः कारणं लोके नियतिः कर्मसाधनम् ।
नियतिः सर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम् ॥[1]

योगवशिष्ठ ग्रन्थ के द्वितीय, तृतीय, पंचम एवं षष्ठ प्रकरणों में कुछ अधिक विस्तार से नियति की चर्चा की गई है। द्वितीय प्रकरण के ग्रन्थकार ने बताया है कि -

यथास्थितं ब्रह्मतत्वं सत्ता नियतिरुच्यते ।
सा विनेतुर्विनेतृत्वं सा विनेयविनेयता ॥[2]

इसका आशय यह है कि नियति व्यापक ब्रह्म की एक ऐसी सत्ता है जो सर्वत्र सम रूप से स्थित है। कार्य कारण के नियम्य और नियामक रूप की स्थिति उसी में है।

---

1. बाल्मीकि रामायण, कि0का0, 25-4.
2. योगवशिष्ठ, प्रकरण 2, सर्ग 10, श्लोक 1.

नियति के भारतीय मत का अध्ययन दार्शनिक पृष्ठभूमि में निम्न शीर्षकों में किया गया है ।

1. <u>वैदिक दर्शन</u>

यजुर्वेद-संहिता का अंतिम अध्याय ईशावास्योपनिषद् का नाम सबसे पहले आता है जिसके प्रथम श्लोक में ही ईश्वर की जगत में सर्वव्यापकता प्रतिपादित करता हुआ कहा गया है कि ईश्वर जो देता है उसी का भोग करो । इसके प्रथम श्लोक के अनुसार -

> ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत् ।
> तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यचिद् धनम् ॥[1]

इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ यह जगत है सब ईश्वर से व्याप्त है । उस ईश्वर के द्वारा तुम्हारे लिए जो त्याग किया गया है, अथवा प्रदान किया गया है, उसी को भोगो । किसी के भी धन की इच्छा मत करो ।

महाभारत में श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मों की सिद्धि के लिए सांख्य सिद्धांत का विवरण देते हुए अधिष्ठान कर्त्ता, करण, चेष्टा एवं दैव का महत्व बतलाया है । यह दैव नियति का पर्याय है -

> अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
> विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ॥[2]

महाभारत की एक कथा दृष्टांत स्वरूप नियति की रूपरेखा काल, मृत्यु, कर्म से संबंध स्थापित करता है - एक बालक की मृत्यु सर्प दंश से हो जाती है तथा एक व्याध द्वारा सर्प पकड़ लिया जाता है । कुछ स्पष्टीकरणों के पश्चात् जब मां को यह आभास होता है सर्प मृत्यु का मात्र एक कारण है और मृत्यु काल के वशीभूत है तथा काल

---

1. ईशावास्योपनिषद्, श्लोक 1.

2. गीता, अध्याय 18, श्लोक 14.

उस बालक के पूर्व जन्म के संचित कर्मों का फल है अतः वह सर्प को छोड़ने का आदेश दे देती है और यह स्वीकार करती है कि बालक की मृत्यु ही उसकी नियति है ।

महाभारत में कर्म का महत्व भी अनेक स्थलों पर उद्घाटित किया गया है कर्म से प्राणी बांधा जाता है और विद्या से उसका छुटकारा हो जाता है । कर्म की पकड़ इतनी गहरी है कि उससे जन्म-जन्मांतर में भी छुटकारा नहीं मिलता । पूर्व की सृष्टि में प्रत्येक प्राणी ने जो-जो कर्म किए होंगे ठीक वे ही कर्म उसे ।चाहे उसकी इच्छा हो या न हो फिर-फिर यथापूर्वक प्राप्त होते रहते हैं शान्ति पर्व में भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं - हे राजन् यदि यह दीख पड़ किसी व्यक्ति को उसके पाप कर्मों का फल नहीं मिला तो समझना चाहिये कि वह फल उसके पुत्रों, पौत्रों और प्रपौत्रों को भोगना पड़ेगा । वास्तव में कर्मवाद भारतीय दर्शनों में अधिकांशतः दर्शनों का प्रमुख स्वर रहा है । वैदिक साहित्य में भी कर्मवाद की ही महत्ता गायी गई है, भाग्यवाद अथवा नियतिवाद वहाँ ढूढने पर भी नहीं मिलेगा । हमारे सुश्रुत नियति न मानते थे उनका यहाँ तक विश्वास था कि जो लोग नियति मानते हैं वे बुद्धिमान नहीं, क्योंकि ऐसा विश्वास रखकर कोई भी सांप के मुंह में नहीं घुसता कि कपाल में जो लिखा है वह अवश्य होगा ।

उपरोक्त वर्णनों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष में जहाँ एक ओर भाग्यवादी भावना का प्रचार प्रसार था, वहीं दूसरी ओर कर्मवाद भी व्यापक रूप से प्रचलित था यह कर्मवाद भाग्यवाद से कोसों दूर था । पश्चिम में जिस कार्य कारणहीन भाग्यवाद का विकास हुआ भारतीय कर्मवाद में उसकी झलक मिलनी भी मुश्किल है । कर्मवाद एक सर्वथा वैज्ञानिक सिद्धांत रहा है जो कार्य और कारण की परम्परा को लेकर चला, इसके अधिष्ठाता देव वरुण का वर्णन अनेक स्थलों पर किया गया है । अतः भारतवासी मूलतः कर्म के पुजारी थे और इनके इस कर्मवाद को भाग्यवाद कदापि नहीं कहा जा सकता ।

कर्मणा बध्यन्ते जन्तुर्विधया तु प्रमुच्यते ।।[1]

येषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्या प्रतिपेदिरे ।
तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः बहरि ॥[1]

पापं कर्मकृतं किंचिदिति तस्मिन् दृश्यते, नृपते तस्य
पुत्रेषु पौत्रेस्वपि च नप्तृषु ॥[2]

2. बौद्ध दर्शन

बौद्ध दर्शन के अनुसार जीवन का चरम लक्ष्य - निर्वाण है । निर्वाण उनका उच्चतम या निरपेक्ष तत्व भी है । बौद्ध दर्शन "दैवं पुरातन कर्म"[3] कहकर भाग्य और उसके कारण मिलने वाले सुख-दुःख को जीव कृत कर्मों का फल घोषित करता है । बौद्ध मत में भी कर्म की प्रधानता की विशद् व्याख्या मिलती है । व्यक्ति अपने कर्मों द्वारा स्वयं अपनी नियति का निर्धारण करता है । संघ के नियमों का पालन करते हुए प्रत्येक क्षण मानव अहिंसा, परोपकार, आदि सत्कर्मों के अनुसार अपने भाग्य का विधाता स्वयं बनता है । कर्म का आधार व्यक्ति की नैतिक इच्छा-शक्ति और उसके अनुरूप कार्यों पर निर्भर करता है । आत्मानुशासन, सौजन्यता, सहृदयता, दया, करुणा, स्नेह आदि के अनुशीलन से मनुष्य शुभ-कर्मों के प्रतिफल अर्जित करता है । इस प्रकार अपने अच्छे एवं बुरे कर्मों के आधार पर जो प्रतिफल शुभ अथवा अशुभ प्राप्त होता है उससे किसी को छुटकारा मिलना संभव नहीं है । अतः बौद्ध परम्परा के अनुसार कर्म ही नियति की आधारशिला है जिसका मनुष्य स्वयं निर्माण करता है ।

बौद्ध अनुयायियों के महायान एवं हीनयान दोनों ही मार्गों के निर्देश नियति की मान्यता को मानव मात्र के द्वारा अर्जित निष्काम कर्म के शक्ति के फलस्वरूप निर्वाण प्राप्त करने में सफल कारण मानते हैं ।[4]

---

1. महाभारत शांति पर्व, 231-48.
2. वही, 128 - 21.
3. डा० रामगोपाल शर्मा, हिन्दी काव्य में नियतिवाद, पृ० 58.
4. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका 'धर्म और नीति' भाग 5.

3. जैन दर्शन

जैन दर्शन में जीव और कर्म के संबंध को अनादि माना गया है ।[1] जैन सिद्धांतों के अनुसार मनुष्य द्वारा जो भी कर्म प्रतिपादित होते हैं उन्हें वह पुण्य अथवा पाप की श्रेणी में संचित करता जाता है । शुभ अथवा अशुभ कर्मों के संचित होने पर शरीर त्याग के पश्चात् पुनः दूसरे जीव में रूपांतरित होता है संचित शुभ कर्मों के प्रतिफल जीव देवता अथवा मनुष्य का रूप प्राप्त करता है जबकि अशुभ कर्मों से पशु पक्षी अथवा पौधों का स्वरूप प्राप्त करता है । जैन परम्परा में कर्मों को परिष्कृत करने हेतु इन्द्रियों के अनुशासन एवं तप के जीवन निर्वाह की शिक्षा दी गयी है ।

4. मक्खलि गोशाल का मत

महात्मा बुद्ध एवं महावीर स्वामी के समकक्ष मक्खलि गोशाल नामक एक प्रसिद्ध दार्शनिक था जिसने वास्तविकता को अपने सिद्धांतों में बतलाया । वह जीव के सुख दुख को अकारण मानते हैं ।[2] उनके मतानुसार न ईश्वर किसी घटना का कारण है न जीव के जन्मान्तरीय कर्म अपितु स्वतः ही सभी घटनायें घटित होती रहती हैं जो भवितव्यता है - नियति - वह सभी पदार्थों एवं जीवों को नियंत्रित रखती है । गोशाल का मत है कि प्राणियों का कोई हेतु कोई प्रत्यय नहीं । बिना हेतु के ही प्राणी संक्लेश को प्राप्त होते हैं । प्राणियों की चित्त विशुद्धि का कोई हेतु कोई प्रत्यय नहीं। बिना हेतु के ही प्राणी विशुद्ध होते हैं । बल नहीं, वीर्य नहीं, पुरुष की दृढ़ता नहीं, पुरुष पराक्रम नहीं । सभी तत्व, सभी प्राणी, सभी भूत, सभी जीव वश-बल वीर्य के बिना ही नियति के वश में सुख-दुख अनुभव करते हैं ।

5. षड् दर्शन

सांख्य, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा, योग, न्याय तथा उत्तर मीमांसा नामक आत्मवादी षड् दर्शनों का भी विवेचन करना नियति के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण होगा ।

---

1. रामगोपाल शर्मा, हिन्दी काव्य में नियतिवाद, पृ0 57.
2. राहुल सांस्कृत्यायन, दर्शन-दिग्दर्शन, पृ0 488.

इनमें से प्रथम तीन दर्शन अनीश्वरवादी हैं तथा शेष तीन ईश्वरवादी हैं ।

।अ। सांख्य दर्शन

सांख्यकार कपिल ने आत्मा को निष्क्रिय माना है । उन्होंने जड़ प्रकृति को नित्य मानकर जगत की सभी वस्तुओं को उसी का विकार बतलाया है । उनके विचार से समस्त पदार्थों का उत्पाद एवं विनाश पुरुष की समीपता मात्र से प्रकृति में उत्पन्न क्रिया के रूप में होता है । ईश्वरेच्छा एवं प्रारब्ध-भोग का उनके मत में स्पष्ट निषेध है ।

।आ। वैशेषिक दर्शन

वैशेषिक दर्शन के रचयिता कणाद आत्मवादी हैं, किन्तु ईश्वर के लिए उनके दर्शन में भी कोई स्थान नहीं । उन्होंने दृष्ट हेतु से सिद्ध न होने वाली घटनाओं के लिए अदृष्ट की कल्पना की है । कर्म-फल में उन्हें विश्वास है किन्तु उसका नियंत्रण उन्होंने उसी अदृष्ट के हाथ में माना है ।[1]

।इ। पूर्व मीमांसा

इस ग्रन्थ में दार्शनिक विवेचन की अपेक्षा वैदिक कर्मकाण्ड सम्बन्धी विरोधों को मिटाने की अधिक चेष्टा की गई है । जीव के भाग्य को जैमिनी ने भी कर्मफल पर छोड़ा है[2] तथा उसका नियंत्रण वैशेषिक की भाँति कर्म संस्कार रूप अदृष्ट को माना है ।

।ई। न्याय दर्शन

अक्षपाद गौतम जिन्होंने न्याय दर्शन की रचना की है कर्म-फल के सिद्धांत को महत्व देते हैं । उनका कथन है कि जब हम गेहूँ के पौधे के नष्ट हो जाने पर भी उसके बीज से अगले साल नये पौधे को उगते देखते हैं उसी तरह कृत कर्मों से धर्म-अधर्म उत्पन्न होते हैं, जिनसे आगे फल मिलता है । यह धर्म-अधर्म उसी आत्मा में रहते हैं जिसने किसी शरीर में उस काम को किया है ।[3] अक्षपाद ईश्वरवादी दार्शनिक थे जो कर्मफल

---

1. राहुल सांस्कृत्यायन, दर्शन-दिग्दर्शन, पृ0 593.
2. रामगोपाल शर्मा, हिन्दी काव्य में नियतिवाद, पृ0 60.

के भोग में ईश्वर को कारण मानते हैं उसके न होने पर पुरुष के शुभ-अशुभ कर्मों का फल नहीं होता । यह सही है कि पुरुष का कर्म न होने पर भी फल नहीं होता, किन्तु कर्म यदि फल का कर्ता है तो ईश्वर उस फल का कारयिता है ।[1]

।उ। योग दर्शन

योगदर्शनकार पतंजलि ने योग के आठ अंगों का सविस्तार वर्णन किया है । ईश्वर भक्ति को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है तथा यह स्वीकार किया है कि दुःख और सुख मनुष्य द्वारा प्राप्त पाप और पुण्यों के क्रमशः प्रभाव के द्वारा मिलते रहते हैं।[2] उन्होंने यह भी माना है कि ईश्वर पर कर्म-फल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ।[3]

।ऊ। उत्तर मीमांसा ।वेदान्त सूत्र।

बादरायण के वेदान्त सूत्र द्वारा उपनिषदों की विचारधारा का ही समर्थन मिलता है । उन्होंने जीव को नित्य, चेतन एवं ब्रह्म का अंग माना है । ब्रह्म से उसे जो कर्तृत्व शक्ति मिलती है वह उसी के प्रयत्नों से कार्यपरायण होती है अतः वह स्वीकृत कर्म का फल भोगने के लिए विवश है ।[4] सभी जीव ब्रह्म का अंश होने से एक के कर्मों का फल अन्य के कर्मफल से मिश्रित हो सकता है, इस शंका को भी बादरायण निर्मूल मानते हैं, क्योंकि उनके मतानुसार ब्रह्म का अंश होते हुए भी प्रत्येक जीव अणु है[5], अतः वह जो कर्म करता है उसका फल जन्मांतर में उसे ही भोगना पड़ता है । कर्म को उन्होंने अनादि माना है तथा यह बतलाया है कि उससे उन्हीं जीवों की मुक्ति होती है जिनको ब्रह्म-विद्या प्राप्त हो जाती है किन्तु उसके लिए भी प्रारब्ध का समाप्त हो जाना आवश्यक है, अन्यथा ब्रह्मवेत्ता को भी मुक्ति नहीं मिल सकती ।[6]

---

1. राहुल सांकृत्यायन, दर्शन-दिग्दर्शन, पृ० 632.
2. योगदर्शन, 2/14.
3. राहुल सांकृत्यायन, दर्शन-दिग्दर्शन, पृ० 651.
4. वही, पृ० 676.
5. वही, पृ० 677.
6. वही, पृ० 681.

6. शैव दर्शन

शैव दर्शन के अनुसार 'शिव' को जगत के समस्त कर्मों का परम स्वतंत्र कर्ता तथा अपनी इच्छा शक्ति से समस्त जीवों के सुख-दुख का नियामक माना गया है ।[1] वे अपनी जिस शक्ति से नियमन क्रिया का संचालन करते हैं उसे शैवागमों में नियति नाम से सम्बोधित किया गया है । स्वच्छन्दतंत्र में उस नियति में समस्त विश्व के कर्म चक्र की योजना करने वाले शिव के दश रूपों की स्थिति बतलाई गई है ।[2] जिसका अर्थ निकलता है कि विश्व की घटनाओं का नियमन करने के लिए शिव अपनी नियति शक्ति के द्वारा विभिन्न रूप धारण करते हैं ।

7. शांकर वेदान्त

आदि शंकराचार्य ने वेदान्त सूत्र (उत्तर मीमांसा) का भाष्य लिखकर अद्वैतवाद का प्रसार किया ।[3] उन्होंने "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर:" अर्थात् ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है जीव ब्रह्म ही है दूसरा नहीं ।[4] उनके मत से जीव और ब्रह्म के भेद का अनुभव अवास्तविक है, भ्रम है तथा अविद्यामूलक है । समस्त दृश्यमान जगत और उसके अनुभव भी अवास्तविक हैं - माया है । जब जीव को "निर्विशेष, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, स्व-प्रकाश चिन्मात्र ब्रह्म ही मैं हूँ, यह ज्ञान हो जाता है तब वह माया भी नष्ट हो जाती है । जीव की दशा को उन्होंने उसकी मुक्ति माना है ।[5] जब तक वह मुक्ति उसे प्राप्त नहीं होती तब तक वह माया के कारण सुख-दु:ख का अनुभव करता रहता है । शंकराचार्य के मत से अज्ञानी के लिए जो नियति है, वह यही माया है तथा ज्ञानी पर इस नियति का कोई प्रभाव नहीं होता ।

---

1. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, ना0प्र0 सभा, काशी, पृ0 513.
2. रामगोपाल शर्मा, हिन्दी काव्य में नियतिवाद, पृ0 62.
3. राहुल सांकृत्यायन, दर्शन-दिग्दर्शन, पृ0 812.
4. वही, पृ0 818.
5. वही, पृ0 818.

8. भक्तिवादी दर्शन

भक्तिवादी दर्शन में द्वैतवाद मध्वाचार्य ने प्रतिपादित किया जिसमें जीव की सत्ता ईश्वर एवं प्रकृति से भिन्न होने के कारण कर्मफल की प्राप्ति सुनिश्चित मानी गई है ।[1] जब ईश्वर की कृपा होती है, तब जीव को उससे निवृत्ति मिल जाती है । ब्रह्म में 'चित्' के साथ 'चिदंश' की स्थापना करने वाले द्वैताद्वैतवाद में जिसे निम्बार्क ने स्थापित किया, ईश्वर और जीव में प्रत्यक्षतः द्वैत का अभाव होते हुए भी सागर-जल में बूंद की स्वतंत्र सत्ता के समान द्वैतभाव की नित्यता स्वीकृत होने के कारण जीव का भेद ज्ञान माया-जन्य माना गया है । अतः द्वैताद्वैतवादियों की दृष्टि में भी 'माया' ही 'नियति' है ।

विशिष्टाद्वैतवाद जिसे रामानुज ने प्रतिपादित किया जिसमें ब्रह्म और जीव का संबंध व्याप्य-व्यापक भाव मानकर समस्त दृश्य जगत में ब्रह्म की विद्यमानता स्वीकार की गयी है ।[2] इस मत के अनुसार सभी घटनाओं की मूलप्रेरक शक्ति ईश्वर है तथा उनके फलों की नियंत्रणकारिणी उसकी इच्छा है । इस प्रकार जीव का भाग्य पूर्णतः ईश्वर कृपा पर निर्भर है ।

विशुद्धाद्वैतवाद के प्रवर्तक वल्लभाचार्य के अनुसार जीव और ब्रह्म के उपर बताए हुए सभी संबंध समाप्त हो जाते हैं । न जीव पृथक रहता है न प्रकृति, सब ईश्वरमय हो जाते हैं । अद्वैतवाद की भाँति जगत मिथ्या भी नहीं रहता अपितु उसी ईश्वर का अपने ही लिए किया गया खेल बन जाता है । अतः इस मत के अनुसार सभी घटनाओं का ब्रह्म ही स्वयं कर्ता है और स्वयं ही कार्य है । वह जो चाहता है और करता है वही जीव का भाग्य है तथा उसी की कृपा से जीव को उस भाग्य फल से निवृत्ति मिलती है ।[3]

---

1. प्रेम नारायण शुक्ल, हिन्दी साहित्य में विविधवाद, पृ0 406.
2. वही, पृ0 406.
3. रामगोपाल शर्मा, हिन्दी काव्य में नियतिवाद, पृ0 64.

नियतिवाद का पाश्चात्य मत

नियति अथवा भाग्य की चर्चा पाश्चात्य देशों में भी विस्तार से की गयी है। पुरुषार्थ एवं मानवीय शक्ति पर विश्वास करने के उपरान्त भी हर काल में हर परिवेश में ऐसी विचारधारा विद्यमान रही है जो मानव पर अतिमानवीय शक्ति का नियंत्रण स्वीकार करती है।

पाश्चात्य विचारधारा के अन्तर्गत नियतिवाद को अंग्रेजी के समनार्थी के रूप में डिटरमिनिज्म, फैटालिज्म और प्रिडेस्टिनेशन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। तीनों ही शब्द मनुष्य की कार्य स्वतंत्रता को अस्वीकार करते हैं और उसकी अशक्यता का समर्थन करते हैं किन्तु तीनों शब्द तीन विभिन्न विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।[1]

(क) डिटरमिनिज्म

डिटरमिनिज्म के अनुसार भौतिक जगत् तथा मानव-जीवन के समस्त सत्य अथवा तथ्य पूर्णतः अपने कारणों पर ही निर्भर है तथा उन्हीं से नियमित हैं। कार्य और कारण की श्रृंखला ही विश्व का नियमन करती है।[2] यह विचारधारा मानव की स्वतंत्र इच्छा का अस्तित्व स्वीकार नहीं करती।[3]

---

1. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वाल्यूम 9, पृ0 109.
2. डिक्शनरी आफ फिलासफी, पृ0 73.
3. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वाल्यूम 7, पृ0 315.

The idea of an omnipotent fate over ryling all affairs of men is present in various forms in practically all religious systems -
Encyclopaedia Britannica, Vol.IX, Page 109.

Determinism - The name given to the theory that all events, even moral choices, are completely determined by previously existing causes opposed t o indeterminism or free well -

Encyclopaedia Britannia, Vol. VII, Page 315.

डिटरमिनिज्म के अनुसार मनुष्य मात्र एक माध्यम है और वह उन घटनाओं और कार्यों के लिए जिम्मेदार नहीं है जो उसके माध्यम से होते हैं। जो कुछ होना है वह तो होगा ही किन्तु सब कुछ कार्य-कारण श्रृंखला के रूप में घटित होगा। इस प्रकार समस्त घटनायें अपने कारण-कार्य संबंध से घटित होती रहती है जिनके आगे मनुष्य को विवश होना पड़ता है। इस सिद्धांत के अनुसार मनुष्य के कर्मों का दायित्व उस पर लादा जा सकता।

(ख) फैटालिज्म

फैटालिज्म 'फेट' शब्द से बना है जिसका अर्थ भाग्य होता है। इसके अनुसार जो कुछ घटित हो रहा है उसे घटित होना ही है।[1] यद्यपि यह शब्द डिटरमिनिज्म के समानार्थी शब्द के रूप में ही प्रयुक्त होता है किन्तु लक्ष्य दोनों का एक है। दोनों ही मानवीय प्रयत्न एवं पुरुषार्थ के विरोधी हैं तथा जगत् की प्रत्येक घटना का वाह्य शक्ति द्वारा नियमन व्यक्त करते हैं।

फैटालिज्म सभी घटनाओं के पीछे ऐसा पूर्व नियमन घोषित करता है जिसका कारण-कार्य-परम्परा से युक्त कोई आधार नहीं है। उसके अनुसार जो कुछ भी किसी जीव के भाग्य में पहले से निश्चित हो चुका है अथवा नियतवर्ती शक्ति का जो भी अटल नियम है, उसी के अनुसार प्रत्येक घटना होती है। कोई भी न तो उसे रोक सकता है और न बदल सकता है। इसके विपरीत डिटरमिनिज्म इस मान्यता को प्रस्तुत करता है कि प्रत्येक घटना कारण-कार्य की परम्परा में स्वतः अनिवार्य रूप से घटित होती रहती है, उसके लिए मानवीय प्रयत्न एवं पुरुषार्थ की अपेक्षा नहीं होती।

---

1. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वाल्यूम 9, पृ0 109.

Fatalism - The attitude of mind which accepts whatever happens as having been bound or decreed to happen -

Encyclopaedia Britannica, Vol. 9, Page 109.

दोनों का ही मूल स्वर है जगत् में जो कुछ भी होता है वह न तो मनुष्य के उद्योग से होता है और न रोका ही जा सकता है । दोनों में ही घटना और परिणामों के नियत करने की शक्ति मानव प्रयत्न के पहुँच के बाहर मानी गयी है ।

(ग) प्रिडेस्टिनेशन

इसके अनुसार यह विश्वास किया जाता है कि ईश्वर ने सृष्टि के पूर्व ही प्रत्येक भवितव्यता के संबंध में अपना अपरिवर्तनीय निर्णय कर दिया है, जिससे शाश्वत सुख या दुख मनुष्य के भाग्य बन गये । यह सिद्धांत मनुष्य पर दैवी कृपा को स्वीकार करता है । मनुष्य के जीवन की छोटी-मोटी घटनाएं मनुष्य की इच्छाशक्ति और स्वतंत्र निर्णय पर आधारित होती है किन्तु जहाँ तक मनुष्य के परमगति अथवा मोक्ष का प्रश्न है वह ईश्वर की इच्छा पर ही निर्भर है । न्यूटेस्टामेंट ने मानवीय युक्ति की दैवी योजना पर जोर दिया है अत: ईसाई धर्म में इस सिद्धांत का काफी प्रसार-प्रचार हुआ है ।

विश्वव्यापी विचारधारा

नियति के संबंध में विश्वव्यापी अनेक विचारधारायें मुख्य रूप से प्राप्त होती हैं । सभी विचारधाराओं के पीछे मनुष्य की मानवेतर शक्ति के सामने विवशता का स्वीकार उनके मूल में है । अधिकांश जातियों के धार्मिक विश्वासों में विभिन्न प्रकार के नियति विश्वासों ने सर्वोपरि स्थान ग्रहण किया है एवं शासन तथा ईश्वर की सत्ता के ऊपर भी अपना अंकुश लगाया है ।[1] जिस तरह भारतीय चिन्तन यह स्वीकार करता

---

1. डा० रामगोपाल शर्मा, हिन्दी काव्य में नियतिवाद, पृ० 5.

Pre-destination - The doctrine that God had eternally chosen those whome he intends to save -

Encyclopaedia Britannica, Vol. 18, Page 445.

है कि सारे प्राणी यहाँ तक कि देवता भी ब्रह्म की शक्ति के सामने बेबस है उसी तरह ग्रीक धर्म में भी नियति को ऐसी सत्ता के रूप में चित्रित किया है जिसके अधीन देवता भी हैं ।[1]

पाश्चात्य समाज में भी पूर्वी समाज की तरह नियति को भाग्य का स्वरूप ही दिया गया था और जिस तरह भारत में भाग्य के देवता ब्रह्मा की कल्पना की गई ठीक उसी प्रकार पश्चिमी जगत में भी भाग्य की देवी की कल्पना की गई ।[2]

प्राचीन युग में रोम निवासियों में भी नियतिवाद का प्रचार था । उनके अनुसार भी धार्मिक देवी देवताओं में नियति की देवी का महत्वपूर्ण स्थान था । ऐश्वर्य-दात्री और भाग्य के रूप में रोम की भाग्यदेवी पूजी जाती थीं । होमर के काव्य में नियति का संबंध उनकी धार्मिक भावनाओं से है उन्होंने नियति की सत्ता को सर्वोच्च स्वीकार किया है । रोम निवासियों के अनुसार जन्म के समय भाग्य की देवी भाग्य नियति को चर्खे द्वारा उसके जीवन की भाग्यरूपी धागों की कताई करती है जिससे उसके भविष्य की रूपरेखा निर्धारित होती है ।

ग्रीक निवासियों का भी नियति के संबंध में कुछ ऐसा ही मत है, वे मनुष्य के भवितव्यता के अवश्यम्भावी मानते हैं । उदाहरण स्वरूप नियति को मकड़ी के जाले का स्वरूप मानते हैं, कोई एक कीट अगर उस जाल में फंस जाय तो उसका सारा प्रयास व्यर्थ जाता है जितना ही ज्यादा प्रयत्नशील होता है उतनी ही बुरी तरह फंसता ही चला जाता है । अतः 'नियति' के हाथों से मनुष्य बच नहीं सकता । ग्रीकवासी नियति और प्रकृति को समान रूप से स्वीकार करते हैं और दोनों का संचालन दैवी शक्तियों द्वारा होता है ऐसा मानते हैं ।

चीनी मत के अनुसार नियति का संचालन स्वर्ग द्वारा किया जाता है जिसे किसी प्रकार बदला नहीं जा सकता और मानव जीवन की उपलब्धि इसी 'नियति' पर

---

1. डा0 रामगोपाल शर्मा, हिन्दी काव्य में नियतिवाद, पृ0 5.
2. डा0 रमाकान्त श्रीवास्तव, व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के संदर्भ में.

आधारित होती है । 'नियति' को 'जीवन' का पर्याय कहा गया है । कुछ चीनी विचारकों द्वारा इस विचारधारा में परिवर्तन दिखायी पड़ता है उनके विचार से स्वर्ग द्वारा प्राप्त अथवा निर्धारित आपदाओं को अपने प्रयासों से मानव अपने जीवन में घटित होने से बचा सकता है ।

इस्लाम धर्म में नियति की मान्यता पूर्ण रूप से स्वीकार की गयी । कुरान शरीफ में मोहम्मद साहब ने बताया है कि जन्नत में रखी किताबों में इन्सान के कार-नामों को ब्यौरेवार दर्ज किया जाता है जिसके आधार पर उसका अन्तिम फैसला किया जाता है । उसी के फलस्वरूप मनुष्य को न्याय मिलता है और उसी निर्णय के अनुसार जन्नत अथवा नरक भोगना पड़ता है । तुर्कों का दृढ़ विश्वास है कि मौत जिस जगह, जिस समय और जिस प्रकार होनी है वह पहले से ही नियत है उस पर किसी का रोक नहीं है जिसे टाला नहीं जा सकता । यदि मौत नहीं लिखी है तो दुनिया की कोई ताकत उसे मार नहीं सकती अतः इस्लाम दर्शन और नीति पूर्ण रूप से अल्लाह की इच्छा के अनुसार नियति पर आधारित है ।

--------::0::--------

अध्याय - दो

"नियतिबोध और भाग्यवाद का अंतर"

क. मनुष्य और परिवेश का सम्बन्ध.

ख. मनुष्य की क्रियाशीलता और संघर्ष का असर.

ग. मानवेतर शक्तियों पर अविश्वास.

घ. मनुष्य का नियति का साक्षात्कार.

2. (क) मनुष्य और परिवेश का संबंध

मनुष्य जिस परिवेश में रहता है उसका प्रभाव उसके जीवन पर अवश्य पड़ता है। परिवेश यानि देश, काल, समाज, जलवायु और वातावरण सभी परिवेश की सीमा के अन्तर्गत आते हैं। मनुष्य के बिना परिवेश का कोई अस्तित्व नहीं है क्योंकि परिवेश की स्थापना मनुष्यों द्वारा ही होती है।

अज्ञेय[1] स्वयं इस बात से सहमत हैं कि परिवेश जो मनुष्य के आस पास है वह केवल काल नहीं है उसका होना जितना जरूरी है उसका आसपास होना भी उतना ही जरूरी है। मनुष्य के व्यक्तित्व पर परिवेश का प्रभाव अत्यधिक पड़ता है। परिवेश बदलता है उसके साथ मूल्य बदलते हैं मनुष्य तो उस परिवेश में रहने वाला एक साधारण मानव मात्र है। मनुष्य अपने को परिवेश के मात्र अनुरूप ही नहीं बनाता वरन् वह अपने परिवेश को बदलता भी है। वह अपने प्राकृतिक तथा सामाजिक वातावरण में क्रान्ति और सुधार करता है, परिवेश को मानव जीवन के अनुरूप बनाना मानव का अभीष्ट है। मनुष्य अपने परिवेश में असहाय एवं निर्बल होकर पैदा होता है और सदा दूसरों की सहायता पर निर्भर करता है परन्तु अपने पुरुषार्थ और सामर्थ्य के द्वारा अपने को परिवेश के अनुरूप बनाता है। 'सर्जना और संदर्भ' नामक अपनी पुस्तक में अज्ञेय[2] पुन: परिवेश की समस्या को कई तरह से व्यक्त करते हैं। परिवेश यानि देशकाल यह कह देने से भी काम नहीं चलता क्योंकि इसमें एक स्थितिशीलता का आभास मिलता है जो समस्या के रूप को ही विकृत कर देता है। काल स्थिर है ऐसा कोई नहीं मानता है काल की गतिशीलता पर बल देने की जरूरत नहीं है।

डा0 देवराज[3] अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन' में मनुष्य और परिवेश के संबंध पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, आज हम नगरों आदि के जिस

---

1. अज्ञेय, सर्जना और संदर्भ, पृ0 194.
2. वही, पृ0 195.
3. डा0 देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ0 14.

कृत्रिम परिवेश में रहते हैं उसके अस्तित्व का एकमात्र कारण मनुष्य है। मनुष्य के हस्त-क्षेप के बिना यह परिवेश जो प्राकृतिक क्रियाओं के निहित उद्देश्यों से बहिर्भूत है कभी भी अस्तित्व में न आता।

मनुष्य अपने परिवेश को एक सार्थक क्रम या व्यवस्था के रूप में जानता या ग्रहण करता है। वह विभिन्न वस्तुओं जैसे सोने सिक्कों और नोटों के प्रति समान प्रति-क्रिया करता है और विभिन्न अवसरों पर उन्हीं वस्तुओं के प्रति विभिन्न प्रतिक्रियाएँ करता है। तात्पर्य यह है कि वस्तुओं तथा घटनाओं के प्रति प्रतिक्रियाएँ यांत्रिक एकरूप या सुनिश्चित न होकर परिवर्तनशील होती हैं और वस्तुओं के विभिन्न अवसरों पर बदले हुए अर्थों के अनुसार बदल जाती है। मानव निर्मित परिवेश की प्रायः प्रत्येक ऐसी चीज जो मानव जीवन के लिये महत्वपूर्ण है मानवीय सृजनशीलता में उद्भूत हुई है और उसी का आधार लेकर लगातार बनी रहती है।

सब देश कालों के मनुष्य परिवेशगत भौतिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक चीजों को भी उन्हीं मूल्यों अथवा अर्थों या प्रयोजनों की भाषा में अनूदित कर लेते हैं। परिवेश के समस्त पदार्थ भौतिक और सामाजिक जहाँ तक वे विभिन्न व्यक्तियों की जीवन स्थितियों में प्रवेश करते हैं उन अर्थों तथा मूल्यों के वाहक होते हैं जो समस्त मानव जाति के लिये वही है।[1]

कुछ वर्षों पूर्व लोगों की यह मान्यता थी कि मनुष्य के विकास में, खासतौर से उसकी बौद्धिक क्षमता उसे पैतृक वंशानुक्रम से प्राप्त होती है। परन्तु वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर इस मान्यता को अस्वीकार कर दिया गया है। मनुष्य के सर्वतोन्मुखी विकास के लिये परिवेश का योगदान महत्वपूर्ण है। दो जुड़वे बालकों को शिशु अवस्था में ही अलग-अलग परिवेश में रखा गया तथा यह पाया गया कि परिवेश की भिन्नता के कारण उनका विकास अलग-अलग ढंग से हुआ।

---

1. डा० देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 122.

स्वतंत्र देश के व्यक्तियों की मानसिकतायें, उनके विचार, व्यवहार, सृजनात्मक क्रियाशीलता आदि एक परतंत्र देश के नागरिकों से कहीं भिन्न होती हैं। प्राकृतिक एवं विस्तृत परिवेश में मनुष्य किस प्रकार शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करता है जबकि बड़े घनी आबादी वाले नगरों में जीवन कोलाहलपूर्ण परिवेश में घुटता रहता है।

मनुष्य जीवन की सफलता एवं सार्थकता परिवेश के साथ अनुरूपता कायम करने में नहीं है वरन् अपने मुताबिक परिवेश को बदलकर अपने पुरुषार्थ का परिचय देना है।

2. (ख) मनुष्य की क्रियाशीलता और संघर्ष का असर

मनुष्य एक क्रियाशील प्राणी है जो देश और काल के प्रभाव से उत्पन्न परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करता है। आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य की क्रियाशीलता की गति तीव्रतर होती जा रही है। औद्योगीकरण एवं वैज्ञानिक तकनीक द्वारा जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जो क्रांतिकारी परिवर्तन दिखाई पड़ रहे हैं उसके पीछे मनुष्य की क्रियाशीलता सक्रिय रूप से दृष्टिगोचर होती है। सामूहिक अथवा व्यक्तिगत क्रियाशीलता मानव जीवन के विकास की दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण प्रारंभिक आवश्यकता कही जा सकती है। चाहे खेत-खलिहान हो, फैक्टरी अथवा औद्योगीकरण हो, क्रियाशील व्यक्ति और समाज ही सफल होकर अपने अस्तित्व को कायम रख पाता है।

इस संसार-सिंधु में मनुष्य मात्र एक जल बिन्दु के समान है, जो जीवन में सुख, यश, वैभव आदि की प्राप्ति के लिए निरन्तर क्रियाशील रहता है। उसकी कामनायें इतनी तीव्र और बलवती होती हैं कि वह निरन्तर उसको पूरा करने का प्रयास करता है। सभी की पूर्ति कर पाना उसके लिए सम्भव नहीं होता। इसके लिए उसे समान उद्देश्य वाले अन्य मनुष्यों के साथ संघर्ष करना पड़ता है जिसमें कभी वह पराजित होता है और कभी विजय पाता है। इस प्रकार विभिन्न परिस्थितियों में उसे जूझना पड़ता है। इन संघर्षों के दौरान ही मनुष्य अपनी क्रियाशीलता द्वारा अनेक आविष्कारों, अनुसंधानों एवं उपलब्धियों को अर्जित करने में सफल रहा है। आदिम काल से लेकर आज तक का सम्पूर्ण मानव इतिहास मनुष्य की क्रियाशीलता एवं संघर्षों की गाथा

हमारे चिंतन की दिशा में भी क्रियाशीलता का प्रभाव निश्चित रूप से इंगित होता है। प्राचीन काल में जो मान्यतायें रहीं हैं आज वे भी अर्थहीन होती जा रहीं हैं। मानवेतर शक्तियों में मनुष्यों का विश्वास कम होता जा रहा है। सही अर्थों में आज मनुष्य वैज्ञानिक चिंतन के प्रभाव में आश्वस्त होकर क्रियाशील है। वे क्रियाशील राष्ट्र अथवा समाज इस युग में प्रगतिशील है जो संघर्षरत हैं चाहे वह संघर्ष गरीबी के विरुद्ध हो, अज्ञानता के विरुद्ध हो या दासता के विरुद्ध हो। प्रतिस्पर्धा की भावना से भी प्रेरित मनुष्य क्रियाशील होकर आगे बढ़ने की ललक में संघर्षरत है। अतः जीवन एक संघर्ष है, एक चुनौती है और वही व्यक्ति सफल है जो इसे मानकर - क्रियाशील है। वह भाग्य अथवा नियति के भरोसे हाथ पर हाथ रखकर आकाश की ओर कुछ पाने की आशा में टकटकी बाधे बैठा नहीं रह सकता।

अज्ञेय ने अपनी पुस्तक "हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य में संघर्ष की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "संघर्ष स्वयं यथार्थ का क्षेत्र नहीं, यथार्थ की प्रतिक्रिया का क्षेत्र है, वह प्रतिक्रिया जैसी भी हो। मनुष्य विकास क्रम का चरम बिन्दु है - इतर प्राणी अपने को प्रकृति के अनुकूल बदलते हैं पर मनुष्य अपने परिवेश को अपने अनुकूल बनाता है। इसी बात को दूसरी तरह कहकर उसके प्रासंगिक महत्व को तीव्र रूप में सामने लाया जा सकता है : इतर प्राणियों में संघर्ष नहीं होता, 'केवल मनुष्य में संघर्ष होता है। उन्होंने संघर्ष के तीन मुख्य रूप पाठकों के सामने रखे हैं जिन्हें क्रमशः डार्विनी, मार्क्सीय और फ्रायडीय कह सकते हैं। यह बहुत मोटा विभाजन है ; इसमें जैविक, आर्थिक-सामाजिक और मनोवैज्ञानिक संघर्ष की बात बतलायी गयी है।[1]

मनुष्य अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए निरन्तर संघर्ष करता रहता है। संघर्ष चाहे सामाजिक हो परिवेश के साथ हो या अन्य परिस्थितियों के साथ, मनुष्य अपने नैतिक मूल्यों को कायम रखते हुए क्रियाशील होकर सफलता के लिये प्रयास करता है। मनुष्य की क्रियाशीलता और संघर्ष का प्रभाव उसके कार्य प्रणाली में भाग्य अथवा

---

1. अज्ञेय, हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, पृ0 125.

नियति को कोई स्थान नहीं देता । क्रियाशील व्यक्ति अपने पुरुषार्थ एवं प्रयत्नों से जो कुछ जीवन में पाना चाहता है चाहे आंशिक रूप से अथवा पूर्ण रूप से पाने में सफल या असफल हो सकता है । सफल होने पर वह किसी अन्य प्रयोजन में व्यस्त होकर कुछ और पाने की आशा में जुट जाता है । विफलता की स्थिति में पुनः क्रियाशील हो जाता है, ज्यादा शक्ति और सामर्थ्य के साथ । मनुष्यों के कर्म और संबंध ही उपन्यासों में जीवन समस्याओं का निर्माण करते हैं । सजगता का बोध और अपर्याप्तता का भाव मनुष्य को अपनी नियति से जोड़ता है ।

मनुष्य समाज या परिवेश में केवल रहता ही नहीं बल्कि उसका अस्तित्व इस बात को पुष्ट करता है कि वह सोद्देश्य निवास करता है, उसकी 'ईगो' इस बात की याद दिलाती रहती है कि उसकी भी सार्थकता है । अपनी इस सार्थकता और सोद्देश्यता की प्रामाणिकता तथा अस्तित्व और ईगो की संतुष्टि के लिए वह क्रियाशील रहता है, संघर्षरत रहता है । संघर्ष प्रकृति से, परिस्थिति से, परिवेश से समाज और स्वयं अपने से भी । उसके इस संघर्ष में जहाँ एक ओर उसका अपना अस्तित्व सुनिश्चित और ईगो संतुष्ट होता है, वहीं दूसरी ओर समाज का यथार्थ अक्षुण्ण रहता है।[1]

क्रिस्टोफर काडवेल ने मनुष्य और प्रकृति के संघर्ष को यथार्थ की संज्ञा से अभिहित किया है ।[2]

मनुष्य व्यापक सामाजिक जीवन से कटकर केवल द्वीप बनकर नहीं रह सकता । व्यक्ति, सार्थक व्यक्ति अपने केवल में संतुष्ट नहीं हो जाता, केवल व्यक्तिगतता पर नहीं रुक जाता, केवल अकेलेपन को ही परम नहीं समझ लेता, केवल स्व तक ही सीमित नहीं रहता अपितु अपने वैयक्तिक जीवन को पूर्णत्व प्रदान करने के लिए उसका विस्तार करता है, फैलाकर उसे सामाजिक जीवन का स्वरूप प्रदान करता है अन्यथा उसकी मनुष्यता पर ही प्रश्नचिन्ह लग सकता है । इस प्रक्रिया में वह अपने आस-पास के

---

1. सुरेन्द्र मणि त्रिपाठी, डी०फिल० थीसिस, 1981, पृ० 19.
2. क्रिस्टोफर काडवेल, इल्यूजन एण्ड रियलिटी, पृ० 139.

संसार को अपने में समाहित कर तथा अपने को उसमें घुला-मिलाकर अपने को उसका तथा उसको अपना बनाकर अनन्य होने का भरसक प्रयत्न करता है ।[1]

2. ।ग। मानवेतर शक्तियों पर अविश्वास

धर्म-भावना अथवा ईश्वर की परिकल्पना का रूप-परिवर्तन वैज्ञानिक चिन्तन द्वारा निरन्तर होता जा रहा है । जिसके कारण सृष्टि का, या कम से कम मानव के उस संबंध का, केन्द्र ईश्वर न रहकर स्वयं मनुष्य हो गया है । अज्ञेय इस विषय पर मानव और मानवेतर के संबंध के विकास का अथ से आज तक के विश्लेषण के पश्चात् स्वीकार करते हैं कि विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ मानव का मूल्य बढ़ता गया और मानवेतर का मूल्य घटता गया है । विज्ञान ने नैतिकता को ईश्वरपरक न मानकर मानव सापेक्ष मान लिया है । ईश्वर के दरबार में सब प्राणी समान हो सकते थे; मनुष्य के दरबार में स्वभावतः वैसा नहीं हो सकता है ।[2]

विज्ञान की प्रगति ने मनुष्य को यह विश्वास दिया कि बुद्धि सब प्रश्नों का उत्तर दे सकती है । मनुष्य जाति का वैज्ञानिक नाम 'होमो सेपियंस'[3] ।ज्ञान सम्पन्न प्राणी। ही इस बात को स्पष्ट कर देता है कि विज्ञान ने मनुष्य को उसके विवेक के कारण दूसरे जीवों से विशिष्ट माना है । किसी मानवेतर शक्ति द्वारा कोई कार्य विशेष यदि सम्पादित होता है तो मनुष्य अपने विश्लेषण पद्धति से उस कार्य का उत्तर ढूंढना चाहता है । इस प्रकार अनेक मानवेतर शक्तियों द्वारा प्रदत्त कार्यों की वैज्ञानिक समीक्षा की जा चुकी है और अनुत्तरित मानवेतर क्रियाओं के भी हल ढूंढे जा रहे हैं । आकाश में उड़ने की बात, बिना गये अमुक स्थान पर क्या हो रहा है? मनुष्य हवाई जहाज निर्मित कर और दूरदर्शन के माध्यम से जानने में सक्षम हुआ । वैज्ञानिक उपलब्धियों की एक लंबी सूची बनायी जा सकती है । इन सभी वैज्ञानिक अनुसंधानों के द्वारा मनुष्य मानवेतर शक्तियों पर अविश्वास करने के लिए बाध्य हो जाता है ।

---

1. अर्नेस्ट फिशर : द नैसेसटी आफ आर्ट, पृ0 8.
2. सच्चिदानंद वात्स्यायन, हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, पृ0 18.
3. वही, पृ0 21.

वैज्ञानिक चिंतन इस बात का समर्थन करता है कि हर कार्य अथवा घटना श्रृंखलाबद्ध कारणों के फलस्वरूप घटित होती है। ग्रीष्मऋतु के बाद वर्षा का होना और वर्षा से पौधों और फसलों का लहलहाना एक वैज्ञानिक श्रृंखलाबद्ध क्रियाओं के परिणामस्वरूप हैं। आज का व्यक्ति कदाचित् यह मानने को तैयार नहीं है कि इन्द्र की कृपा से वर्षा होती है। यों तो बाढ़ की स्थिति भी कभी-कभी आ सकती है और अल्प वर्षा से सूखा भी पड़ सकता है। अतः सामान्य वर्षा, अति वर्षा और अल्प वर्षा की सम्भावित परिस्थितियों से भारतीय किसान का जीवन प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। मनुष्य इन असमान्य स्थितियों का वैज्ञानिक विश्लेषण करके बाढ़ अथवा सूखे से उत्पन्न कठिनाइयों के निराकरण हेतु अपने पुरुषार्थ द्वारा सतत प्रयत्नशील है। कितने बाँध बनाये गये तथा उन परियोजनाओं से विद्युत बनाने, सिंचाई करने और बाढ़ पर कंट्रोल रखने का कार्य लिया गया।

मनुष्य अगर मानवेतर शक्तियों पर विश्वास करके हाथ पर हाथ रखकर, संत मलूकदास की निम्न पंक्तियों को दुहराता -

'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काज।'

तो क्या इन प्रतिमानों को अर्जित कर पाना सम्भव होता ?

शिक्षा एवं वैज्ञानिक धारणाओं का प्रभाव मनुष्य के चिंतन तथा कार्य-प्रणाली पर अवश्य पड़ा है। आज गम्भीर से गभीर रोग होने पर साधारण से साधारण व्यक्ति अस्पताल की शरण में पहुँचता है जबकि सदियों पूर्व मानवेतर शक्तियों में विश्वास करने वाले व्यक्ति ओझा और तांत्रिकों के पास जाया करते थे।

2.1॥॥ मनुष्य का नियति का साक्षात्कार

मानववादियों के अनुसार सम्पूर्णतम मनुष्य ही मनुष्य का प्रतिमान है। मानव-वाद की नियतिवाद या भाग्यवाद के सभी सिद्धांतों के विरुद्ध यह मान्यता है कि अतीत से प्रतिबाधित होकर भी मनुष्य रचनात्मक वरण और कर्म की वास्तविक स्वतंत्रता रखता है और कुछ सीमाओं के साथ-साथ स्वयं अपने भाग्य का विधायक है। व्यक्ति समाज के कल्याण में योग देने वाली क्रियाओं के साथ अपने निजी संतोष, आत्म-विकास

का उचित समन्वय करने पर ही श्रेष्ठ जीवन की उपलब्धि करता है ।

मनुष्य स्वयं अपने निर्णय के लिए स्वतंत्र है, उसके अपने निश्चय के अतिरिक्त कोई नियतिवाद नहीं है । वह स्वतंत्र होने के लिये अभिशप्त है और इसी में उसका विशेष गौरव है । मनुष्य की स्वतंत्रता का अर्थ है जो कुछ वह है और जो कुछ वह करता है उन सबके लिए वह स्वयं ही जवाबदेह है, वह मशीन का महज एक पुर्जा नहीं, भाग्य या परिस्थिति का खिलौना मात्र नहीं है कठपुतली या रोबोट नहीं है ।[1]

फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक और साहित्यकार ज्यां पाल सार्त्र ने भी मनुष्य को एक स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में स्वीकार किया । मनुष्य के अतिरिक्त कोई नियम निर्माता नहीं है और इस प्रकार परित्यक्त होकर वह स्वयं अपने निर्णय लेने को विवश है । सार्त्र की विचारधारा मनुष्य की प्रतिबद्धता और कर्मशीलता की ओर इंगित करती है । अतः मनुष्य को किसी प्रत्यय से परिभाषित किया जाना सम्भव नहीं है।

मनुष्य एक कर्मशील प्राणी है इसलिए वह निरंतर क्रियाशील रहकर जीवन पथ पर संचरित है । मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है । परन्तु यदि समाज में स्थिरता नहीं तो वह वरण करने को स्वतंत्र नहीं, वह अपनी नियति का साक्षात्कार कैसे कर सकता है ?

--------::0::--------

---

1. डा0 नवलकिशोर, मानववाद और साहित्य, पृ0 138.

अध्याय - तीन

साहित्य और नियतिबोध : अन्तःसम्बन्ध और अभिव्यक्ति विधान

क. साहित्य में मनुष्य की अवधारणा का स्वरूप.

ख. मनुष्य के लक्ष्य और प्रयत्न का उद्घाटन.

ग. उपन्यासों में मानव जीवन की समग्रता का चित्रण.

घ. मनुष्य का परिवेश, समाज से परिणाम जानते हुए संघर्ष.

ङ. मानव सम्बन्ध और नियतिबोध.

च. पात्रों और चरित्रों का घटनाओं के अन्तर्गत सजग वरण.

छ. नियति का वरण और शिल्प पर प्रभाव.

3. (क) साहित्य में मनुष्य की अवधारणा का स्वरूप

साहित्य की आज सबसे लोकप्रिय विधा उपन्यास है क्योंकि मानव जीवन का सर्वांगीण उद्घाटन इसी विधा के माध्यम से सम्भव हो सका है। राल्फ फाक्स[1] के अनुसार उपन्यास केवल कथात्मक गद्य नहीं है, वह मानव जीवन का गद्य है - ऐसी कला है, जो संपूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है। प्रेमचन्द उपन्यास को 'मानव चरित्र का चित्र' मानते हैं और मानव चरित्र के रहस्यों का उद्घाटन ही उनके अनुसार उपन्यास का सर्वप्रमुख लक्ष्य है।[2]

नरेन्द्र कोहली[3] के अनुसार मानव चरित्र की ग्रंथियों को सुलझाना न तो सरल है और न ही सम्प्रति उसका सीमा निर्धारण हो सका है। मानव चरित्र के चित्र स्वरूप उपन्यास भी सीमाहीन हो जाता है, उसके परिधि विस्तार का निर्देश नहीं हो सकता। मानव चरित्र के उद्घाटन के लिए उपन्यास में उन अनेक परिस्थितियों का चित्रण अनिवार्य हो जाता है, जिसमें मानव अपनी ग्रन्थियों तथा ऊहापोह को निरावृत करे।

साहित्य के अन्य रूपों की भाँति उपन्यास में भी लेखक का रागात्मक बोध सबसे महत्वपूर्ण है। मनुष्य पर उसकी आस्था उसका सबसे बड़ा सम्बल है।[4] डा० नवल किशोर[5] के विचार से वर्तमान साहित्य चिंतन में मनुष्य-केन्द्रित अध्ययन का मुख्य स्थान है। जिसके फलस्वरूप मनुष्य की प्रकृति और आवश्यकताओं के विषय में यह दृष्टि अपनाकर आदमी सामाजिक संगठन की ऐसी पद्धतियों के बारे में सोचने का उपक्रम करता है, जिनसे व्यक्ति को स्वतंत्रतम और पूर्णतम विकास का अवसर, हर

---

1. राल्फ फाक्स, द नावेल एण्ड द पीपुल, पृ० 20.
2. प्रेमचन्द, कुछ विचार, पृ० 47.
3. नरेन्द्र कोहली, हिन्दी उपन्यास सृजन और सिद्धांत, पृ० 42.
4. आलोचना, उपन्यास अंक 13, 1954, पृ० 7.
5. डा० नवल किशोर, आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता, पृ० 11.

व्यक्ति को उसकी सम्भावनाओं के लिए वांछित दिशा लेने का मौका, मिलता हो ताकि अपनी स्वतंत्रता और प्रवृत्ति के लिए मुक्त अवकाश पाकर वह पूर्ण मनुष्य हो सके । अतः भाषिक व्यापार को बेहतर कौमी जिन्दगी की इन्सानी कोशिशों से जोड़ने पर ही साहित्य महत्व की वस्तु बनता है – वह सृजन और आस्वाद में अकेले के काम की मिल्कियत ही नहीं रहता, दुनिया को बदलने की चेष्टाओं में शरीक भी होता है ।

स्वयं मनुष्य को और संसार को समझने और वर्तमान को एक अच्छे भविष्य में रूपान्तरित करने की कामना साहित्य को दर्शन के स्तर पर ले जाती है । दर्शन भी जब अमूर्त चिन्तन को मूर्त अभिव्यक्ति देने लगता है तो साहित्य के नजदीक होता है । इसी कारण महाभारत, दर्शन, इतिहास और पुराकथासंग्रह के अतिरिक्त काव्य ग्रन्थ भी हैं और प्लेटो, रूसो, कीर्कगार्ड, नीत्से, रसेल, सार्त्र वगैरह के दार्शनिक ग्रन्थों में साहित्यिक तत्व मिलते हैं । उच्च कोटि की साहित्यिक कृतियों में प्रायः ही दार्शनिक सिद्धांत रहते हैं – प्राचीन क्लासिक रचनाओं से लेकर महत्वपूर्ण वर्तमान उपन्यासों तक । मनुष्य के प्रत्यक्ष जीवन के संवेदनात्मक पक्ष से संबंधित होने के कारण अच्छा साहित्य प्रायः हमारी मानवीयता को सम्वर्द्धित करता है ।

डा० देवराज[1] के मतानुसार मनुष्य, जो मूल्यों का वाहक और स्रष्टा है उसके जीवन दर्शन में परलोक अथवा पारलौकिक शक्तियों के लिये स्थान नहीं है । मनुष्य से ऊँची किसी सत्ता में वे विश्वास नहीं रखते और उनकी दृष्टि में मनुष्य का अध्ययन प्रकृति का अंग मानकर नहीं किया जा सकता । साहित्य के क्षेत्र में प्रकृतिवाद, भौतिकवाद का महत्व मनुष्य के परिप्रेक्ष्य में करना उचित नहीं लगता है । इसी संदर्भ में अज्ञेय के शब्दों में उपन्यास मानव के अपनी परिस्थितियों के साथ सम्बन्ध की अभिव्यक्ति के उत्तरोत्तर विकास का प्रतिनिधित्व करता है । मानव का मानसिक विकास जैसे जैसे इस संबंध की परीक्षा की ओर उत्तरोत्तर अधिक आकृष्ट हुआ

---

1. डा० देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 11.

है वैसे ही इस संबंध की अभिव्यक्ति भी उत्तरोत्तर उसके प्रति मानव के दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होती गयी है । इसलिये कहा जा सकता है कि उपन्यास में दृष्टिकोण या जीवन-दर्शन का महत्व उपन्यास की परिभाषा में ही निहित है ।[1]

डा0 रघुवंश[2] ने उपन्यास को कविता और नाटक दोनों की अपेक्षाकृत सशक्त माध्यम माना है जिसमें मनुष्य अपने समस्त आयामों और समग्र परिवेश के साथ अवतरित होने की क्षमता रखता है । उपन्यास में चित्रित मानव निरपेक्ष स्थिति में चित्रित नहीं किया जाता, अपने समग्र परिवेश में वातावरण, परम्परा तथा परिस्थिति की पृष्ठभूमि में चित्रित होता है ।

डा0 परमानन्द श्रीवास्तव[3] ने उपन्यास की भूमिका में मनुष्य की नियति के सार्थक समग्र अध्ययन को भाषा देने वाली साहित्य रूप में स्वीकार किया है । रामदरश मिश्र[4] यह मानते हैं कि उद्देश्य और स्वरूप दोनों दृष्टियों से काव्य आज के जटिल जीवन व्यापारों और चरित्रों की बहुमुखी बाहरी भीतरी गतियों को व्यक्त कर पाने में उतना सफल नहीं हो सका है, जितना उपन्यास । इसकी मूल वस्तु है वर्तमान जीवन की जटिल यथार्थवादिता । जीवन मूल्यों का संक्रमण समाज के नये संबंधों की निर्मिति उसके बीच उठते हुए अनेक प्रश्नों को भौतिक या वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने की आकुलता, नवीन भौतिक सत्यों के बीच बनती हुई मानव-चरित्र की नयी दिशाएं, ये सारी बातें उपन्यास के माध्यम से ही व्यक्त हो पाती हैं ।

3. ।ख। मनुष्य के लक्ष्य और प्रयत्न का उद्घाटन

मनुष्य अपने जीवन के लिए किसी न किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है । इस लक्ष्य की पूर्ति की सफलता, असफलता और उसके बीच की

---

1. अज्ञेय, हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, पृ0 81.
2. आलोचना, सम्पादकीय, 13. 1954, पृ0 1.
3. डा0 परमानन्द श्रीवास्तव, उपन्यास की भूमिका.
4. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ0 11.

कठिनाइयों का जीवन्त, रसमय और प्रेरणाप्रद प्रयत्नों का रूपान्तरण उसके पुरुषार्थ द्वारा सम्भव है । कला का क्षेत्र हो, विज्ञान की जिज्ञासा हो, वाणिज्य का विस्तार हो अथवा जीवन के किसी भी लक्ष्य की रूपरेखा हो, मनुष्य का निर्दिष्ट लक्ष्य बन सकता है ।

डा० देवराज[1] इस विषय का विश्लेषण करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मनुष्य अपनी प्रकृति से प्रेरित होकर ही अनेक समस्याओं पर विचार करता है । प्रायः मनुष्य उन सिद्धांतों की जानकारी प्राप्त कर लेना चाहता है जो उसके लिए आवश्यक है । फलतः वह दुनिया की सब चीजों को चाहने पर भी नहीं प्राप्त कर सकता, इसलिए उसे विभिन्न लक्ष्यों एवं विभिन्न कोटियों के सुखों में से चुनाव करना पड़ता है । जो मनुष्य जितना ही अधिक बुद्धिमान होता है वह अपने जीवन को उतना ही अधिक महत्व देता है और अपनी इच्छाओं, संकल्पों आदि के विषय में उतना अधिक सोचता है । मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसमें स्वप्न देखने और आशायें जगाने की अनन्त क्षमता है, जैसे ही वह एक लक्ष्य तक पहुँच जाता है वैसे ही एक और ज्यादा ऊँचे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए व्याकुल होने लगता है । साथ ही मनुष्य चाहता है कि वह जीवन के चरम लक्ष्य या गन्तव्य को अपनी कल्पना से पूर्णतया प्रत्यक्ष कर ले जिससे उसके प्रयत्न जीवन भर निश्चित दिशा में अग्रसर होते रहें ।

डा० रामदरश मिश्र[2] ने भी इस विषय पर युंग के विचारों की विवेचना करते हुए बताया है कि मनुष्य जीना चाहता है, वह चाहता है कि उसका अस्तित्व अमर रहे, इसी इच्छा की पूर्ति के लिये वह अनेक प्रयत्न करता है । साहित्य निर्माण उन प्रयत्नों में प्रमुख है ।

मनुष्य अपने सफल जीवन-यापन के लिए यह जानने का प्रयत्न करता है कि जीवन का अर्थ तथा लक्ष्य क्या है । मनुष्य अपने सम्मुख अपने सम्पूर्ण जीवन का चित्र

---

1. डा० देवराज, संस्कृति दार्शनिक विवेचन, पृ० 289.
2. डा० रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ० 82.

खड़ा कर लेना चाहता है ताकि वह अपने छोटे-मोटे प्रयत्नों तथा लक्ष्यों को एक उच्चतर अथवा चरम ध्येय से संबंधित कर ले। आज मनुष्य के धार्मिक विश्वास ध्वस्तप्राय हो चुके हैं और उसे दर्शन में भी विश्वास नहीं रह गया है, फलतः आज के मनुष्य के मन में जीवन के चरम लक्ष्य के संबंध में प्रायः कोई कारण नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य विभिन्न लक्ष्यों की खोजों को एक दूसरे से संबंधित नहीं कर पाता।[1] वह तो चाहता है कि वह अपने प्रयत्नों तथा शक्तियों को उचिततम दिशा में लगाये और अपने जीवन को अधिक से अधिक सफल बनाये अथवा समुन्नत करे। मनुष्य अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है, इस प्रयत्न के फलस्वरूप कभी उसे सफलता मिलती है और कभी इसमें वह असफल भी होता है, उसकी यह असफलता ही उसकी नियति है। ऐसा मानकर वह चुप नहीं बैठता अपितु निरंतर लक्ष्य प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहता है।

डा० सुरेश सिनहा[2] के विचार में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का रस, सार्थकता, संकल्प एवं खोज इसलिए है ताकि उसका जीवन दूसरे अनेकानेक जीवन से भावना के विविध सम्बन्धों से जुड़ा हुआ है। जीवन के इस पारस्परिक उलझाव में सुख भी है, संत्रास भी। यंत्रणा भी है और भविष्य के लिए आश्वासन भी। प्रत्येक के सामने विकल्प है और संकल्प लेने की क्षमता भी।

व्यक्ति के लक्ष्य और मानवीय लक्ष्य में अन्तर है। मनुष्य के लक्ष्य दोनों ही प्रकार के होते हैं। अधिकांशतः लक्ष्य वैयक्तिक इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए होते हैं। सामान्य अर्थों में तो ये श्रृंखलाबद्ध लक्ष्य होते हैं जिन्हें सोपानात्मक भी कहा जा सकता है। इसमें साध्य-साधन सम्बन्ध भी होता है। लक्ष्यों के लिए प्रयत्न तथा मानवीय लक्ष्यों के लिए प्रयत्नों में, दिशा और स्वरूप की दृष्टि से अन्तर हो जाता है। आधुनिक मनुष्य लक्ष्यों का चुनाव करने पर भी यदि अनेक विपरीत-

---

1. डा० देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 88.
2. डा० सुरेश सिनहा, हिन्दी उपन्यास, पृ० 66.

ताओं का शिकार होता है तो इसे नियति का व्यंग कहा जाता है । नियतिबोध भी प्रकारान्तर से लक्ष्यबोध ही है । मानवीय लक्ष्य बृहत्तर स्तर पर मानव-नियतिबोध के पर्याय बनते हैं । मनुष्य मात्र की अवस्थिति सुख, समृद्धि और स्वास्थ्य के प्रति चिन्ता कई समवर्ती लक्ष्यों से जुड़ी होती है जिसमें समता, स्वतंत्रता आदि मूल्य आते हैं । इस तर्क से नियतिबोध मूल्यबोध का पर्याय बन जाता है । विधाएँ इस अर्थ में मूलतः इन्हीं लक्ष्यों की संवेदनात्मक प्रकटीकरण है । उपन्यास विधा में आधुनिक होने के कारण, नियतिबोध के विविध स्तरों को रचने और सम्प्रेषित करने की विधा है ।

3. ।ग। <u>उपन्यासों में मानव जीवन की समग्रता का चित्रण</u>

उपन्यासों में मानव जीवन अपनी विविधता, विषमता और उलझनों के साथ चित्रित होता है । उपन्यासकार समग्र जीवन के तत्वों का विश्लेषणात्मक काल्पनिक संश्लेष उपस्थित करता है । अज्ञेय के विचारों में उपन्यास मानव की अपनी परिस्थितियों के साथ सम्बन्ध की अभिव्यक्ति के उत्तरोत्तर विकास का प्रतिनिधित्व करता है । इस प्रकार मानव जीवन की सम्पूर्ण व्याख्या को उपन्यास अपने में समाहित करता है ।[1]

संघर्ष प्रवण तत्वों का चित्रण समग्रता की ईकाई के रूप में प्रकट होता है । गोदान के माध्यम से प्रेमचन्द ने होरी के जीवन की समग्रता का चित्रण बड़ा ही सजीव एवं व्यापक रूप से किया है । उपन्यास का सशक्त पात्र होरी जीवन भर परिस्थितियों से संघर्ष करता रहा । कर्ज और उसकी तमाम क्रूर विडम्बनाओं से जर्जर होरी का सम्पूर्ण जीवन ही दुखों की गाथा है । होरी कहता है, "सलामी करने न जायँ तो रहें कहाँ । भगवान ने जब गुलाम बना दिया है, तो अपना क्या बस है । —— पर अब मालूम हुआ कि हमारी गरदन दूसरों के पैरों के नीचे दबी हुयी है, अकड़ कर निबाह नहीं हो सकता ।"[2]

---

1. अज्ञेय, सर्जना और संदर्भ, पृ0 139.
2. प्रेमचन्द, गोदान, पृ0 20-21.

होरी के जीवन-संघर्ष के दोनों स्तर स्पष्ट हैं, पारिवारिक और सामाजिक। एक तरफ पारिवारिक विघटन से वह क्षुब्ध है तो दूसरी ओर आत्म-सम्मान के सामाजिक प्रतिफलन के लिए रायसाहब की खुशामद करता है।

हर एक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक सूद से चैन करने या जमीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षायें उसके नन्हें से हृदय में कैसे समातीं।[1]

होरी प्रसन्न हो गया। मुट्ठी गर्म होने की कुछ आशा बंधी। चौधरी को ले जाकर अपनी तीनों कोठियाँ दिखायीं। मोल-भाव किया और पच्चीस रुपये सैकड़े में पचास बाँसों का बयाना ले लिया।[2]

मालिकों से मिलते-जुलते रहने ही का तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं। नहीं तो उसे कौन पूछता। पाँच बीघे के किसान की बिसात ही क्या।[3]

होरी किसान है, औसत भारतीय किसान जो प्रेमचन्द के ही शब्दों में ;

- किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाय, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता। ———— होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।[4]

---

1. गोदान, पृ0 11.
2. वही, पृ0 32.
3. वही, पृ0 11.
4. वही, पृ0 14.

होरी में आत्म-सम्मान का सर्वथा लोप न हुआ था । जिन लोगों के रुपये उस पर बाकी थे, उनके पास कौन मुंह लेकर जाय । -------- मगर इस गाढ़े समय में और क्या किया जाय ? रायसाहब की जबरदस्ती है, नहीं इस समय किसी के सामने क्यों हाथ फैलाना पड़ता ।[1]

होरी का भाई हीरा, उसकी गाय को जहर दे देता है, जिसके कारण उसकी मृत्यु हो जाती है । होरी, परिवार की तलाशी होने एवं अपमान के भय से दरोगा को भी रिश्वत देकर भाई को बचाने का असफल प्रयास करता है ।

होरी दीन स्वर में बोला - अब मैं क्या अरज करूं महाराज । अभी तो पहले की ही गठरी सिर पर लदी है, और किस मुंह से मांगूं ; लेकिन इस संकट से उबार लो । जीता रहा, तो कौड़ी-कौड़ी चुका दूंगा । मैं मर भी जाऊं तो गोबर तो है ही ।[2]

होरी कितना चाहता है कि किसी से एक पैसा कर्ज न ले, जिसका आता है, उसका पाई-पाई चुका दे : लेकिन हर तरह का कष्ट उठाने पर भी गला नहीं छूटता है ।[3] गला छूटने की कौन कहे छुड़ाने की चिन्ता में और फंसता जाता है ।

होरी का संघर्ष सामाजिक व्यक्तित्व के साथ वैयक्तिक व्यक्तित्व का नहीं है बल्कि सामाजिक व्यक्तित्व का समाज व्यवस्था के साथ है जिसमें जमींदार एक है तो साहूकार तीन-तीन । होरी एकाकी संघर्ष करता है ।[4]

होरी का पुत्र गोबर विजातीय स्त्री झुनिया को अपनाकर, समाज के भय से घर छोड़कर भाग जाता है । होरी और धनिया उसे अपने घर में शरण देते हैं ।

---

1. गोदान, पृ0 56.
2. वही, पृ0 66.
3. वही, पृ0 40.
4. आलोचना, उपन्यास विशेषांक 13, 1954, पृ0 146.

होरी कर्ज लेता है, उस पर बिरादरी को दण्ड देना पड़ता है । होरी टूट जाता है और मजदूरी करने लगता है ।

होरी अब दातादीन की मजदूरी करने लगा है । किसान नहीं मजूर है । दातादीन से अब उसका पुरोहित-जजमान का नाता नहीं, मालिक मजदूर का नाता है । -------- होरी ने विष का घूंट पीकर जोर से हाथ चलाना शुरू किया, इधर महीनों से उसे भर-पेट भोजन न मिलता था । प्राय: एक जून तो चबैने पर ही कटता था, दूसरे जून भी कभी आधा पेट भोजन मिला, कभी कड़ाका हो गया ।[1]

गोबर गाँव लौटता है और पुन: शहर वापस चला जाता है । जिस बेटे और बहू को लेकर होरी इस दयनीय स्थिति में पहुँच जाता है, वे भी अलग हो जाते हैं ।

होरी की दशा दिन-दिन गिरती ही जा रही थी । जीवन के संघर्ष में उसे सदैव हार हुई ; पर उसने कभी हिम्मत नहीं हारी । प्रत्येक हार जैसे उसे भाग्य से लड़ने की शक्ति दे देती थी, अब वह उस अन्तिम दशा को पहुँच गया था, जब उसमें आत्मविश्वास भी न रहा था ।[2]

होरी परिस्थिति वश मजूरी करता है, एक दिन लू लग जाने से उसकी मृत्यु हो जाती है । इस प्रकार होरी के संघर्षमय जीवन का समग्र चित्रण गोदान में मु0 प्रेमचन्द ने अत्यन्त मार्मिक ढंग से करने का प्रयास किया है ।

'बलचनमा' के जीवन की समग्रता का चित्रण अत्यन्त मार्मिक ढंग से नागार्जुन ने अपने बलचनमा नामक उपन्यास में करने का सफल प्रयास किया है । आत्मकथा-शैली में लिखा गया यह उपन्यास दरभंगा जिला के आस-पास की एक खेतिहर मजदूर की यथार्थ गाथा है । पिता की असामयिक मृत्यु के कारण बलचनमा को जमींदारों

---

1. गोदान, पृ0 119.
2. वही, पृ0 203.

के यहाँ नौकरी करनी पड़ती है। यातनाओं का जिक्र करते हुए बलचनमा बताता है- "मालिक का बहिया ।गुलाम। बनने के बाद भैंसी चराना, छोटी मालिकाइन की गालियाँ खाना, बाबू लोगों की जूठन और सड़ा हुआ खाना खाना ।"[1] ऐसे कई घटनायें उसे याद आती हैं, जब दो आमों को तोड़ने के लिए उसके बाप को एक खम्भे में बाँधकर बांस की कैली से खाल उधेड़ने का आतंक किया गया था।

फूलबाबू के सम्पर्क में बलचनमा जमींदारों के शोषण और अन्याय को समझने लगता है। - आस पास के इलाकों में दुसाध, मुसहर, चमार, खतबे, पासी, धुनियाँ, जुलाहा लोगों की बस्तियाँ थीं। मुसीबत के मारे खेत-मजदूर, आजकल भी पेट बेचते फिरते हैं और भैया, उन दिनों भी इनका यही हाल था। फूलबाबू के बाप इन्हीं गरीबों की जमीन-जायदाद हड़प-हड़प कर औकात वाले बने थे। इन लोगों का पेशा यही था। छोटी जात वाले जन-बनिहारों के पास होता ही क्या ? मगर भैया इन कसाइयों के चलते बेचारों के पास यह सब भी नहीं रह पाता। नीलाम करा लेते हैं। कुर्की हो जाती है। अदालत उनकी, हाकिम उनका, थाना-दारोगा उनका, पुलिस उनकी। गरीबों के लिए सिवाय लात जूता के और है ही क्या ? ------- बड़ी जात वालों की माया तब भी अपार थी और अब भी।[2]

फूलबाबू के साथ बलचनमा पटना जाता है और वहाँ की जिन्दगी देखता और समझता है। सत्याग्रह-आन्दोलन में फूलबाबू जेल चले जाते हैं। लौटकर आने पर पूर्ण रूप से गांधीवादी हो जाते हैं। बलचनमा उनके साथ कुछ समय बिताकर पुनः गाँव वापस आ जाता है। इधर गाँव के जमींदार के व्यवहार से एवं पुलिस की डर से भागकर पटना पहुँचता है। फूलबाबू और उनके परिचितों से कोई मदद नहीं मिलती। कांग्रेसी नेता 'राधे बाबू' को बलचनमा पकड़ता है और उनकी सेवा टहल में लग जाता है। इस दौरान, बलचनमा को सत्याग्रहियों के जीवन का समीप से परिचय मिलता है।

---

1. नागार्जुन, बलचनमा, पृ0 167.
2. बलचनमा, पृ0 99.

- वह फूलबाबू को देवता समझता है । वे राजा की तरह रहते थे और फिर गांधी जी के सोराजी बाबू बनकर फकीर बन गये थे । लेकिन आश्रम की जिन्दगी के अनुभव उसे सिखा देते हैं कि ये सोराजी हो गये तो क्या, ये तो आखिर बाबू भैया ही न । इसलिये बलचनमा के मन में बात बैठ जाती है कि "जैसे अंग्रेज बहादुर से सोराज लेने के लिए बाबू भैया लोग एक हो रहे हैं, हल्ला-गुल्ला और झगड़ा-झंझट मचा रहे हैं, उसी तरह जन-बनिहार, कुली, मजूर और बहिया खवास लोगों को अपने हक के लिए बाबू-भैया से लड़ना पड़ेगा । एक दूसरे सोराजी बाबू-भैया राधा बाबू शाही फकीर थे । शाही फकीरों की लीला अपरंपार होती है ।जैसी भगवान की। । आश्रम में लीडरों में से जो जितने बड़े खानदान के होते उनकी आवाज से उतनी ही मालिकाना गंध आती । इस तरह सोराजी बाबू-भैये भी जमींदारों की तरह शोषक और शासक वर्ग के ही निकलते हैं ।"[1]

इस प्रकार शहर और गांव का जीवन तथा समाज और सत्याग्रह आदि परिवेश से भिन्न बलचनमा फिर अपनी धरती की याद करके गांव पहुंच जाता है । विवाह और गृहस्थी के सुखी जीवन के कुछ महीनों को बिताकर किसानी में जुट जाता है । इसी बीच खेतों पर संघर्ष होता है । जमींदार, किसानों की भूमि से वंचित करने के लिए सारी ताकत लगा देते हैं । संघर्ष को बलचनमा संगठित करता है । परन्तु इस संघर्ष को जमींदार अपने ढंग से कुचल डालने की दृष्टि से एक रात सोते हुए बलचनमा पर अपने आदमियों से कातिलाना हमला करवा देता है ।

सम्पूर्ण जीवन बलचनमा, परिस्थितियों से उत्पन्न परिवेश से संघर्ष करता है परन्तु समाज की तत्कालीन व्यवस्था में सफल नहीं हो पाता । फिर भी क्रांतिकारी चेतना अन्याय और शोषण के खिलाफ किसानों में विद्रोह जाग्रत करने का प्रयास करता है ।

'अलग-अलग वैतरणी' शिव प्रसाद सिंह की एक महत्वपूर्ण कृति है । इस आंचलिक उपन्यास में एक टूटते हुए गांव की परिस्थितियों का चित्रण यथार्थ रूप से किया

---

1. बलचनमा, पृ0 106, 108.

गया है । उपन्यास के अन्तर्गत घटनाओं, पात्रों और चरित्रों की बाहुल्यता है । उपन्यासकार ने प्रत्येक चरित्र का घटना के अनुसार अलग-अलग चित्रण करने का प्रयास किया है । उपन्यास का एक सशक्त पात्र शशिकान्त, जो कर्तव्यनिष्ठ, नेक और ईमानदार युवक है शिक्षक की नियुक्ति पाकर करैता गाँव में आता है ।

हेड क्लर्क ने शशिकान्त से हँसते हुए कहा था, "आप पहले आदमी हो जो करैता स्कूल में नियुक्ति का समाचार सुनकर भी मुसकरा रहे हो । अध्यापकों में तो यह बात मशहूर है कि जिस पर अधिकारी नाराज़ होते हैं, उसका तबादला करैता स्कूल में कर देते हैं ।"[1]

कुछ महीनों के प्रयास पर भी शशिकान्त को स्कूल की दशा में खास तब्दीली नज़र नहीं आती है ।

"यहाँ का स्कूली जीवन बड़ा नीरस और 'डल' है । इससे बच्चों का पूरा विकास कभी नहीं हो सकता । मैं यह सोचता हूँ" उसने अपने दोनों वरिष्ठ सहयोगियों के चेहरे पर अपलक देखते हुए कहा - "लड़कों में आवश्यक उत्साह पैदा करने के लिए पढ़ाई-लिखाई के अलावा भी कुछ कार्यक्रम होने चाहिए ।"[2]

शशिकान्त ने लेज़िमें मंगाकर स्कूल के बच्चों को ड्रिल सिखाया । रिंगबाल जैसे खेल-कूद भी सिखाया । बच्चों में नया उत्साह संचार किया ।

शशिकान्त देख रहा था कि मासूम बच्चों के चेहरे उत्साह से लाल होते जा रहे हैं, ----- उन पर एक विस्मयकारी मुसकराहट फैल रही है । बच्चों की आँखों में अनजानी चमक आ गई है । ----- यह चमक एक अजीब तरह की अन्दरूनी आग की सूचना देती है जो इन्सान में निरन्तर जलती रहती है । परिस्थितियाँ, समाज, व्यवस्थायें और गरीबी तथा जहालत इसे निराशा की राख में ढक देती हैं ।"[3]

---

1. शिवप्रसाद सिंह, अलग अलग वैतरणी, पृ० 158.
2. वही, पृ० 165.
3. वही, पृ० 172.

इधर गाँव की राजनीति जो स्कूल के दायरे से होकर कुंवारत सिंह, जवाहिर लाल, खुदाबक्स आदि तिकड़मी व्यक्तियों के व्यूह में शशिकान्त को गिरफ्त कर लेती है ।

शशिकान्त की सफलता स्कूल के कुछ लोगों की आँखों में खटकने लगी । एक दिन जब वह अध्यापकों की तनख्वाह लेकर शहर से लौट रहा था उन्हीं लोगों ने मिलकर बुरी तरह उसे आहत किया और सारे रुपये छीन लिये । इस घटना से शशिकान्त क्षुब्ध हो जाता है और वहाँ के बिगड़ते माहौल व दलगत नीति से दुखी होकर हमेशा के लिए करैता छोड़कर चला जाता है । इस प्रकार शशिकान्त जैसे कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति की करैता सदृश्य गाँव की दलगत राजनीति में यही नियति होती है ।

3. (घ) <u>मनुष्य का परिवेश, समाज से परिणाम जानते हुए संघर्ष</u>

आदिकाल से अब तक और भविष्य में भी मनुष्य जीवन की सार्थकता उसमें निहित संघर्ष की भावना ही महत्वपूर्ण कही जा सकती है । जानवरों पक्षियों एवं अन्य जीवों से मनुष्य अलग एक अस्तित्व कायम रखने में सक्षम हुआ तो अपने विवेक और संघर्ष के प्रभाव के कारण । वैज्ञानिक युग जो आज का आधुनिक युग है उसमें मनुष्य समाज की प्राचीन रूढ़िवादी मान्यताओं एवं रीति-रिवाजों की परवाह किये बिना अपने अदम्य साहस एवं पुरुषार्थ द्वारा संघर्षरत है सृष्टि के यथार्थ के उद्घाटन में । अनेकानेक भयावह एवं दुरुह परिस्थितियों में भी चाहे वह युद्धग्रस्त परिवेश हो, असाध्य रोगों से ग्रसित हो, आर्थिक विपन्नता हो, दैवी आपदा हो मनुष्य जुटा है उसके निराकरण में और उस मार्ग में निश्चित रूप से वह उसके परिणामों का भी आकलन किये बिना नहीं रहता । संघर्ष में विफलता और आंशिक सफलता का पूर्व निर्धारण करके मनुष्य युक्तिहीन होकर अकर्मण्य नहीं बैठ सकता । विराम ही संघर्षशील व्यक्ति की मृत्यु का कारण बन सकता है ।

इस विषय की सार्थकता 'गोदान' में होरी के माध्यम से प्रेमचन्द ने सविस्तार करने का प्रयास किया है । होरी एक संघर्षरत किसान है जो उस समय की सामाजिक व्यवस्था के अधीन जमींदार और साहूकारों द्वारा लगातार शोषित किया

जाता है । उसकी हमेशा हार होती है परन्तु उस असफलता को वह सदैव विजय पर्व मानता है । वह नेक एवं ईमानदार व्यक्ति है परन्तु परिस्थितियों के फलस्वरूप जीवन संग्राम में सफल नहीं हो पाता । परिणाम का आकलन होरी भली-भाँति करता है फिर भी यत्न करता स्थितियों को सुधारने में और इस संघर्ष क्रम में वह टूटता बिखरता चला जाता है । परिवेश की दृष्टि से होरी का संघर्ष पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर पर समान रूप से चलता है । एक ओर पारिवारिक विघटन से क्षुब्ध हो जाता है, दूसरी ओर रायसाहब एवं पंचों की खुशामद करता है और उनके अन्यायपूर्ण न्याय को शिरोधार्य करता है । परिस्थितियों के जाल में फंसकर होरी की एक सामान्य किसान की हैसियत से गिरकर मजदूर बनने की नौबत आ जाती है । इस संघर्ष की लम्बी यात्रा में अपने अस्तित्व को कायम रखता हुआ होरी अपने गाँव की मिट्टी में चिरनिद्रा में सो जाता है ।

इसी संदर्भ में निर्मला का संघर्ष, परिवेश के दायरे में अद्वितीय उदाहरण होगा। आर्थिक विपन्नता की स्थिति में निर्मला की शादी एक दुहाजू व्यक्ति से हो जाती है जो तीन लड़कों का बाप होता है । पति के शंकालु स्वभाव के कारण वह अनेक यातनाओं को सहती हुई परिवार के सुखमय भविष्य की कामना करती है । निर्मला का जीवन-संघर्ष, परिस्थितियों से उत्पन्न पारिवारिक परिवेश में लगातार जूझने की करुण गाथा है ।

3.13. मानव संबंध और नियतिबोध

सभी कथा साहित्य की भाँति उपन्यासों की भी एक प्रधान विषय वस्तु स्त्री-पुरुष संबंधों का चित्रण है । स्वाधीनता के बाद के हिन्दी उपन्यास में भी यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता कि नारी के स्वाधीन व्यक्तित्व की पूरी प्रतिष्ठा हो सकी है परन्तु उसकी स्वाधीनता अभी तक एक विशेष प्रकार से चित्रित की गई है जीवन की सहज स्थिति के रूप में नहीं । नेमिचन्द जैन ने अपने पुस्तक अधूरे साक्षात्कार में स्त्री पुरुष, पति-पत्नी आदि संबंधों की व्याख्या बड़े ही सुंदर ढंग से की है । उनका मत है कि - उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों की परिकल्पना और अंकन में ऐसे बहुत से पक्ष

उभर आये हैं जो चाहे सीमित रूप में ही सही, पहले से भिन्न हैं और मानवीय संबंधों के कुछ नये आयामों का अन्वेषण करते मालूम देते हैं।"[1]

यों तो नियतिबोध और मानव-संबंध दोनों ही शब्द आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और यह संबंध विभिन्न स्तरों पर है, जो आदिकाल से चले आ रहे हैं। परन्तु कुछ संबंध तो ऐसे भी हैं जो समाज में मानव द्वारा ही बनाये जाते हैं या कुछ अन्य परिस्थितिवश भावनाओं के संवेग से सहज रूप में बन जाते हैं। स्त्री - पुरुष संबंधों का एक अन्य रूप जो हिन्दी उपन्यासों में प्रायः देखने को मिलता है वह है- परस्पर आकर्षण का। यह आकर्षण अधिकांशतः किशोर सुलभ रोमैंटिक प्रकार का होता है पर कभी-कभी वह करुणा भी अभिव्यंजित कर पाता है जो 'फणीश्वर नाथ रेणु' ने अपने उपन्यास 'मैला आँचल' में डा० प्रशान्त द्वारा कमली के प्रति सहानुभूति के माध्यम से दर्शाया है। "रेणु के 'मैला आँचल' में ग्रामीण परिवेश में स्त्री - पुरुष संबंधों का नया रूप चित्रित हुआ है, उसमें स्वस्थ पक्ष भी है, तो दमित वासना एवं पाप पुण्य की भावना से प्रभावित पक्ष भी है।[2] कुल मिलाकर हिन्दी उपन्यासकार स्त्री-पुरुष संबंधों को अभी प्रायः परम्परागत दृष्टि से ही देखता है।

स्त्री-पुरुष संबंधों की शृंखला का एक दूसरा उदाहरण फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'मैला आँचल' में देखने को मिलता है। यह उपन्यास बिहार के एक गाँव पूर्णिया के निवासियों की संस्कृति, उनके सुख-दुख को उजागर करता है। इसका प्रमुख पात्र युवा डा० प्रशान्त है जो सिद्धांतवादी भी है। वह मलेरिया और काला आजार का अध्ययन करने तथा उस गाँव में चिकित्सा करने के लिये आया था। यहाँ आकर उसने जाना कि जीवन कितना कठिन है। उसने देखा कि संथाली युवतियाँ घाव पर दवा लगाई जाने पर भी मुसकरा सकती हैं। इसी गाँव में तहसीलदार साहब की बेटी कमली भी है जो हिस्टीरिया से ग्रसित है। लाड़-प्यार में पली होने के कारण वह कुछ-कुछ बच्चों जैसा व्यवहार करती है। प्रशान्त

---

1. नेमिचन्द्र जैन, अधूरे साक्षात्कार, पृ० 144.
2. डा० सुरेश सिनहा, हिन्दी उपन्यास, पृ० 164.

ने कमली के रोग का भली-भाँति अध्ययन किया । कुछ दवा से कुछ उसके मृदुल व्यवहार से कमली स्वस्थ होने लगी । डा० प्रशान्त का व्यवहार कमली के प्रतिदिन - प्रतिदिन उन्मुक्त होता जा रहा था । कमली के अस्वस्थता के दौरान "गम्भीर होते हुए डा० कहता है कि अब तो तुम्हें सुई देनी ही पड़ेगी, दवा से बेहोशी तो दूर हो गई लेकिन पागलपन -------- ।" सभी ठठाकर हँस पड़ते हैं कमली का चेहरा लाल हो जाता है ।"[1]

कमली का इलाज करते हुए डा० और स्वयं कमली भी एक दूसरे के अंजाने स्नेहपाश में बंधने लगते हैं । चिकित्सा के क्रम में डा० कमली के अत्यंत निकट पहुँच जाता है । डा० समझ रहा है कि रोग प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है -------- शीला रहती तो तुरन्त कुछ कह देती । शायद कहती, "भावात्मक संक्रमण अथवा 'प्रत्यावर्तन' के मोड़ पर रोग पहुँच चुका है ।"[2]

डा० के आगे उसकी डाक्टरी के ऊपर, दवाओं से भी आगे मानवीय संबंधों का पृष्ठ खुलता है । डा० की जिंदगी का नया अध्याय शुरू हुआ है । उसने प्रेम प्यार और स्नेह को बायलोजी के सिद्धांतों से ही हमेशा मापने की कोशिश की थी । वह हँस कर कहा करता, दिल नाम की कोई चीज शरीर में है, हमें नहीं मालूम । पता नहीं आदमी लंग्स को दिल कहता है या 'हार्ट' को जो भी हो हार्ट लंग्स या लीवर का प्रेम से कोई संबंध नहीं ।"[3] अब वह मानने को तैयार है कि आदमी का दिल होता है और शरीर को चीड़-फाड़ कर जिसे हम नहीं पा सकते । डा० प्रशान्त और कमली के मध्य मेडिकल के सिद्धांतों से हटकर प्रेम का संबंध स्थापित हो जाता है।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की नियति का एक और मार्मिक पहलू लछमी और बालदेव के माध्यम से रेणुजी ने चित्रित किया है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृ० 59.
2. वही, पृ० 60.
3. वही, पृ० 112.

- "लछमी बालदेव की आँखों में आँखें डालकर देखती है । लछमी जब जब इस तरह देखती है, बालदेव न जाने कहाँ खोजाता है । ------- एक मनोहर सुगन्ध हवा में फैल जाती है । पवित्र सुगन्ध । बीजक से जैसी सुगन्ध निकलती है । --- बालदेव का मन इस सुगन्ध में डूबडूब कर रहा है ।"[1]

डा० प्रशान्त और कमली के बीच स्त्री-पुरुष संबंध, एक अन्य उद्धरण से प्रकट होता है :-

- डाक्टर, कमली की ओर टकटकी लगाकर देख रहा है - चेहरा लाल हो गया है कमला का । ------- जब तक डाक्टर बोलता रहा, कमली चुपचाप सुनती रही । अचानक उसके मुख-मण्डल पर छाये बादल फट गये । एक हल्की मुस्कराहट उसके ओंठों पर धीरे-धीरे जगने लगी, नाक के बगल की नीली रेखा धीरे-धीरे छिल रही है, मानों कमल की पंखुड़ियाँ धीरे-धीरे खुल रही हों ।"[2]

इस प्रकार रेणु ने इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों का उद्घाटन बड़े ही सहज एवं रोमान्टिक ढंग से करने का प्रयास किया है ।

पति-पत्नी सम्बन्ध

समाज द्वारा स्वीकृत परिवार के दायरे में पति-पत्नी सम्बन्ध नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बंधु था' में भलीभाँति श्रीधर और उसकी पत्नी सरस्वती के माध्यम से पुष्ट किया गया है ।

- और चौंककर उन्होंने सरस्वती की ओर देखा, जैसे रितारा बादल देख लिया हो । दीप के मन्द मीठे आलोक में कंचन सरस्वती, पीली कनेर सी लग रही थी । पहले का भरा बदन छिटकने लगा था, खालिए वह कुछ लम्बी लग रही थी - ।[3]

---

1. फणीश्वर नाथ रेणु, मैला आँचल, पृ० 167.
2. वही, पृ० 171.
3. नरेश मेहता, यह पथ बन्धु था, पृ० 36.

बच्चों को ठीक तरह से ओढ़ाकर सरस्वती का हाथ पकड़ श्रीधर बाबू बैठक में निकल आये । -------- सरो । तुम्हें इस घर में बिल्कुल सुख नहीं मिल सका न ? बिजली की कौंध से तथा गड़गड़ाहट से पुश्तैनी मकान की दीवारें एकदम काँप उठीं । सरो भला इस बात का क्या उत्तर देती ? वह एकदम पति से सट गयी और उनके सीने पर सिर रख, एक छोटे जल से भरे बादल-सी फूट पड़ी । श्रीधर बाबू ने सरो को बाहुओं में कस लिया ।[1]

श्रीधर और उसकी पत्नी सरो की मार्मिक और करुणापूर्ण कथा है, इस उपन्यास में । श्रीधर की भाँति सरो भी एक सहनशील, मूक और निरीह प्राणी है । - क्या बात है ? बहुत थक गये ? लाइए पैर दाब दूँ । - सरो, तुम जानती हो, मुझे यह पैर दबवाना सुहाता नहीं है । तुम स्वयं बहुत थकी हो । नारी पृथ्वी को अन्दर से लेकर वहन के भार को बाहर तक आजीत सहती है । सरो, तुम पृथ्वी हो ।

और सरो ने देखा कि पति जो प्राय: कम बोला करते रहे हैं, आज बोलने को हो आयें हैं । कम बोलते हैं, लेकिन कैसा मीठा, कैसा समझा हुआ बोलते हैं, जैसे सुनने वाले का ही बोलना बोल रहे हों । आज सहसा उसे पति के देह से मोह हो आया ।[2]

नौकरी से त्यागपत्र देने के बाद श्रीधर के सामने जीवन यापन का कोई अन्य साधन ही नहीं रह जाता और एक दिन बिना किसी से कुछ कहे इन्दौर चला जाता है । श्रीधर के घर त्यागकर जाने के बाद सरो के जीवन में दुखों का समावेश हो जाता है फिर भी वह पति के प्रेम को संजोये रखती है ।

पचीस वर्ष बाद जब श्रीधर पुन: घर वापस आता है तो देखता है उसकी पत्नी उसी आदर और सम्मान के साथ उसके चित्र को दीप से प्रकाशित किए हुए है ।

---

1. नरेश मेहता, यह पथ बन्धु था, पृ0 38-39.
2. वही, पृ0 75.

- मेरी प्रतीक्षा सार्थक हुई न ? एक सुख के लिए कितना [illegible] भोगना होता है । आप क्यों मुझे छोड़कर चले गये ? अपने किसलिए मेरी परीक्षा [illegible] ? इतना लांछन, इतनी प्रताड़ना, इतनी लौकिक कालिमा --- नाथ ! --- अब मुझे ठाकुरजी को सौंप दीजिए । मैं बापू-माँ को न रोक सकी -------- ।

- देखो सरो ! अब मैं आ गया हूँ, तुम्हें चिन्ता नहीं करनी होगी । तुम स्वस्थ होने की चेष्टा करो ।

सरो पति के बात पर ऐसे मुस्करा दी कि श्रीधर बाबू बड़े छोटे लगने लगे ।

- मैं अब और अपने को छलना नहीं चाहती । ठाकुरजी ने मुझे लोकापवाद से बचा लिया, कितनी आभारी हूँ भगवान की । मुझे अपने से सटा लो । मैं आपको छूना चाहती हूँ ताकि विश्वास आ जाए ।

और सरो बिल्कुल पागलों की तरह उन्हें देख रही थी, छू रही थीं । आँखें प्रवाहित थीं ।[1]

सम्पूर्ण उपन्यास में दुख और पीड़ा के साथ-साथ सरो के समर्पित जीवन की पूरी गाथा है । इतने लम्बे अंतराल के बाद मिलने पर सरो जो कुछ श्रीधर से कहती है उसकी भावाभिव्यंजना और करुणा पति-पत्नी के सम्बन्धों का एक बेजोड़ उदाहरण है । सरो अपनी मर्यादाओं की कुंठाओं से बंधी हुयी है । पति-पत्नी सम्बन्धों की नियति का यह भी एक मार्मिक पहलू है, सरो के जीवन की पीड़ा ।

परिवार के दायरे में सीमित अन्य सम्बन्धों की भाँति बुआ-भतीजे का सम्बन्ध भी अत्यन्त मानवीय सम्बन्ध है जिसे जैनेन्द्र कुमार ने अपने उपन्यास 'त्यागपत्र' में बड़े ही सुन्दर ढंग से दर्शाया है । उपन्यास के मुख्य पात्र एक जज के रूप में हैं जिन्हें प्रमोद की संज्ञा दी गई है । मृणाल उनकी बुआ हैं । मृणाल के माता पिता की बचपन में ही मृत्यु हो जाती है अतः भाई-भाभी के परिवार में रहकर बुआ सुख-दुख दोनों का भागीदार बनी ।

---

1. नरेश मेहता, यह पथ बन्धु था, पृ0 315.

प्रमोद के ही शब्दों में – मेरी और बुआ की बहुत बनती थी । वह शहर के बड़े स्कूल में बग्गी में पढ़ने जाती थीं और घर आकर जो नई शरारतें वहाँ होती अकेले में सब मुझको ऐसा सुनाती थीं, आज मास्टर जी को ऐसा छकाया, कि प्रमोद मुझे क्या बताऊँ, कहकर वह ऐसा ठहाका मारकर हँसतीं कि मैं देखता रह जाता, उस समय मुझे कहानी की परियों का ध्यान हो आता और मैं मुग्ध भाव से अपनी बुआ की ओर आकृष्ट हो रहता ।[1]

– ऐसे ही व्याह के दिन आते गये और बुआ का विवाह हो गया । विवाह होने से पहले बुआ कई घंटे अपनी छाती से मुझे चिपकाए बहुत-बहुत आंसू रोती रहीं । ----- मैं यों तो काफी बड़ा हो चला था ----- तो भी उस समय बुआ के अंक में चुपचाप शावक-सा पड़ा रहता ।[2]

प्रमोद बुआ पर अपनी माँ के द्वारा ढाये जाने वाले अत्याचारों को देखता है, समझता है परन्तु असहाय है कुछ कर नहीं सकता ।

– मुद्दत बीत गई । पर मैं इस रहस्य को न खोल सका । अब से बुआ की चर्चा घर में निषिद्ध बन गई । उनका नाम आता तो सब चुप रह जाते । पिताजी की प्रकृति ही बदल गई दिखती । वे कुछ भीरु, गंभीर हो चले थे माँ चिड़चिड़ी होती जाती थी ।

बहुत दिनों बाद जो बात मैंने जानी वह यह थी कि पति ने बुआ को त्याग दिया है । बुआ दुश्चरित्र है और फूफा को मालूम है कि वह सदा से ऐसी है । 'छोड़ दिया है ।'[3]

---

1. जैनेन्द्र कुमार, त्यागपत्र, पृ0 6.

2. वही, पृ0 12.

3. वही, पृ0 40.

- यह भी ज्ञात हुआ कि फूफा ने तो कहा था कि मैके भी जाओ, पर बुआ इसके लिये बिल्कुल राजी नहीं हुई । धमकाया गया, मारा-पीटा गया, फिर भी उन्हें मरना मंजूर हुआ, हमारे यहाँ आना कबूल नहीं हुआ तब खुद फूफा जाकर उन्हें अलग घर में छोड़ आये ।[1]

- अकस्मात् मुझे बुआ के बारे में ज्ञात हुआ कि वहाँ से अमुक नगर चली आई हैं । कोयले की दुकान करने वाला एक बनिया साथ है ।[2]

बुआ की तलाश में एक दिन अन्ततः प्रमोद सफल हुआ । पहले तो बुआ प्रमोद को पहचानने से इन्कार कर देती हैं । काफी देर के बाद आने और विश्राम करने के पश्चात् बुआ बोली - 'लेकिन यह स्वप्न में भी न सोचा था कि खोजते हुए तुम्हीं मुझे पा लोगे । सोचा यह था कि जब चित्त न मानेगा तब अपने प्रयत्नों से दूर से ही तुम्हें देखकर जी भर लिया करूँगी । प्रमोद तुम मुझसे घृणा कर सकते हो । लेकिन फिर भी तो मैं तुम्हारी बुआ हूँ ।[3]

सत्रह वर्ष प्रमोद बुआ के पास न जा सका और अंत में 'एक दिन खबर आती है कि बुआ मर गई । कैसे मर गई - जानने की कोई जरूरत नहीं है, जो जाने बैठा हूँ, वही कम नहीं है । उसी को पचा सकूँ । तो कुछ का कुछ हो जाऊँ ।

बुआ तुम गई । तुम्हारे जीते जी मैं राह पर न आया । अब सुनो, मैं यह जजी छोड़ता हूँ । जगत का आरम्भ-समारम्भ ही छोड़ दूँगा । औरों के लिए रहना तो शायद नए सिरे से मुझसे सीखा न जाए । आदतें पक गई हैं, पर अपने लिए तो उतना ही स्वल्पता से रहूँगा जितना अनिवार्य होगा । यह वचन देता हूँ ।[4]

---

1. जैनेन्द्र कुमार, त्यागपत्र, पृ0 41.
2. वही, पृ0 41.
3. वही, पृ0 57.
4. वही, पृ0 84.

प्रमोद यह स्वीकार कर लेता है कि झुआ का अंत जैसा हुआ वह उनकी नियति थी जिसे किसी प्रकार बदला नहीं जा सकता था ।

अन्य सम्बन्धों की भाँति पिता-पुत्र का सम्बन्ध भी बहुत महत्वपूर्ण है । 'गोदान' में होरी और उसके पुत्र गोबर का शाश्वत सम्बन्ध है ।

- होरी, गोबर के सुगठित शरीर और चौड़ी छाती की ओर गर्व से देखकर और मन में यह सोचते हुए कि कहीं इसे गोरस मिलता तो कैसा पट्ठा हो जाता ।[1]

- होरी उसे जाते देखता हुआ अपना कलेजा ठंढा करता रहा । अब लड़के की सगाई में देर न करनी चाहिए ।[2]

होरी के घर एक गाय आती है, परिवार के सभी लोग खुश हैं । अड़ोस-पड़ोस व गाँव में होरी के गाय की चर्चा होने लगी । परन्तु होरी का भाई हीरा इसे न देख सका, ईर्ष्यावश एक दिन उसे जहर दे देता है और गाय मर जाती है । होरी ने हीरा को रात में गाय के नांद के पास खड़े देखा था और पूछने पर बताया कि कौड़ा से आग लेना चाहता है । जब यह संदेह विश्वास में बदल गया तो गाँव की भरी भीड़ में होरी ने गोबर के माथे पर काँपता हुआ हाथ रखकर काँपते हुए स्वर में कहा - मैं बेटे की कसम खाता हूँ कि मैंने हीरा को नाद के पास नहीं देखा।[3] होरी झूठ को भी बेटे की कसम से विश्वसनीय सत्य साबित कर देता है ।

झुनिया को गोबर घर तक रात के अँधेरे में लाकर अपने घर के दरवाजे के पास छोड़कर धीरे से खिसक लेता है । होरी गोबर की इच्छा को सिर माथे पर रखता है । गोबर छिपकर देखता है, "धनिया और झुनिया बैठी हुई थीं । होरी खड़ा था । झुनिया की सिसकियाँ सुनायी दे रही थीं और धनिया उसे समझा रही थी

---

1. गोदान, पृ0 31.
2. वही, पृ0 32.
3. वही, पृ0 63.

बेटी चलकर तू घर में बैठ ------- जब तक हम जीते हैं, किसी बात की चिन्ता नहीं है । हमारे रहते तुम्हें कोई तिरछी आँखों देख भी न सकेगा । गोबर गदगद हो गया । आज वह किसी लायक होता तो दादा और अम्मा को सोने से मढ़ देता और कहता - अब तुम कुछ काम न करो आराम से बैठो और जितना दान-पुन चाहो, करो ।[1]

शहर से कुछ दिनों बाद आता है सभी लोगों के लिए कुछ न कुछ उपहार लाता है फिर से बैल और खेती का सिलसिला चलने लगता है ।

'अमृत और विष' उपन्यास में अमृत लाल नागर ने बाढ़ के दृश्य का भयावह वर्णन करके यह बतलाने का प्रयास किया है संकट की घड़ी में किस प्रकार लोगों में आपस में मानवता का संबंध हो जाता है । यह भी नियति बोध का उत्कृष्ट उदाहरण है । रमेश अपनी एम0ए0 की शिक्षा का क्रम जारी रखता है । इस बीच गोमती में भयानक बाढ़ आ जाती है ।

रमेश के पिता पुत्री गुरु कल सबेरे बड़े तड़के ही एक ठाकुर अजयपाल के नये मकान की वास्तु शान्ति कराने के लिए गौघाट के आगे किसी गाँव में गये थे । -------- रात में ही उन्होंने रमेश की माँ को यह सन्देश भी भिजवा दिया था कि गुरु सबेरे आयेंगे ।[2] पर सुबह भी न आये ।

- पिता की खबर पाने की उतावली में रमेश मन ही मन बेचैन हो रहा था। --------- अपनी बातों की भूलभुलैया में काफी देर तक चक्कर देते रहने के बाद तिल्लोकी गुरु ने जिजमान ठाकुर अजयपाल सिंह का नाम और गाँव बतलाया ।[3]

---

1. गोदान, पृ0 86.
2. अमृतलाल नागर, अमृत और विष, पृ0 220.
3. वही, पृ0 221.

रमेश अपने मित्र जैकिशोर के साथ बाढ़ से पीड़ित क्षेत्र की ओर बढ़ा। प्रलयंकर बाढ़ के कारण प्रभावित लोगों का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। यह सोचकर चिन्तित होता है।

- छाती-छाती तक पानी में डूबे हुए अपने सिरों पर खाटें और खाटों पर गठरी, मुठरी, मटका, कनस्टर, सन्दूक लादे हुए दो आदमी, दौलतगंज से हुसैनाबाद की तरफ बढ़े चले आ रहे हैं। देखने में बाप-बेटे लगते हैं। रमेश के सूने मन में अचानक यह आस्था जागती है कि थोड़ी देर बाद वह भी अपने पिता को लेकर इसी तरह सकुशल वापस लौट आयेगा।[1]

- बँधी हुई गली के अन्दर आधे-आधे दरवाजों तक चढ़ा पानी मनहूसियत का आभास दे रहा है। गली में प्राय: सन्नाटा है। बहुत से लोग रातों रात और कुछ सबेरे तक अपना सामान लेकर चले गये थे। सामने से गली में एक पैंतालीस बरस का अधेड़ आदमी खटिया पर अपनी बीमार घरवाली को सिर पर उठाये चला आ रहा था।[2]

गोमती का अथाह जल प्रतिपल बढ़ता ही जा रहा था - 'दाहिनी ओर नदी की मूल धारा का हड़कम्पी प्रवाह हो रहा था। मीलों क्षितिज तक पानी ही पानी। नाववाला रमेश से कहता है, - "अरे बाबू, ई तौ हम पंचन का सदा का अभ्यास पड़ा है बाबू। हर तीसरे-चौथे बरस गोमती मैया बढ़ती हैं। पुस्त-दर-पुस्त बाढ़ आवै तो हमरे पंचन के पुरखे यही तरह घर छोड़के भागै। कहूँ मन्दिर - धरम-शाला, पेड़ तले चारि-छह-आठ दिन गुजर-बसर करिके फिर अपने घर चले जाते हैं।"[3]

---

1. अमृतलाल नागर, अमृत और विष, पृ0 223.
2. वही, पृ0 223.
3. वही, पृ0 224.

- रमेश को ऐसा लगने लगा कि मानो नदी की मूलधारा का मारक आकर्षण उसकी नाव को अपनी ओर खींच लेगा । पेड़-पौधे, जलथल डूबे हुए, कहीं कहीं डूबे मकानों की छतों पर दिखाई पड़ने वाले आदमी । ------- कानों के परदों में घुमड़-घुमड़कर भरने वाला गंभीर हहर-हहर-हहर नाद । पृथ्वी यमलोक सी लगती हैं, यहाँ जीता हुआ भी मुर्दा लग रहा है । ------- मौत की चपेट में आये हुए एक प्राणी की विवशता देखकर नाव पर बैठे ये तीनों प्राणी अपने अंदर तिलमिला-तिलमिला कर छूट गए ।[1] और उन्हें बचाने का उपाय करता है ।

-सैकड़ों हजारों लोग फंसे हैं, आखिर किस किसको बचाया जा सकता है । नाव आगे बढ़ने लगी । पुरुषों की करुण चिरौरियां भी बढ़ीं । उन पुरुषों ने कहा कि चाहे हमें छोड़ जाओ, पर हमारे साथ के एक बूढ़े और दो बूढ़ी औरतों को जो शिवाले के अंदर पानी में आठ घंटे से डूबी हुयी खड़ी हैं उस पार किसी टीले पर अवश्य ही पहुँचा दो । ------- सबके चेहरों पर मृत्यु का फीकापन और जड़ता थी ।[2]

- पानी रात में ऐसी जोर से गरजता और दौड़ता हुआ बढ़ा कि चारों ओर हाहाकार मच गया । ------- जब तक लोग जागें और भागें, पानी गाँव में प्रवेश करने लगा ।[3]

बाढ़ में फंसे हुए कुछ लोग नाव को अपनी ओर आने और रक्षा करने को गिड़गिड़ाहट भरा शोर करने लगे । ------- नाव को देखते ही बंगले की छत पर खड़े हुए आठ-दस आदमी शोर करने लगे । रमेश और जैकिशोर की आँखें टकटकी बाँधकर छत की ओर देखने लगीं । रमेश को अब अपने पिता और बचान महराज साफ-साफ दिखायी दे रहे हैं - "ओह भगवान ! तुम कितने दयालु हो, भगवान कितने दयालु ।"

---

1. अमृत और विष, पृ0 225.
2. वही, पृ0 227.
3. वही, पृ0 228.

नाव पर पुत्ती गुरु, बयान महराज, ठाकुर साहब के अवकाश प्राप्त अफसर भाई, उनका लड़का, आदि को ठाकुर अजयपाल सिंह ने विदाई दी ।[1]

रमेश और उसके मित्र चैकिशोर ने नाववाले से आग्रह करके गाँव के बूढ़े, बच्चे और बीमार लोगों को नाव में बिठाकर उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया । इस भीषण बाढ़ के दौरान रमेश तथा बाढ़ से ग्रस्त गाँव के लोगों के बीच अत्यधिक अपनापन हो गया । यह भी मानव संबंध और नियतिबोध का एक अत्यन्त जीवंत उदाहरण है । इस प्रकार रमेश अपने पिता तथा बयान महराज व अन्य लोगों को बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र से निकाल लाने पर रमेश अपने क्षेत्र का हीरो बन गया । बाढ़ के समय रमेश का उन गाँववालों के साथ स्नेह का संबंध सहज रूप में अत्यंत मानवीय दृष्टि के कारण स्थापित हो गया ।

3. ।च। पात्रों और चरित्रों का घटनाओं के अन्तर्गत सवग वरण

अज्ञेय के प्रसिद्ध उपन्यास 'अपने अपने अजनबी' के पात्र सेल्मा और योके मुख्य रूप से सवग वरण के लिए एक खरी रचना है । इस उपन्यास में घटनायें कुछ ऐसी परिस्थितियों में घटित हुयीं हैं जिसके लिये पात्र स्वयं विवश है ।

युवती योके अपने मित्र पाल के साथ पर्वत शिखरों पर घूमने आती है वृद्धा सेल्मा के साथ बर्फ के नीचे घर में बन्दी हो गये हैं और मृत्यु की छाया में जीवन बिताने को बाध्य हैं । युवा योके, मृत्यु भय से पीड़ित किन्तु जीवन के लिए अधीर है । इसके विपरीत सेल्मा एक वृद्धा और कैंसर से ग्रसित है और भय से मुक्त है क्योंकि उसका एक बार पहले भी प्रलयंकर बाढ़ के समय में मृत्यु से गहरा और सीधा साक्षात्कार हो चुका है । परिस्थितियों और घटनाओं के फलस्वरूप उपन्यास के दोनों ही पात्र सेल्मा और योके इस आकस्मिक सामने खड़ी मृत्यु के साक्षात्कार को अलग-अलग धरातल पर अलग-अलग ढंग से झेलती हैं । एक ओर सेल्मा जहाँ योके से यह कह सकती है कि "हाँ योके मैं भगवान को ओढ़ लेना चाहती हूँ, पूरा ओढ लेने

---

1. अमृत और विष, पृ0 230.

कि कहीं कुछ भी उधड़ा न रह जाये । तुम नहीं जानती कि जिसे माला की मणि तक नहीं पहुँचना है उसके लिए एक-एक मनके का रूप कितना दिव्य होता है ।"[1] योके और सेल्मा दोनों ही मृत्यु को प्राप्त हुयी पर परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न थीं । मृत्यु भय में जीने को योके और उस भय से मुक्त होकर जीने को सेल्मा के व्यक्तित्व संघटनों द्वारा व्यक्त किया गया है ।

उपन्यास के प्रारम्भ में ही यह देखते हैं कि बर्फ के नीचे दबकर मरने का डर योके के प्राणों में समाया हुआ है न होने के बोध की सम्पूर्णता एक आतंक सी उस पर छा गई है । उसके लिए मृत्यु एक झूठ है क्योंकि वह जीवन का खण्डन है । उसे लगता है कि मरती हुई बुढ़िया सेल्मा अपनी अन्तिम घड़ियों में उसके स्वस्थ युवा जीवन का अपमान कर रही है । हिमकैद में योके सेल्मा को अपना नरक पाती है । सेल्मा और योके दो भिन्न चरित्र हैं । "योके त्रस्त है वह जानती है और जानकर मरती हुई भी जिए जा रही है और सेल्मा जीती हुई भी मर रही है और मरना चाह रही है तो इसलिये कि वह सेल्मा को विजय नहीं बना पाती ।[2] योके मृत्यु को अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लेती है एक अच्छे आदमी के साक्षी में आस्थावान की तरह मरती है । वरण के अभाव में भी रचना की जो सम्भावना उपन्यासकार प्रकट करता है वह भी अचरितार्थ बनी रहती है । जगन्नाथन जैसे कोई व्यक्ति नहीं प्रतीक है, योके की तलाश की मंजिल जहाँ उसे लगता है कि एक अच्छा आदमी उसे मिल गया है जिसके समक्ष मृत्यु का वरण करके वह अपनी स्वतंत्रता को अन्तिम रूप से प्रमाणित कर जायेगी । योके जिस उन्मादग्रस्त ढंग से जगन्नाथन के कठिनाई से खरीदे गये पनीर में सिगरेट बुझाकर उसे गिरा देती है तथा पीछा किए जाने पर जिस प्रकार उस इस नतीजे पर पहुँचती है कि जगन्नाथन एक अच्छा आदमी है तथा उसके सामने वह झटके से हीरे की अँगूठी को चाटकर मृत्यु के वरण की स्वतंत्रता को स्थापित कर देती है ।[3] मृत्यु की छाया में सेल्मा जैसे उदार, अनासक्त एवं समर्पित बुढ़ा का संसर्ग योके

---

1. अज्ञेय, अपने अपने अजनबी, पृ0 36-37.
2. वही, पृ0 33.
3. वही, पृ0 100-101.

के व्यक्तित्व में यह परिवर्तन लाता है कि वह अपनी स्वतंत्रता से मृत्यु का वरण कर लेती है विशेषकर तब जबकि ऐसी ही मृत्यु की छाया में सेल्मा स्वयं क्या से क्या हो गयी । मरने के पहले कोई स्वतंत्रता उसने नहीं जानी थी ।

योके कहती है कि आण्टी सेल्मा इन बातों को नहीं सोच सकती - 'जो कुछ होता है उसका होते रहना ही समय की माप है और अनुभव की भाषा में क्षण क्या है ? -------- उसके जीवन में कुछ है जो इन सब बातों से अलग है । वह मेरे लिए अजनबी है, लेकिन लगता है कि उसमें कुछ ऐसा सच है जो मैंने नहीं जाना है । मेरे सच से बिल्कुल और दूसरा सच । सच! वह सच भी काल निरपेक्ष नहीं है - सेल्मा भी काल में ही जीती है जैसे कि हम सब जीते हैं ।[1]

मनुष्य के लिए सबसे बड़ा सुख होता है - वरण की स्वतंत्रता और वही वह नहीं प्राप्त कर पाता । यहाँ तक कि मृत्यु वरण की भी स्वतंत्रता उसे नहीं है ।

बुढ़िया ने सहसा गम्भीर होकर कहा : कुछ भी किसी के बस का नहीं है, योके । एक ही बात हमारे बस की है - इस बात को पहचान लेना । इससे आगे हम कुछ नहीं जानते ।

तुम्हारा ऐसा कहना ही स्वाभाविक है । -------- लेकिन मैं जानती हूँ । और आज मैं इतनी खुश हूँ कि तुमसे कह दूँ, जिससे कि कल तक यह बात तुम्हारे लिये पुरानी हो जाये - योके मैं, बीमार हूँ और मुझे मालूम है कि अगला बसन्त मुझे नहीं देखना है ।[2]

3. ।ज। <u>नियति का वरण और शिल्प पर प्रभाव</u>

प्रेमचन्दोत्तर काल में उपन्यास के रूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए जिसमें पात्र प्रमुख हो गये और जिसकी परिधि में सम्पूर्ण जीवन गतिशील हुआ । इसी में

---

1. अज्ञेय, अपने अपने अजनबी, पृ0 20.
2. वही, पृ0 26.

एक या कई समस्यायें केन्द्रित हुयी तथा यथार्थ द्वन्द्व अपने रंग भरने लगे । इस प्रकार उपन्यास सतही मनोरंजन न होकर जीवन की आलोचना और जीवन का द्रष्टा हो गया । फिर उपन्यास का सारा शिल्प ही बदल गया । कथानक निर्माण अब पात्र के अधीन हो गया । पात्र का समूचा जीवन उसके जीवन में क्रमश: आने वाली घटनायें उसके कार्य-व्यापार अपने आप में वस्तु विन्यास हो गये । कथानक में घटने वाली सभी घटनायें, उसके सभी कार्य-व्यापार चाहे वे संयोग या अप्रत्याशित ढंग से ही क्यों न घटित हुए हों, लेखक के द्वारा वर्णित होकर नहीं वरन् स्वयं पात्रों के माध्यम से सामने आने लगे मानो पात्रों ने ही उपन्यास के सारे कथा सूत्रों को अपने हाथ में ले लिया । जीवन संग्राम में संघर्ष करते हुए वे कथानक को सहज और स्वाभाविक रूप में अपने आपमें निर्मित करने लगे जिसका प्रभाव शिल्प पर मुख्य रूप से पड़ा ।

इसका प्रमाण हमें विशेषतौर से अज्ञेयजी के प्रसिद्ध उपन्यास 'अपने अपने अजनबी में देखने को मिलता है । यह उपन्यास मृत्यु साक्षात्कार का सजग उदाहरण है इसके माध्यम से उपन्यासकार ने यह बतलाने का सफल प्रयास किया है जो अटल एवं अवश्यं-भावी है । इस नियति के वरण की सार्थकता की झलक अज्ञेय जी के इस उपन्यास में स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होती है । योके और सेल्मा दोनों ही बर्फ के नीचे घर में बन्दी हो गये हैं अत: उनकी मृत्यु निश्चित है । सम्पूर्ण घटनाओं के आकलन द्वारा यह ज्ञात होता है कि मृत्यु ही दोनों की नियति है और ऐसी स्थिति में इसके लिए न चाहकर भी वे दोनों विवश हैं । सेल्मा कैंसर से ग्रसित एक वृद्ध महिला है जो मृत्यु भय से मुक्त और मृत्यु के लिये प्रतिपल अधीर है फिर भी जी रही है । योके युवा है जो पर्वत शिखरों पर घूमने के लिए आयी थी परन्तु हिमपात के कारण बर्फ में कैद होकर भी जीने के लिए आतुर है । सेल्मा और योके दोनों ही मृत्यु का वरण अलग-अलग ढंग से करती हैं । योके को उस कैद की स्थिति में भी इस बात का संतोष था कि वह अकेली नहीं है उसके साथ सेल्मा भी दुखों की भागीदार है । सेल्मा की मृत्यु कैंसर के कारण होती है किन्तु योके अपनी स्वेच्छा से मृत्यु का वरण करती है इसके लिये वह प्रसन्न है कि वह जीवन में अगर कुछ वरण कर पाती है तो मृत्यु का वह भी जगन्नाथन नामक एक अच्छे आदमी को साक्षी रखकर जिससे उसे अन्तिम समय में

सहानुभूति मिलती है । सेल्मा युवती योके से कहती है - जब ईश्वर पहचान से परे है तो कोई भी पहचान भ्रम है । हम पहचानते हैं अनिवार्यता, हम पहचानते हैं अन्तिम और चरम और सम्पूर्ण और अमोघ नकार - जिस नकार के आगे कोई और सवाल नहीं है और न आगे जवाब ही -------- इसीलिये मौत ही तो ईश्वर का एकमात्र पहचाना जा सकने वाला रूप है ।[1]

बुढ़िया ने पूछा : 'योके तुम्हारा ध्यान हमेशा मृत्यु की ओर क्यों रहता है ।'

योके ने रुखाई से कहा : 'क्योंकि वही एकमात्र सच्चाई है - क्योंकि हम सबको मरना है ।'[2]

- योके कहती है कि : अपनी उपस्थिति का अनुभव करने का ही मौका मुझे नहीं मिलता जब तक कि मैं रात को अपने पलंग पर अकेली नहीं हो जाती । मानों इस घर में वही वह है, मैं हूँ ही नहीं, जब कि जीती मैं हूँ और जीने की जरूरत भी मुझे है । और वह तो जीने न जीने की सीमा-रेखा पर अर्द्धमूर्छित ऐसे बैठी है कि यह भी नहीं जानती कि वह कहाँ पर है ।[3]

योके को लगता है कि - यह मरती हुई बुढ़िया अपनी अन्तिम घड़ियों में भी मेरे स्वस्थ युवा जीवन का अपमान कर रही है । -------- मैं क्यों बाध्य हूँ यह सहने को । -------- मैं अगर ईश्वर को नहीं मान सकती, तो नहीं मान सकती, और अगर ईश्वर मृत्यु का ही दूसरा नाम है तो मैं उसे क्यों मानूँ ? मैं मृत्यु को नहीं मानती नहीं मान सकती, नहीं मानना चाहती । मृत्यु एक झूठ है, क्योंकि वह जीवन का खण्डन है और मैं जीती हूँ।और जानती हूँ कि मैं जीती हूँ ।[4]

---

1. अज्ञेय, अपने अपने अजनबी, पृ0 46.
2. वही, पृ0 22.
3. वही, पृ0 38.
4. वही, पृ0 47..

मृत्यु का सत्य दार्शनिक चिन्ता के केन्द्र में रहा है । अस्तित्ववाद जीवन को मूलतः निरर्थक मानते हुए उसे मानवीय मूल्य देने की चेष्टा है ।[1] मृत्यु - साक्षात्कार का यह आख्यान जीवन की अर्थवत्ता को किसी रूप में परिभाषित नहीं करता । उपन्यास में उसके बीच में जीवन की कथा नहीं है केवल आत्महत्या में उसका अन्त दिखाया गया है । ऐसा मालूम होता है कि मृत्यु का वरण ही नियति की सार्थकता को सिद्ध करता है । मरने में ही वह अपनी स्वतंत्रता को चुन पाती है । योके[2] के शब्दों में "मैंने चुन लिया । मैंने स्वतंत्रता को चुन लिया मैं बहुत खुश हूँ मैंने कभी कुछ नहीं चुना । जब से मुझे याद है कभी कुछ चुनने का मौका मुझे नहीं मिला, लेकिन अब मैंने चुन लिया । जो चाहा वही चुन लिया । मैं खुश हूँ ।

इसका प्रभाव पूरे शिल्प पर अत्यंत निराशाजनक एवं चिन्तन का पड़ा । लेखक का जो सत्य उभरकर आता है वह यह कि जिन्दगी एक ला-इलाज कैंसर है इसलिये वह जीवन की निरर्थकता को व्यंजित करने तक ही नहीं रहता अपितु यह भी बतलाने का प्रयास करता है कि मुसीबत के क्षण में ईश्वर शरण की तरह धर्म में आस्था भी आत्म तोश का विकल्प बना देती है और लेखक का मृत्यु चिन्तन अमूर्त स्तर पर ही रह जाता है । इसी संदर्भ में अज्ञेय जी एक जगह लिखते हैं कि जीवन अत्यंत वांछनीय प्रीतिकर है और मूल्यवान होकर भी सांस्कृतिक मानव जीवन का चरम मूल्य नहीं है । अपने अपने अजनबी में जीवन की अनित्यता का जो संदेश है वह मृत्यु के विरुद्ध संघर्ष का प्रेरक नहीं है । ऐसी दृष्टि का परिणाम होता है मृत्यु के शासन का स्वीकार और इस स्वीकार के साथ मृत्यु की शक्ति के स्त्रोत का स्वीकार । जिंदगी में आशायें अधूरी रहती हैं और सम्भावनाएं अपूर्ण जिनके कारण वरण की स्वतंत्रता का अभाव बुनियादी तत्व लगने लगता है ।[3]

--------::0::--------

---

1. डा० नवल किशोर, आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता, पृ० 96.
2. अज्ञेय, अपने अपने अजनबी, पृ० 102.
3. डा० नवल किशोर, आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता, पृ० 102-3.

अध्याय - चार

"प्रेमचन्द और उनके पूर्व के उपन्यासों में नियति बोध"

क. भाग्यवादिता.

ख. ईश्वर पर विश्वास, कर्मफलवाद.

ग. परिवेश को बदलने की क्षमता.

घ. मनुष्य पर विश्वास या कर्म पर विश्वास.

ङ. चन्द्रकान्ता, संतति से गोदान तक.

प्रेमचन्द और उनके पूर्व के उपन्यासों में नियति बोध

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों में कथा के माध्यम से संभव-असंभव घटनाओं एवं प्रसंगों की अवतारणा पाठकों के मनोरंजन हेतु की गई है ।

डा० रामदरश मिश्र[1] ने स्पष्ट किया है कि प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों की मुख्य विशेषता यह है कि या तो वे घटना चमत्कार का प्रदर्शन कर मात्र पाठकों का मनोरंजन करना चाहते हैं या कोई उपदेश देना चाहते हैं । जासूसी, तिलस्मी, ऐयारी, ऐतिहासिक अथवा सामाजिक उपन्यास जो भी इस युग में लिखे गये है वे सभी घटना या चमत्कार पर आधारित हैं । इनमें घटनाओं का अबाध प्रवाह होता है । ये घटनायें मानव और मानवेतर जगत सभी को अपना पात्र बनाती हैं । इन कथाओं में देश-काल की यथार्थता की रक्षा नहीं होती । कहानी में राजा, रानी, परियां, राक्षस, देवता, चिड़ियां, हिरन, कछुआ, नेवला, सियार आदि सभी मानव पात्रों की तरह व्यवहार करते आयेंगें और पाठक या श्रोता इन पर अविश्वास किए बिना इन्हें पढ़ता या सुनता चला जायेगा । कहानी के अंत में सारी घटनाओं की एक सुखद परिणति मिलती है ।

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों में असंभव घटनाओं का क्रम एवं ऐयारी रूपरेखा इस बात का संकेत करती है कि इनमें यथार्थ से हटकर कुछ ऐसा घटित होता है जो सामान्य रूप से नहीं होना चाहिये था । इन घटनाओं का उपन्यास में जो प्रकरण आता है वह निश्चित रूप से अभीष्ट दिशा में सहायक होकर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से भाग्यवादिता की ओर इंगित करती है । इस शृंखला में प्रेमचन्द के पूर्व के कुछेक उपन्यासों का अध्ययन भाग्यवादिता के आधार पर करने के उपरांत निम्न बिंदुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है :-

क. भाग्यवादिता

गोपालराम गहमरी कृत 'गृहलक्ष्मी' एक सामाजिक उपन्यास है जो भाग्य-

---

1. डा० रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ० 17.

वादिता पर आधारित उपन्यास है । चन्द्रा एक अत्यंत सुन्दर, गुणसम्पन्न सौभाग्यवती कन्या है जिसकी शादी राजाराम नामक व्यक्ति से हो जाती है । सुखी जीवन की गाड़ी इस प्रकार कुछ वर्षों तक चलती है परन्तु दुर्भाग्यवश चन्द्रा पुत्रवती नहीं हो पाती अतः चन्द्रा के जीवन में दुःखों का समावेश होने लगता है । परिवार वालों और अन्य लोगों के व्यंग्य तथा कानाफूसी से चन्द्रा दुखी व उपेक्षित रहने लगती है । अपने पति से दूसरा ब्याह करने के लिये चन्द्रा स्वयं आग्रह करती है और सास के कटाक्ष को चुपचाप पी लेती है । चन्द्रा अपने भाग्य की दुहाई देती हुई पति से कहती है कि "यह तो हमारी नसीब का दोष है, मां ही की बात क्यों एक सन्तान जब तुमको होगा तो मैं भी तो आनंद पाऊंगी, तुम्हारे संतान न होने से ससुर जी का वंश लोप होगा, यह क्या हमारे लिये कम दुख की बात है ।"[1] यद्यपि राजाराम दूसरी शादी के पक्ष में न था परन्तु चन्द्रा के बहुत कहने पर उसकी शादी सरोजनी नामक लड़की से हो जाती है । कालान्तर में सरोजनी अपनी सौत से ईर्ष्या करने लगती है और धीरे-धीरे राजाराम को चन्द्रा से विमुख कर देती है । सरोजनी कुछ समय बाद पुत्रवती होती है और परिवार में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है ।

घटनाक्रम में भाग्य सरोजनी का साथ नहीं देता, वह अपने सास की एक संगिनी मिसराइन के कुचक्र में पड़कर कई गलत कार्य करने को विवश हो जाती है । दूध में विष डालकर चन्द्रा को देने का प्रयास करती है परन्तु भाग्य यहाँ भी उसका साथ नहीं देता और दुर्भाग्यवश विषाक्त दूध भूख से रोते हुए बालक को चुप कराने के लिए चन्द्रा स्वयं न पीकर उसे पिलाने लगती है । इसी बीच बच्चे की हालत बिगड़ने लगती है, चन्द्रा विष के प्रभाव को कम करने के लिए नमक मिला पानी बच्चे को पिलाने लगती है जिससे वमन के द्वारा विषैला पदार्थ बाहर निकल सके । इधर शोर गुल सुनकर सरोजनी जब घटना स्थल पर पहुँचती है और अपनी गलतियों का एहसास करती है तो तुरंत पश्चाताप के कारण बचे हुए दूध को शीघ्रता से पी जाती है । मरने से पूर्व सरोजनी अपने सिर पर आँसू बहाते हुए मिसराइन द्वारा सुझाये गये कुकृत्यों का ब्योरा देती है ।

---

1. गोपालराम गहमरी, गृहलक्ष्मी उपन्यास, पृ० 10.

इसी घटनाक्रम में उपन्यासकार चन्द्रा को पिता द्वारा अपार सम्पत्ति का वारिस करार करता है और सौत की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र को चन्द्रा वरण करती है । इस प्रकार पुनः अपने पति के साथ सुखमय जीवन व्यतीत करने लगती है ।

भाग्यवादिता पर आधारित उपन्यासों की श्रृंखला में शिवनारायण द्विवेदी कृत 'चम्पा' है, जिसमें नायक श्रीश के संबंध में भाग्य की दुहाई देते हुए उपन्यासकार लिखता है, "काल तुम्हारी महिमा अटल है । तुम्हारी गति में किसी का चारा नहीं, नये को पुराना और पुराने को नया करना ही तुम्हारा काम है आदि आदि।[1] धनी बाप की पुत्री होने के कारण चम्पा के दर्प के समक्ष एक साधारण परिवार का युवक श्रीश अपमानित होकर एक दिन घर बार छोड़कर चला जाता है । कई अप्रत्याशित घटनाओं से उसका भाग्योदय होता है और पुनः वह अमीर होकर लौटता है ।

इस प्रकार श्रीश पुनः चम्पा के साथ एक सुखी परिवार की रचना करता है । भाग्य के अधीन इस उपन्यास का घटनाक्रम चलता रहता है । वार्तालाप के दौरान एक महिला पात्र के मुख से लेखक ने कहलवाया है कि "बहिन जिसका जैसा भाग । पर जो मरे को मारता है उसे भगवान मारता है ।[2]

अकस्मात् एक चीते के आने से जंगल में भटक रहे अरविंद दास जिसे श्रीश बचा लेता है वही सोने की कूंची भी नायक को प्राप्त कराता है । अतः अनुकूल भाग्य के घेरे में सोने की कूंची पाकर श्रीश एक अतुल धनराशि का स्वामी बन जाता है । कैसे और किस प्रकार घटनाओं का क्रम बनता है यह लेखक की अपनी सूझ-बूझ कही जा सकती है । यथार्थ से परे यह कहानी हृदयग्राही न बनकर सतही मनोरंजन की भूमिका निभाने में कुछ हद तक समर्थ दीखती है ।

इन दोनों उपन्यासों में कथा प्रवाह केवल सस्ते मनोरंजन का ही नहीं है

---

1. शिवनारायण द्विवेदी, चम्पा उपन्यास, पृ0 10.
2. वही, पृ0 14.

बल्कि भाग्यवाद के माध्यम से भविष्य में होने वाली परिवर्तनकारी घटनाओं के द्वारा यह भी संकेतित करने का है कि केवल वर्तमान ही सत्य नहीं है, परोक्ष भी है। दुख के बाद सुख भी आता है। इन कृतियों में तत्कालीन समाज का दृष्टिकोण अव्यक्त रूप से अन्तर्भूत है कि सत्य और पुण्य कर्म के प्रति निष्ठा का परिणाम लाभकारक ही होता है। वस्तुतः भाग्यवाद वर्तमान के निषेध का लक्षण है। यह इतिहास की गति को स्वचालित और मनुष्य को विवश खिलौना मात्र मानता है।

ख. <u>ईश्वर पर विश्वास, कर्मफलवाद</u>

सन् 1882 में प्रकाशित श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' को हिन्दी का पहला महत्वपूर्ण उपन्यास माना गया है। इस उपन्यास में लेखक ने समकालीन यथार्थ को तत्कालीन परिवेश में चित्रित करने का प्रयास किया है। जिस बात को लोग बार-बार समझाने पर नहीं समझ सके उसे दृष्टांत देकर प्रस्तुत किया गया है और परीक्षा करके सिद्ध किया गया है। लेखक ने कई प्रकरणों में सनातन सिद्धांतों के आधार पर परीक्षा ही गुरु है की पुष्टि की है।

इसमें एक वर्ग के प्रतिनिधि मदनमोहन और दूसरे के ब्रजकिशोर हैं। मदन-मोहन नव शिक्षित मध्यवर्ग के कमजोरियों का मूर्तिमान रूप है। झूठी सम्मान-भावना, अकर्मण्यता, अंग्रेजों की नकल आदि में वह मध्यवर्गीय कमजोरियों का प्रतिनिधित्व करता है यद्यपि उसके पिता पुरानी संस्कृति के ही व्यक्ति थे। ब्रजकिशोर, एक आधुनिक चेतनासम्पन्न पात्र के रूप में पाठकों को प्रभावित करता है। उसकी विवेक दृष्टि से लेखक ने अपनी धारणाओं को स्थापित करने का प्रयास किया है। इस युग के यथार्थ चित्रण की प्रथम अनुभूति के रूप में यह समर्थ कृति है।

परीक्षा गुरु की मौलिक विशेषता यही है कि इसमें सर्वप्रथम यथार्थ जीवन व्यापारों को कथा का विषय बनाया गया। न तो उसमें परंपरित प्रेम कहानी है और न विस्मयकारक घटना विधान। तत्कालीन मध्यवर्गीय समाज तथा उसमें पलने वाले कतिपय व्यक्तियों का वास्तविक चित्रण ही इसका ध्येय है।

विजयशंकर मल्ल[1] ने 'परीक्षा गुरु' का विवेचन करते हुए लिखा है कि यह उपन्यास अपने समकालीन मध्यवर्गीय समाज और देश-दशा का विस्तृत परिचय देता है। सम्पूर्ण उपन्यास भारत के पारम्परिक आदर्शात्मक रूप और पश्चिमी संस्कृति के सतही स्वरूप के बीच मान्यताओं के अन्तर्द्वन्द्वों का संघर्ष कहा जा सकता है।

रामदरश मिश्र[2] ने यह लिखा है कि श्रीनिवास दास ने परीक्षा को गुरु सिद्ध करने के लिए यह उपन्यास लिखा है। - "यह एक सनातन सिद्धांत है किन्तु इस सिद्धांत की सनातनता सिद्ध करना लेखक का उद्देश्य नहीं रहा है, वह तो वास्तव में अपने समय में कुछ अंग्रेजों के प्रभाव से देश और समाज में उत्पन्न होने वाली कुछ सामाजिक और चरित्रगत विसंगतियों और विकृतियों का उद्घाटन कर तथा उनका समाधान प्रस्तुत कर कुछ शिक्षा देना चाहता है।

जैसे बहुधा लोग जानते होंगे कि जेम्सवाट[3] कलों के काम में एक प्रसिद्ध मनुष्य हो गया है उसके समान काल में उसकी अपेक्षा बहुत लोग अधिक विद्वान थे परन्तु अपने ज्ञान को काम में लाने के वास्ते जेम्सवाट ने जितनी महनत की उतनी और किसी ने नहीं की, उसने हरेक पदार्थ की बारीकियों पर दृष्टि पहुँचाने के लिए खूब अभ्यास बढ़ाया। वह बढ़ई का पुत्र था, जब वह बालक था। तब ही अपने खिलौनों में से विद्या विषय ढूंढ निकालता था, उसके बाप की दुकान में ग्रहों के देखने की कलें रक्खी थीं जिससे उसको प्रकाश और जोतिष विद्या का व्यसन हुआ, उसके शरीर में रोग उत्पन्न होने से उसको वैद्यक सीखने की रुचि हुई और बाहर गाँव में एकांत फिरने की आदत से उसने वनस्पति विद्या और इतिहास का अभ्यास किया, गणित शास्त्र के औजार बनाने बनाते उसको एक आर्गन बाजा बनाने की फर्मायश हुई, परन्तु उसको उससमय तक गाना नहीं आता था इसलिये उसने प्रथम संगीत विद्या का अभ्यास करके

---

1. विजयशंकर मल्ल, आलोचना 13, उपन्यास विशेषांक, पृ0 66.
2. डा0 रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ0 24.
3. श्रीनिवास दास, परीक्षा गुरु, पृ0 170.

पीछे से एक आर्गन बाजा बहुत अच्छा बना दिया । इसी तरह एक बाफ़ की कल उसकी दुकान पर सुधरने आई तब उसने गर्मी और बाफ़ विषयक वृतान्त सीखने पर मन लगाया और किसी तरह की आशा अथवा किसी के उत्तेजन बिना इस काम में दस बरस परिश्रम करके बाफ़ की एक नई नक्ल ढूंढ निकाली जिससे उसका नाम सदा के लिये अमर हो गया ।

उपरोक्त पंक्तियों में श्रीनिवास दास का व्यापक अध्ययन और उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रभाव का मूल्यांकन उस समय की सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए एक नई विधापरक रचना कही जा सकती है । भाग्यवादिता और धार्मिक मूल्यों से हटकर यथार्थ का चित्रण इस उपन्यास में करने का प्रयोजन लेखक ने सम्भवतः प्रथम बार करके साहित्य में एक विशेष पहचान स्थापित की । रामदरश[1] मिश्र भी इस बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि यथार्थ की पहचान की यह यात्रा प्रेमचन्द, प्रसाद, यशपाल आदि से होती हुयी आज तक पहुँची है तथा विविध आयाम धारण करने में समर्थ हुयी है । यथार्थ की पहचान की एक दूसरी धारा भी है जो व्यक्ति-मन को केन्द्रित करके चली है और जो मूलतः जैनेन्द्र अज्ञेय आदि से होती हुई आज के मौन चेतना-केन्द्रित उपन्यासों तक आयी है । किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय जीवन की सही पहचान इन सामाजिक यथार्थ वाले उपन्यासों में ही होती है, इनमें भारतीय जीवन के तमाम सुख-दुखों, सम्बन्धों और मूल्यों, शक्तियों और सीमाओं, छवियों और अछवियों, मिट्टी और पानी की गन्ध की परतें खिली होती हैं ।

परीक्षा गुरू के मुख्य पात्र ब्रजकिशोर के बारे में लेखक[2] ने लिखा है कि उन्हें संसारी सुख भोगने की तृष्णा नहीं है और द्रव्य की आवश्यकता यह केवल सांसारिक कार्य निर्वाह के लिए समझते हैं इसवास्ते संसारी कामों की जरूरत के लायक परिश्रम

---

1. डा0 रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ0 24.

2. श्रीनिवास दास, परीक्षा गुरु, पृ0 171.

और धर्म से रुपया पैदा किये पीछे बाकी का समय यह विद्याभ्यास और देशोपकारी बातों में लगाते हैं, पुनः ईश्वर पर विश्वास रखते हुए लेखक ने निम्न पंक्तियों[1] में इस विचार की आस्था में पुष्टि करते हुए लिखा है 'ईश्वर[2] के नियमानुसार कोई मनुष्य सबके उपकारों से उऋण नहीं हो सकता, ईश्वर, गुरु और माता पितादि के उपकारों का बदला किसी तरह नहीं दिया जा सकता परंतु ब्रजकिशोर पर केवल इन्हीं के उपकार का बोझ नहीं है इससे सिवाय एक और मनुष्य के उपकार में भी बंधे रहे हैं.

मदनमोहन के पिता एक साहूकार थे जो पुराने संस्कारों की प्रतिमूर्ति कहे जा सकते हैं उनका वर्णन करते हुए परीक्षा गुरु के रचनाकार[3] ने लिखा है कि वह अपने धर्म पर दृढ़ था, ईश्वर में बड़ी भक्ति रखता था, प्रतिदिन प्रातः काल घंटा डेढ़ घंटा कथा सुनता था और दरिद्री, दुखिया, अपाहजों की सहायता करने में बड़ी अभिरुचि रखता था परन्तु वह अपनी उदारता किसी को प्रगट नहीं होने देता था, वह अपने काम धंदे में लगा रहता था इसलिये हाकिमों और रईसों से मिलने का उसे समय नहीं मिल सकता था परन्तु वह वाजबी राह से चलता था इसलिये उसे बहुधा उनसे मिलने की कुछ आवश्यकता भी न थी क्योंकि देशोन्नतिका भार पुरानी रूढ़ी के अनुसार केवल राजपुरुषों पर समझा जाता था. वह मेहनती था इसलिये तन्दुरुस्त था वह अपने काम का बोझ हरगिज औरों के सिर नहीं डालता था, हाँ यथाशक्ति वाजबी बातों में औरों की सहायता करने को तैयार रहता था.

डा० लक्ष्मणसिंह बिष्ट[4] ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द पूर्व के कथाकार और उनका युग' में लिखा है कि हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यास के रूप में हम लाला श्रीनिवासदास

---

1. श्रीनिवासदास, परीक्षा गुरु, पृ० 174.
2. वही, पृ० 174.
3. वही, पृ० 177.
4. डा० लक्ष्मण सिंह बिष्ट, प्रेमचन्द पूर्व के कथाकार और उनका युग, पृ० 73.

का परीक्षा गुरु पाते हैं, जो उपन्यास के आधुनिक रूप में प्रकट होता है । उपन्यास को उपदेशात्मक सामाजिक आदर्शोन्मुख माना जा सकता है ।

इन उदाहरणों से यह तो स्पष्ट ही होता है कि परीक्षा गुरु में परिश्रम और सूझ-बूझ के महत्व को उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है तथा यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि गलत कार्य और दुष्ट संगति का परिणाम भयानक होता है। अच्छे कर्म का अच्छा और बुरे का बुरा परिणाम की चेतना में लेखक ने सोच विचार का तत्व डालकर उसका आधुनिकीकरण करने का प्रयत्न किया है । इसमें घटनायें आकस्मिकता या रहस्य के आवरण में नहीं लिपटी हुईं बल्कि ब्रजकिशोर के प्रयत्नों का परिणाम हैं । अर्थात् यह उपन्यास भाग्यवादी, निष्क्रियता का नहीं बल्कि लक्ष्य केन्द्रित निष्काम कर्म का प्रतीक है । इसमें नियति को मनुष्य के कर्म से संदर्भित किया गया है ।

ग. परिवेश को बदलने की क्षमता

प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यासों में तिलस्मी, जासूसी और रोमांस की पृष्ठ-भूमि में कल्पना बाहुल्य पर आधारित कथाओं का निरूपण किया गया था । सामयिक जीवन चर्चाओं, ऐतिहासिक कथाओं एवं आदर्शात्मक गाथाओं का चित्रण करने का प्रयास भी सफलतापूर्वक किया गया ।

प्रेमचन्द युग में (1916-1936)[1] सुधारवादी दृष्टिकोण को तुलनात्मक दृष्टि से सूक्ष्म और कलात्मक बना लिया गया । उसमें कोरा आदर्शवाद नहीं रह गया क्योंकि इसके पूर्व आदर्शवादी पट इतना मोटा था कि अपारदर्शक बन गया था । प्रेमचन्द ने अपने औपन्यासिक दृष्टिकोण को आदर्शोन्मुख 'यथार्थ' कहा है । इस युग में आदर्शवाद को एक ओर बुद्धिवाद से पुष्ट किया गया और दूसरी ओर उसे यथार्थोन्मुख भी बनाया गया । प्रेमचन्द के अन्तिम उपन्यास 'गोदान' में होरी द्वारा

---

1. डा० रामरतन भटनागर, उपन्यास विशेषांक, आलोचना 13, पृ० 81.

परिवेश के दबाव तथा उसको बदलने का प्रयास और असमर्थता का वर्णन एक प्रकार का विचलन है ।

गोदान में होरी का चित्रण एक साधारण किसान के रूप में किया गया है । जो नैतिक, परिश्रमी, भाग्यवादी और साहसी भी है तथा अवसरवादी, चापलूस, लालची और परिस्थितियों के कारण बेइमान भी है । तथा इसकी पीड़ा से बेचैन भी है ।

होरी की एक छोटी सी अभिलाषा थी - एक पछाँई गाय हो, उसका घर बना रहे, परिवार को दो जून की रोटी मिलती रहे और उसके चार-पाँच बीघे जमीन पर उसका स्वामित्व बना रहे ।

होरी अपने लड़के गोबर को समझाते हुए कहता है, "जो दस रुपये का भी नौकर है वह भी हमसे अच्छा खाता पहनता है लेकिन खेतों को छोड़ा भी तो नहीं जाता । खेती छोड़ दे तो और करे क्या ? नौकरी कहीं मिलती है ? फिर मर-जाद भी तो पालना पड़ता है । खेती में जो मरजाद है वह नौकरी में तो नहीं ह है ।"[1]

इस बात से किसान होरी की खेती के प्रति समर्पित निष्ठा और मर्यादा के प्रति सजग पालन का भाव प्रदर्शित होता है जो सामंती समाज के संस्कृति तंत्र के निम्नस्तर के प्रभाव का द्योतक है । एक गरीब किसान अपने अल्प साधनों में कैसे-तैसे जीवन-यापन की ही चिन्ता में लगा है । जमीन छोड़कर किसी अन्य व्यवसाय की ओर न मुड़कर वह उस परिवेश से पलायन की बात नहीं करता । होरी का कार्यक्षेत्र, कर्तव्य क्षेत्र, संघर्ष क्षेत्र जीवन का अस्तित्व बनाये रखने का क्षेत्र है ।

परिस्थितियों के व्यूह में होरी कर्जदार हो गया है । थोड़ी सी खेती से उस कर्ज की भरपाई तो सम्भव थी परन्तु सूद दर सूद ही लौटाने में वह टूटता चला

---

1. प्रेमचन्द, गोदान, पृ0 22.

गया । खेती उस जमाने में पूरे तौर पर दैव के अधीन थी, कभी सूखा पड़ गया या कभी अति अतिवृष्टि, कभी पाला मार गया या कभी फसलों में रोग लग गया । दो-तीन बीघे की किसानी और फिर भाई से बंटवारा, इस प्रकार जो कृषि योग्य जमीन थी वह भी आधी हो गयी ।

होरी इस विषम परिवेश में संघर्ष करते-करते टूटता जाता है । कभी उसका मन सामाजिक नियमों से विद्रोह करता है, कभी संस्कारों में उलझता है तो कभी एक विशिष्ट वर्ग के शोषण तंत्र में पिसता चला जाता है ।

गैर बिरादरी की बहू घर में लाने का दोषारोपण गाँव के उस समय के सामाजिक परिवेश में होरी द्वारा एक साहसिक कदम था । इस संदर्भ में गोदान[1] के निम्न विवरण से वस्तुस्थिति का पता चलता है, "ऐसे असाधारण काण्ड पर गाँव में जो कुछ हलचल मचना चाहिये था, वह मचा और महीनों तक मचता रहा, झुनिया के दोनों भाई लाठियां लिये गोबर को खोजते फिरते थे । -------- गाँव वालों ने होरी को जाति-बाहर कर दिया । कोई उसका हुक्का नहीं पीता, न उसके घर का पानी पीता है । -------- गाँव में जहाँ चार स्त्री पुरुष जमा हो जाते हैं, यही चर्चा होने लगती है ।--------"

होरी इस प्रकार की आलोचनाएं और शुभ कामनाएं सुनते सुनते तंग आ गया था । एक दिन पटवारी लाला पटेश्वरी ने भी होरी को सुनाया कि झुनिया को क्यों नहीं उसके बाप के घर भेज देता सेंत-मेंत में अपनी हंसी करा रहे हो । न जाने किसका लड़का लेकर आ गयी और तुमने घर में बैठा लिया । अभी तुम्हारी दो-दो लड़कियां ब्याहने को बैठी हुई हैं, सोचो कैसे बेड़ा पार होगा ।

होरी ने प्रत्युत्तर में कहा -------- मैं उसे कैसे निकाल दूँ । एक तो आदमी नालायक मिला कि उसकी बाँह पकड़कर दगा दे गया मैं भी निकाल दूँगा, तो इस दशा

---

1. गोदान, पृ0 77-81.

में मेहनत मजूरी भी तो न कर सकेगी । कहीं डूब धंस मरी तो किसे अपराध लगेगा, रहा लड़कियों का ब्याह तो भगवान मालिक है । जब उसका समय आयेगा, कोई न कोई रास्ता निकल ही आयेगा । लड़की तो हमारी बिरादरी में आज तक कुंआरी नहीं रही । बिरादरी के डर से हत्यारे का काम नहीं कर सकता । पटेश्वरी के कथन में यथार्थ स्थिति का वर्णन है जबकि होरी इस सामंती स्तरात्मकता के प्रति ही विद्रोह करता है । उसका कथन मानवीयता का कथन है जो प्रेमचन्द की विशेषता है ।

इतना सब कुछ होता तो गनीमत थी इसकी पराकाष्ठा देखिये कि उसी रात इस समस्या पर विचार करने के लिये गाँव में पंचायत बुलायी गयी । काफी तीव्र आलोचनाओं के प्रहार से होरी को मर्माहत होना पड़ा फिर भी मनुष्यता की मर्यादा को अपने अंतः में संजोये धैर्य से पंचों की कार्यवाही के निमित्त विचारों को सुनता रहा और बाद में "सर्वसम्मति से यही तय हुआ कि होरी पर सौ रुपये तावान लगा दिया जाय । केवल एक दिन गाँव के आदमियों को बटोरकर उनकी मंजूरी ले लेने का अभिनय आवश्यक था । सम्भव था इसमें दस पाँच दिन की देर हो जाती । पर आज ही रात को झुनिया के लड़का पैदा हो गया, और दूसरे ही दिन गाँव-वालों की पंचायत बैठ गयी । होरी और धनिया दोनों ही अपनी किस्मत का फैसला सुनने के लिए बुलाये गये । चौपाल में इतनी भीड़ थी कि कहीं तिल रखने की भी जगह न थी । पंचायत ने फैसला किया कि होरी पर सौ रुपये का नकद और तीस मन अनाज डांड लगाया जाय ।

होरी ने सिर झुकाकर पंचों का फैसला मंजूर किया । खलिहान से अनाज तौलकर दे डाला और बीस रुपये तेलहन, गेहूँ और मटर बेचकर इकट्ठा किया, बाकी अस्सी रुपये के लिये झिंगुरीसिंह के हाथ अपना घर गिरो रख दिया । होरी के दुर्दिनों का क्रम परिवार में जो प्रारम्भ हुआ, उसके फलस्वरूप होरी टूटता गया और जिस इकलौते पुत्र की इच्छा रखने के लिये समाज और परिस्थितियों का मुकाबला उसने किया वह भी कालान्तर में अलग हो गया । तत्कालीन सामाजिक परिवेश जो

रूढ़िवादी और परम्परागत मूल्यों पर स्थापित था वहाँ होरी ने मानवतावादी दृष्टिकोण से झुनिया को अपनाकर एक अदम्य साहस का कार्य किया था । अपना सर्वस्व दाँव पर लगाकर उसे रंच मात्र मलाल न था कि वह परिस्थितियों से समझौता करके अपनी मर्यादा को कुत्सित कर सकता ।

होरी के इस मनुष्यतावादी दृष्टिकोण का स्वागत समकालीन सामाजिक परिवेश में प्रशंसनीय न होकर घोर निन्दा का विषय बन गया ।

इस प्रकार का वर्णन होरी के माध्यम से भारतीय किसान की साँसत को रेखांकित करने के साथ ही साथ गोबर के माध्यम से पूँजीवादी व्यवस्था के आधार पर उस व्यक्तिवाद का भी संकेत करता है जिसके कारण होरी अलग हुआ । बदलते हुए यथार्थ से समायोजित न हो पाने की विवशता का दर्द ही गोदान है । निरर्थकता के अहसास के बावजूद उससे चिपटे रहना संधिकालीन सामाजिक स्थिति का लक्षण है । अपनी नियति को जानते हुए भी उसे बदलने का अनथक प्रयास ही गोदान का कथ्य है । यह उपन्यास मानव नियति का इस दृष्टि से साक्षात्कार करने वाला उपन्यास है । नियति का साक्षात्कार और उससे जूझने का संकल्प गोदान की गाथा है जो पहले उपन्यासों में नहीं था । यहाँ तक कि 'निर्मला' और 'सेवासदन' में भी नहीं है । इस दृष्टि से 'गोदान' हिन्दी उपन्यास और भारतीय कृषक-समाज की तत्कालीन स्थिति और चेतना का समग्र उपन्यास है । मातादीन और सिलिया प्रसंग सामंती और मानवीय दोनों ही मूल्यों को रेखांकित करता है । सिलिया को मरा हुआ घोषित करके परिवार के चले जाने के बाद जो 'मरजाद' का ही परिणाम है, होरी खड़ा होता है और कहता है -

"तू चा आ - पी आ ।"

धनिया यहाँ बैठी है । तेरी पीठ पर की सारी तो लहू से रंग गयी है, कहीं घाव पक न जाय । तेरे घर वाले बड़े निर्दयी हैं ।"[1]

सिलिया ने उसकी ओर करुण नेत्रों से देखा - यहाँ निर्दयी कौन नहीं है, दादा । मैंने तो किसी को दयावान नहीं पाया । दयार्द्र होकर धनिया और होरी सिलिया को अपने घर में शरण देते हैं । सिलिया को घर ले जाने का अर्थ था पं० दातादीन और उनके पुत्र मातादीन से दुश्मनी मोल लेना परन्तु इसकी परवाह न करके होरी मानवता से विमुख नहीं हो पाता । समकालीन सामाजिक ढाँचे में होरी हर विषम परिस्थिति में परम्परागत धारा प्रवाह के दिशा में जाकर विरोध करता है । दुर्व्यवस्थाओं का रूढ़िवादी परम्पराओं का और जानते हुए उसका परिणाम भोगता है । ग्रीक ट्रैजडी में इसी नियतिबोध को ट्रैजडी का मूला-धार माना गया है जिसमें मनुष्य के अथक प्रयास के बावजूद भी समय की चक्की विप-रीत दिशा में ही घूमें । इसी दृष्टि से गोदान परिवेश के चेतना के साथ ही साथ विवशता का भी उपन्यास है ।

घ. <u>मनुष्य पर विश्वास या कर्म पर विश्वास</u>

'कर्मभूमि' प्रेमचन्द का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है जो कर्म पर विश्वास करने की सजग कथा के रूप में वर्णित है । मनुष्य पर विश्वास की जहाँ तक बात आती है, कर्म के बिना व्यक्तिगत विश्वास किस काम का ? स्वयं महात्मा गाँधी जिन्हें 'कर्मभूमि' में सिद्धांतों के स्तर अन्तर्भूत किया गया है, भी कर्म को सर्वोपरि मानते हैं । नगरों और गाँवों के साथ-साथ जन जागरण पैदा करना, लोगों को अहिंसा का मार्ग दिखाना, असहयोग आंदोलन, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, ग्राम सुधार, अछूतोद्धार आदि अनेक कार्यों का विवरण उपन्यास के कुछ गाँधीवादी पात्रों द्वारा, जिसमें प्रो० शान्तिकुमार, अमरकान्त, सलीम, सुखदा आदि प्रमुख रूप से हैं, किया गया है ।

अमरकान्त एक साधारण युवक है जो डा० शान्तिकुमार के सम्पर्क में आकर ग्राम-सेवा का कार्य करने का संकल्प करता है । गाँवों में दुर्दिन में किसानों से लगान वसूल करने जैसे सरासर अन्याय को होता देखकर अमरकांत एक अहिंसावादी जन आन्दोलन का नेतृत्व करता है जिसके फलस्वरूप वह गिरफ्तार हो जाता है । धीरे-धीरे आन्दोलन बढ़ता जाता है जिसके कारण सरकार लगान बंदी का फैसला करती है।

कर्म का रहस्य और सेवा का भाव लेकर अमरकान्त जब गाँवों की दुर्दशा देखता है, तब वह कर्म के लिए समर्पित हो जाता है । अन्यथा अमरकान्त एक अमीर व्यापारी का इकलौता पुत्र होने के कारण गद्दी पर बैठे अपने पिता की भाँति सामानों को गिरवी रखता और अमन चैन से लेन देन का उद्योग कर जीवन-यापन करता ।

इधर शुरू शुरू में सुखदा अमरकान्त की नवविवाहिता पत्नी उसके साथ निभा नहीं पा रही थी । सुखदा में आत्मसम्मान, साहस और स्वतंत्र चिंतन के तत्व मौजूद थे, वह पति-परमेश्वर के रूप में जिद्दी और कुंठाओं से ग्रस्त अमरकान्त को नहीं स्वीकारती । पहले तो अपने श्वसुर के इच्छानुसार अमरकान्त को पिता के साथ व्यवसाय में हाँथ बंटाने की बात करती है, परन्तु जब अमरकान्त गाँवों में जाकर समाज सेवा का कार्य करता रहता है तो वह भी उसी दिशा में कर्मशील हो जाती है । आत्मनिर्भरता के लिए स्कूल में अध्यापन का कार्य करती है । मंदिर में अछूतों के प्रवेश पर पुलिस द्वारा गोलियां चलाये जाने की घटना से उत्तेजित होकर विरोध करती हुयी पुलिस के सामने जाकर भागने वालों को ललकारती है, 'भाइयों' क्यों जा रहे हो ? यह भागने का समय नहीं है दिखा दो कि तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों का होम करते हो । धर्मवीर ही ईश्वर को पाते हैं । 'कर्म में विश्वास रखकर सुखदा परतंत्र भारत में पूरे शहर की सम्मानित नेत्री बन गयी ।

यहाँ तक कि लाला समरकान्त जो एक शुद्ध व्यापारी हैं शुभ और लाभ के सिवा कुछ नहीं जानते, परन्तु जब देखते हैं कि बेटा तो चला ही गया था आज सुखदा भी उनके विरोधियों की पाँति में खड़ी निर्भीकता के साथ गोलियों की बौछार झेल रही है । उनका पुत्र अमरकान्त जब निर्धनों के खेमें में चला गया तो भला पुत्र-प्रेम में पागल उनका हृदय ही क्योंकर पीछे रह जाता ? सामाजिक मर्यादाओं के खोखलेपन का पर्यवेक्षण कर और कर्म की महत्ता को जानने के बाद लाला समरकान्त में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया । जब उद्देश्य बदल जाता है तो कर्मों में परिवर्तन आना आवश्यक हो जाता है । लाला समरकान्त अन्त में अपने बेटे और बहू के कार्यों के

बहुत बड़े हिमायती बनकर समाज के लिए कार्य करते हैं, यहाँ तक कि जेल भी जाते हैं ।

कर्म के क्षेत्र में कूदने पर मनुष्य में और अपने में विश्वास की परम्परा से विरासत में मिला ज्ञान लाला समरकान्त को खोखला लगा ।

मोहम्मद सलीम, अमरकान्त का बचपन का साथी है पढ़-लिखकर पुलिस के आफिसर पद पर नियुक्ति पा जाता है । वह किसान आंदोलन को पुलिस के दृष्टिकोण से मूल्यांकन करता है और सलोनी काकी पर हंटरें लगाता है वह गालियाँ देता है । परन्तु उसमें जब परिवर्तन आता है तो वह अपने पद से इस्तीफा दे देता है । इतना ही नहीं कर्म क्षेत्र में उतर पड़ता है - किसान आंदोलन में जहाँ कई उसके परिचित मिलते हैं - मुन्नी, सलोनी काकी, आत्मानंद, गूदड़ चौधरी आदि । सरकार के नुमाइन्दे मि0 घोष ने जब किसानों से लगान का रुपया वसूल करने के लिए मवेशियों को नीलाम करने की चाल सोची तो सलीम से यह अन्याय न बर्दाश्त हुआ और जाकर बाड़े के सभी मवेशियों को भगा दिया ।

कर्मभूमि की एक सशक्त पात्र मुन्नी है जो सामन्तवादी शोषण और जुल्म का शिकार बनती है परन्तु परिस्थितियों के कारण उसका सम्पर्क पुनः अमरकान्त से हो जाता है । पुनः कर्म से प्रेरित होकर हरिजनों के शोषित, बहिष्कृत एवं उपेक्षित वर्ग में सेवा का कार्य करने लगती है । वह इस विश्वास से एक नयी दिशा की ओर बढ़ रही है जहाँ उसे आदर, प्यार और मातृत्व मिलता चलेगा ।

सलोनी काकी एक ग्रामीण बुढ़िया है जिसके अनुभवों ने उसे ज्ञान दिया है । जिन्दगी के हर तरह के उतार-चढ़ाव देखे थे - भूख, दरिद्रता, अभाव, जुल्म और पीड़ा । उसने संघर्ष का मार्ग अपनाया । अमरकान्त की निष्कपट और निस्वार्थ सेवा करती रही ।

मनुष्य पर विश्वास उसके कर्मों के आधार पर किया जा सकता है तथा उसकी पहचान उसके कर्मों के द्वारा ही होती है उदाहरणस्वरूप अमरकान्त जब एक गाँव के

हरिजनों की बस्ती में पहुँचता है तब वह कैसे पहचान जाता है कि सेवा के प्रथम हकदार ये ही हैं और सेवा का अर्थ केवल सामाजिक भेदभाव दूर करना नहीं है बल्कि उन्हें आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाना है ।[1]

कर्म के बिना मनुष्य की कोई सत्ता नहीं है । कर्म मनुष्य की एक विशिष्टता हो - वही मनुष्य की पहचान हो, वही मनुष्य की संज्ञा हो । कर्मभूमि में कर्मयोग का संदेश है और जीवन संबंधी दृष्टिकोण एक योद्धा की भाँति प्रस्तुत किया गया है । इसका मूल स्वर सेवा और त्याग है ।[2]

ड. <u>चन्द्रकान्ता सन्तति से गोदान तक</u>

देवकीनन्दन खत्री द्वारा रचित चन्द्रकान्ता ।1891। और चन्द्रकान्ता संतति ।1896। महत्वपूर्ण उपन्यास कहे जाते हैं । प्रेमचन्द पूर्व काल के ये उपन्यास बहुत लोकप्रिय थे और कहा जाता है कि इन उपन्यासों को पढ़ने के लिये लोगों ने हिन्दी सीखी ।[3] मनोरंजन की दृष्टि से ये दोनों उपन्यास बड़े ही सशक्त हैं । पात्रों के विचित्र-विचित्र अलौकिक कारनामें पाठकों को चकित करते हैं ।

चन्द्रकान्ता से गोदान तक की यात्रा लगभग चार दशकों से अधिक लम्बी दूरी तय करते हुए कल्पना लोक से यथार्थ तक पहुँचती है । चार भागों में विभक्त 'चन्द्रकान्ता' में नौगढ़ के राजा सुरेन्द्रसिंह के पुत्र कुँवर वीरेन्द्रसिंह तथा विजयगढ़ के राजा जयसिंह की कन्या चन्द्रकान्ता की प्रेमकहानी चित्रित की गयी है । अद्भुत रहस्यमयता एवं विचित्रता पूर्ण घटनाओं से भरी यह कहानी है । राजा जयसिंह के दीवान का लड़का क्रूरसिंह चन्द्रकान्ता से विवाह करना चाहता है । चुनार का राजा शिवदत्त

---

1. डा० रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ० 54.

2. डा० सुरेश सिनहा, हिन्दी उपन्यास, पृ० 209.

3. डा० रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ० 20.

सिंह उपन्यास का खलनायक है। क्रूरसिंह चुनार जाकर शिवदत्त सिंह को अपने पक्ष में करता है जिसके फलस्वरूप दो राज्यों में संघर्ष चलता है। एक तरफ विजयगढ़ तथा नौगढ़ तो दूसरी ओर चुनार। उपन्यास में कई ऐयार हैं, जिसमें सबसे अधिक तेज और दक्ष तेजसिंह ऐयार है जो कुंवर वीरेन्द्रसिंह की सहायता करता है।

प्रसिद्ध उपन्यासकार राजेन्द्र यादव[1] ने चन्द्रकान्ता की भूमिका में अपने विचारों को निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया है, "उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त या बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उत्तर भारतीय या कहें हिन्दीभाषी समाज के मोड़ पर एक ऐसी ही किताब है - चन्द्रकान्ता, सन्तति, भूतनाथ यानी सब मिलाकर एक ही किताब। इसका कारण यह भी हो सकता है कि उस समय का आदमी 'चन्द्रकान्ता' के कथ्य की तरह बिना अपनी जमीन और जीवन-पद्धति छोड़े हुए आर्थिक सुख-सुविधाएँ पा लेना चाहता हो - या कहें, सामन्ती मूल्यों, विश्वासों और व्यवस्था से चिपके रहकर उन्हें पूजते या उनका समर्थन करते हुए ही औद्योगिक सभ्यता के सारे उपकरणों और उपलब्धियों को हथिया लेना चाहता हो? शायद वह भूल गया हो कि उपलब्धियाँ और उपकरण केवल वस्तुएँ और मशीनें ही नहीं होतीं - एक सम्पूर्ण व्यवस्था, सभ्यता या मूल्य - पद्धति का सतह पर दीखने वाला छोटा सा हिस्सा होती है - आकांक्षा और उनकी अपनी शर्तें या अपने तर्क होते हैं - खेल के नियम। बहरहाल इसी दुविधा ने उस समय के आदमी को मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक धरातल पर दो हिस्सों में बाँट दिया था - अन्दरूनी तिलस्मी-तिकड़मों और बाहरी छीना-झपटी, आपा धापी में। वे भयानक दिवा-स्वप्नी लोग हैं जो इन सपनों की कोई एक चाबी तलाश करने के लिए जमीन-आसमान एक किए हुए हैं। उनके लिए सही-गलत, वफादारी, विश्वासघात, नैतिक-अनैतिक का कोई भेद नहीं रह गया है, या सारे मूल्य एक-दूसरे के स्थानापन्न नहीं हो सकतीं।

शिवप्रसाद मल्ल[2] ने अपने महत्वपूर्ण आलेख 'उदय काल: प्रेमचन्द के आगमन तक'

---

1. राजेन्द्र यादव, चन्द्रकान्ता की भूमिका, चन्द्रकान्ता, पृ0 1-44.
2. शिवप्रसाद मल्ल, आलोचना, 13, उपन्यास अंक, 1954, पृ0 71.

में चन्द्रकान्ता और इस तरह की अन्य रचनाओं का वर्णन करते हुए लिखा है, 'इन रचनाओं का कथानक प्रायः एक सा होता है । कोई प्रेमी राजकुमार किसी सर्वगुण सम्पन्न अनिन्द्य सुन्दरी राजकुमारी के प्रेम में विकल हो उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है । राजकुमार मध्यकालीन शौर्य साहस और प्रेम की प्रतिमूर्ति होता है । राजकुमार को उसकी प्रेमिका मिलाने का प्रयत्न उसके ऐयार या जासूस करते हैं । ऐयारी के बटुए और कमन्द को लिये ये ऐयार दुर्गम से दुर्गम स्थान पर पहुँच सकते और आश्चर्य चकित कर देने वाले करिश्मे दिखला सकते हैं । घोड़ों की तरह तेज दौड़ने और रूप बदलने में ये अपना सानी नहीं रखते । वयस्क ऐयार रंग-रोगन की सहायता से सुन्दरी बाला या किसी भी युवक का ऐसा स्वांग रच सकता है कि उसके बाप भी न पहचान पायें । जिसको चाहा जड़ी सुंघाकर बेहोश किया, कपड़े में बांध गठरी बनाया, पीठ पर लादा और फिर आवश्यकतानुसार दस-पाँच कोस ले जाकर कैद कर दिया । बेहोशी दूर करने के लिये इनके पास 'लखलखा' नाम की दिव्यौषधि बराबर रहती है। राजकुमार का राजकुमारी से मिलन कराने के लिए ऐयार प्रयत्न तो करते हैं पर प्रेमी राजकुमार का प्रतिस्पर्द्धी, सकल दूषण-दूषित एक दुष्ट पात्र नाना युक्तियों से इस कार्य में बाधा डालता रहता है, क्योंकि वह स्वयं उस राजकुमारी को प्राप्त करना चाहता है । प्रायः मध्य युगों के ढंग पर वह अपने ऐयारों की सहायता से राजकुमारी को धोखे से या जड़ी सुंघाकर पकड़ मंगवाता है और तिलस्म में कैद कर देता है । इन तिलस्मों में अपार धन-राशि गड़ी रहती है । इसकी बनावट देखकर आज का बड़ा से बड़ा वैज्ञानिक भी विस्मय-विमूढ़ हो जायेगा । उसके भीतर रासायनिक द्रव्यों का बना बगुला आदमी को निगल जाता है, पुतले तलवार चलाते हैं, पत्थर का बना आदमी किसी मनुष्य को सामने पाकर दोनों हाथों से बुरी तरह जकड़ लेता है, नकली शेर दहाड़ते हैं । किवाड़ इस तिलस्म के जादू के बने ताले ऐन्द्रजालिक और कोठरियाँ रहस्यागार होती हैं । एक पटरा हटा कि नीचे सीढ़ियाँ दिखायी पड़ीं । नीचे उतरिये तो दायें, बायें आगे या पीछे एक दरवाजा मिला, फिर सीढ़ियाँ, कुएं, दरवाजे, कमरे, आँगन और बगीचे ——— । तिलस्मों में प्रायः मीठे पानी का सोता और मेवे के दरख्त जरूर होंगे । वैसे होने को पहाड़ जंगल-क्या नहीं हो सकते।

लेकिन तिलस्म को तोड़ना जिसके लिए लिखा होगा वही कर सकता है । तिलस्म तोड़ने का ढंग एक किताब में पहले से ही लिखा, कहीं रखा होगा । फिर वह किताब आखिरकार उसी व्यक्ति के हाथ पड़ेगी जिसके नाम की तिलस्म का टूटना लिखा होगा । फिर तिलस्म टूटता है, प्रतिपक्षी दुष्ट पात्र 'जैसी करनी वैसी भरनी' के अनुसार दण्डित होते हैं और राजकुमार तथा राजकुमारी का विवाह सम्पन्न होता है ।

नियति की दृष्टि से 'चन्द्रकान्ता' के निम्न उद्धरणों का विवरण देकर उपन्यास के कथा की पुष्टि की जा रही है :-

- बीरेन्द्र सिंह का नाम सुनते ही यकायक चन्द्रकान्ता का अजब हाल हो गया । भूली हुई बात फिर याद आ गई, कमल-मुख मुरझा गया, ऊँची ऊँची सांस लेने लगी, आँखों में आंसू टपकने लगे । धीरे-धीरे कहने लगी, 'न मालूम विधाता ने मेरे भाग्य में क्या लिखा है ? न मालूम मैंने उस जन्म में कौन ऐसे पाप किये हैं जिनके बदले यह दुख भोगना पड़ा ।[1]

- चन्द्रकान्ता ने तेजसिंह से ताकीद की कि 'दूसरे, तीसरे जरूर यहाँ आया करो, तुम्हारे आने से ढाढ़स बंधी रहती है ।

"बहुत अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगा ।" कहकर तेजसिंह चलने को तैयार हुए, चन्द्रकान्ता उन्हें जाते देख रोकर बोली, 'क्यों तेजसिंह, क्या मेरी किस्मत में कुमार की मुलाकात नहीं बदी है ?" इतना कहते ही गला भर आया और फूटकर रोने लगी । तेजसिंह ने बहुत समझाया और कहा, 'देखो, यह सब बखेड़ा इसी वास्ते किया जा रहा है, जिससे तुम्हारी उनकी हमेशा के लिए मुलाकात हो, अगर तुम ही घबड़ा जावोगी तो कैसे काम चलेगा ।[2]

---

1. देवकीनंदन खत्री, चन्द्रकान्ता, पहला भाग, तीसरा बयान, पृ0 15.
2. वही, चौथा बयान, पृ0 22.

– महराज को तेजसिंह का बहुत अफसोस रहा, दरबार बरखास्त करके महल में चले गये । बात ही बात में महाराज ने तेजसिंह का जिक्र महारानी से किया और कहा, "किस्मत का फेर इसे कहते हैं । क्रूरसिंह ने तो हलचल मचा ही रक्खी थी, मदद के वास्ते एक तेजसिंह आया था सो कई दिन से उसका भी पता नहीं लगता । अब मुझे उसके लिए सुरेन्द्र सिंह से शर्मिन्दगी उठानी पड़ेगी । तेजसिंह की चाल-चलन बात चीत, इल्म और चालाकी पर जब ख्याल करता हूँ तबीयत उमड़ आती है । बड़ा ही लायक लड़का है, उसके चेहरे पर उदासी कभी देखी ही नहीं ।"[1]

– हाय ! चन्द्रकान्ता का पता लगा भी तो किसी काम का नहीं । भला पहिले तो यह मालूम हो गया था कि शिवदत्त चुरा ले गया, मगर अब क्या कहा जाय ! हा चन्द्रकान्ता ! तू कहाँ है ? मुझको बेड़ी और यह कैद कुछ तकलीफ नहीं देता जैसा कि तेरा लापता हो जाना खटक रहा है ।

------ हे ईश्वर ! तू ने कुछ न किया, भला मेरी हिम्मत को तो देखा होता कि इश्क की राह में कैसा मजबूत हूँ, तू ने तो मेरे हाथ-पैर ही जकड़ डाले । हाय, जिसको पैदा करके तूने हर तरह का सुख दिया उसका दिल दुखाने और उसको खराब करने में तुझे क्या मजा मिलता है ।[2]

'चन्द्रकान्ता सन्तति' का कथा साहित्य एवं उसके वृहत् रचनात्मक प्रारूप को चौबीस भागों में वर्णित करके, देवकीनन्दन खत्री ने तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासों की परम्परा स्थापित की । ये उपन्यास मानव-नियति की दृष्टि से भाग्यवादिता को इंगित करते हैं । तिलस्म को हासिल करना और उसके निर्देशों के अनुसार अपार सम्पत्ति अथवा सुख-सुविधा एवं ऐच्छिक वस्तुओं को प्राप्त करना भाग्यवादिता के द्वारा संभव हो सकता है । निम्न उद्धरणों में रहस्यमय दृश्यों, घटनाओं का चित्रण संतति के विभिन्न खंडों द्वारा दर्शाया गया है :-

---

1. चन्द्रकान्ता, पहला भाग, सोलहवाँ बयान, पृ0 60.
2. वही, दूसरा भाग, दसवाँ बयान, पृ0 109.

- अब तो कोतवाल साहब के दिल में कोई दूसरा ही शक पैदा हुआ । वह तरह - तरह की बातें सोचने लगे । "गया की रानी तो हमारी माधवी है, यह दूसरी कहाँ से पैदा हुई ? क्या वह माधवी तो नहीं है ? नहीं-नहीं, वह भला यहाँ क्यों आने लगी । उससे मुझसे क्या संबंध । वह तो दीवान साहब की हो रही है । मगर वह आयी भी हो तो कोई ताज्जुब नहीं, क्योंकि एक दिन हम तीनों दोस्त एक साथ महल में बैठे थे और रानी माधवी वहाँ पहुँच गयी थी, मुझे खूब याद है कि उस दिन उसने मेरी तरफ बेढब तरह से देखा था और दीवान साहब की आँखें बचा घड़ी घड़ी देखती थी ------- मगर ऐसी किस्मत कहाँ ? खैर जो हो इनकी बात मान जरा झाँक कर देखना तो चाहिये, शायद ईश्वर ने दिन फेरा ही हो ।"[1]

- तेजसिंह ने उस मुर्दे को ठीक रामानंद की सूरत का बनाया और भैरोसिंह की मदद से उठाकर रोहतासगढ़ तहखाने के अंदर ले गये और तहखाने के दारोगा के सुपुर्द कर और उसके बारे में बहुत सी बातें समझा-बुझाकर असली रामानंद को अपने लश्कर में उठा लाये ।[2]

- कुन्दन ने फिर गिनना शुरू किया और टूटी हुयी झोपड़ी से पाँचवें नंबर पर रुक गयी, झोपड़ी उठाकर नीचे रख दी और डिब्बे को उठा लिया, तब अच्छी तरह गौर से देखकर जोर से जमीन पर पटका । डिब्बे के चार टुकड़े हो गये, मानो चार जगहों से जोड़ लगाया गया हो । उसके अंदर से एक ताली निकली जिसे देख कुन्दन हंसी और खुश होकर आप-ही-आप बोली, देखो तो लाली को मैं कैसा छकाती हूँ ।[3]

- जब दोनों साधु तहखाने में पहुँचे तो वहाँ एक सिपाही को पाया और संदूक पर भी नजर पड़ी । एक मोमबत्ती आले पर जल रही थी । वह सिपाही इन दोनों को देख चौंका और तलवार खैंचकर सामना करने पर मुस्तैद हुआ । एक साधु ने झपटकर

---

1. चन्द्रकान्ता सन्तति, खण्ड 1, दूसरा भाग, चौथा बयान, पृ0 92.
2. वही, तीसरा भाग, चौथा बयान, पृ0 234.
3. वही, चौथा भाग, ग्यारहवाँ बयान, पृ0 279.

उसकी कलाई पकड़ ली और दूसरे ने उसकी गर्दन में एक ऐसा घूंसा जमाया कि वह चक्कर खाकर गिर पड़ा । उसकी तलवार खींच ली गयी और बेहोश कर चादर से जो कमर में लपेटी हुयी थी, उसकी मुश्कें बांध दी गई इसके बाद दोनों साधु उस संदूक की तरफ बढ़े । सन्दूक में ताला लगा हुआ न था बल्कि एक रस्सी उसके चारों तरफ लपेटी हुयी थी । रस्सी खोली गई और उस संदूक का पल्ला उठाया गया, एक साधु ने मोमबत्ती हाथ में ली और झांककर संदूक के अंदर देखा, देखते ही "हाय!" कहकर जमीन पर गिर पड़ा । इसके बाद दूसरे ने देखा और उसकी भी यही अवस्था हुयी।[1]

- आनन्द ईश्वर चाहेगा तो अब थोड़ी देर में हम लोग इस कैदखाने के बाहर भी निकल जायेंगे ।[2]

- अहा, ईश्वर की महिमा भी कैसी विचित्र है । बुरे कर्मों का बुरा फल अवश्य ही भोगना पड़ता है । जो मायारानी अपने सामने किसी को कुछ समझती ही न थी, वही आज किसी के सामने जाने या किसी को मुंह दिखाने का साहस नहीं कर सकती । जो मायारानी कभी किसी से डरती ही न थी, वही आज एक पत्ते के खड़खड़ाने से भी डरकर बदहवास हो जाती है । जो मायारानी दिन-रात हंसी-खुशी में बिताया करती थी, वह आज रो-रोकर अपनी आंखें सुजा रही है ।[3]

- लीला : वह भूतनाथ था । जब मैं दीवान साहब के यहां से भागकर शहर के बाहर हो रही थी । तब यकायक उससे मुलाकात हुयी । उसने स्वयं मुझसे कहा कि "फलानी बात का कहने वाला मैं हूं, तू मायारानी से कह दीजियो कि अब तेरे दिन खोटे आए हैं, अपने किए का फल भोगने के लिए तैयार हो रहे, हां यदि मुझे कुछ देने की सामर्थ्य हो तो मैं तेरा साथ दे सकता हूं ।"[4]

---

1. चन्द्रकांता सन्तति, खण्ड 2, पांचवां भाग, तेरहवां बयान, पृ0 73.
2. वही, आठवां भाग, दूसरा बयान, पृ0 211.
3. वही, खण्ड 3, नौवां भाग, आठवां बयान, पृ0 40.
4. वही, पृ0 41.

- अहा, इस समय मायारानी की खुशी का कोई ठिकाना है । इस समय उसकी किस्मत का सितारा फिर से चमक उठा । उसने हंसकर नागर की तरफ देखा और कहा - माया : क्या अब भी मुझे किसी का डर है ? नागर : आज मालूम हुआ कि आपकी किस्मत बड़ी जबरदस्त है । अब दुनियां में कोई भी आपका मुकाबला नहीं कर सकता ।[1]

-भूतनाथ : (उदासी के साथ) मेरी किस्मत, मैं लाचार हूँ । इस मदद के लिये केवल एक वही किताब थी, जिसे पाने की उम्मीद में मैं आपके पास आया था, खैर, अब जाता हूँ, जो कुछ हैरानी बदी है, उसे उठाऊँगा और जिस तरह बनेगा असली बलभद्रसिंह का पता लगाऊँगा ।[2]

- गोपाल : (ऊँची सांस लेकर) विधाता के हाथों से मैं बहुत सताया गया हूँ । सच तो यों है कि अभी तक मेरे होश-हवास ठिकाने नहीं हुये, इसलिए मैं कुछ मदद करने लायक नहीं हूँ । इसके अतिरिक्त मैं खुद अपनी तिलिस्मी किताब खो जाने के गम में पड़ा हुआ था, मुझे किसी की बात कब अच्छी लगती थी ।[3]

- भूतनाथ : इत्तिफाक से राजा वीरेन्द्र सिंह के ऐयारों ने जैपालसिंह को गिरफ्तार कर लिया है, जो आपकी सूरत बनकर लक्ष्मीदेवी को धोखा देने गया था। जब उसे अपने बचाव का कोई ढंग न सूझा तो उसने आपके मार डालने का दोष मुझ पर लगाया । मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था कि आप जीते हैं, परन्तु ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए कि यकायक आपके जीते रहने का शक मुझे हुआ और धीरे-धीरे वह पक्का होता गया तथा मैं आपकी खोज करने लगा । अब आशा है कि आप स्वयं मेरी तरफ से जैपालसिंह का मुँह तोड़ेंगे ।[4]

---

1. चन्द्रकान्ता सन्तति, खण्ड 3, नौवां भाग, दसवां बयान, पृ0 53.
2. वही, खण्ड 4, तेरहवां भाग, छठवां बयान, पृ0 28.
3. वही, चौदहवां भाग, ग्यारहवां बयान, पृ0 142.
4. वही, पन्द्रहवां भाग, बारहवां बयान, पृ0 220.

- कुमार ने सूर्यू को पैर पर से उठाया और दिलासा देकर कहा, 'सर्यू, इन्दिरा की जुबानी तुम्हारा हाल पूरा-पूरा तो नहीं पर बहुत-कुछ सुन चुका हूँ --। परन्तु अब तुम्हें चाहिए कि अपने दिल से दुख को दूर करके ईश्वर को धन्यवाद दो, क्योंकि तुम्हारी मुसीबत का जमाना अब बीत गया और ईश्वर तुम्हें इस कैद से बहुत जल्द छुड़ाने वाला है ।[1]

- अफसोस उस समय मैंने बड़ा ही धोखा खाया और उसके सबब से मैं बड़े संकट में पड़ गई, क्योंकि वह वास्तव में मेरी माँ न थी, बल्कि मनोरमा थी और यह हाल मुझे कई दिनों बाद मालूम हुआ । मैं मनोरमा को पहचानती न थी मगर पीछे मालूम हुआ कि वह मायारानी की सखियों में से थी और गौहर के साथ वह वहाँ तक गयी थी, मगर इसमें भी कोई शक नहीं कि वह बड़ी शैतान, बेदर्द और दुष्टा थी । मेरी किस्मत में दुख भोगना बदा हुआ था, जो मैं उसे माँ समझकर कई दिनों तक उसके साथ रही और उसने भी नहाने धोने के समय अपने को मुझसे बहुत बचाया । प्राय: कई दिनों बाद वह नहाया करती और कहती कि मेरी तबियत ठीक नहीं है ।[2]

- पहला दलीप : खैर, जब तुम्हारी बदकिस्मती आ गयी है, तो हम कुछ नहीं कह सकते, तुम लड़के देख लो और जो कुछ बदा है भोगो, मगर साथ ही इसके लिये भी सोच लो कि तुम्हारी तरह इसके और मेरे हाथ में भी तिलस्मी खंजर है और इन खंजरों की चमक में तुम्हारे आदमी तुम्हें कुछ भी मदद नहीं पहुँचा सकते ।[3]

- तुम्हारा पत्र पढ़ने से कलेजा फिल गया । सच तो यह है कि दुनियाँ में मुझ - सा बदनसीब भी कोई न होगा ? खैर, परमेश्वर की मरजी ही ऐसी है, तो मैं क्या कर सकता हूँ । दारोगा के बारे में मैंने जो प्रतिज्ञा तुमसे की है, उसे झूठा

---

1. चन्द्रकान्ता सन्तति, खण्ड चार, सोलहवाँ भाग, ग्यारहवाँ बयान, पृ0 276.
2. वही, खण्ड पाँच, उन्नीसवाँ भाग, छठवाँ बयान, पृ0 169.
3. वही, बीसवाँ भाग, चौदहवाँ बयान, पृ0 283.

न होने दूँगा । मैं अपने कलेजे पर पत्थर रखकर सब कुछ सहूँगा, मगर वहाँ जाकर बेचारी सरयू को अपना मुंह न दिखाऊँगा और न दारोगा से मिलकर उसके दिल में किसी तरह का शक भी आने दूँगा । हाँ, अगर सरयू की जान बचती नजर आवे या इस बीमारी से बच जाय तो उसे जिस तरह मुनासिब समझना, मेरे पास पहुँचा देना और अगर वह मर जाय तो मेरी जगह तुम बैठे ही हो, उसकी अन्त्येष्टि क्रिया अपनी हिम्मत के मुताबिक करके मेरे पास आना । मेरी तबियत अब दुनिया से हट गयी, बस इससे ज्यादे मैं कुछ नहीं कहा चाहता, हाँ, यदि कुछ कहना होगा तो तुमसे मुलाकात होने पर कहूँगा । आगे जो ईश्वर की मर्जी ।[1]

– किशोरी : ठीक है, जो काम लाचारी के साथ करना पड़ता है, वह चाहे अच्छा ही क्यों न हो, परन्तु चित्त को बुरा लगता है, फिर भयानक तथा कठिन कामों का तो कहना ही क्या । मुझे तो जंगल में शेर तथा भेड़ियों का इतना ख्याल न होता था, जितना दुश्मनों का, मगर वह समय और ही था, जो ईश्वर न करे किसी दुश्मन को दिखे । उस समय हम लोगों की किस्मत बिगड़ी हुयी थी और अपने साथी लोग भी दुश्मन बनकर सताने के लिये तैयार हो जाते थे ।[2]

– भूतनाथ : ।भारी आवाज में। खैर अगर मैंने अपने लड़के का खून किया, तब भी दलीपशाह का कसूरवार हूँ । इसके अतिरिक्त और भी कई कसूर मुझसे हुए हैं, अच्छा हुआ कि मेरी स्त्री मर गयी है, नहीं तो उसके सामने -------- मैं : मगर हरनामसिंह और कमला को ईश्वर कुशलपूर्वक रखें ।

– भूतनाथ : ।लम्बी सांस लेकर। बेशक भूतनाथ बड़ा ही बदनसीब है । मैं : अब भी सम्हल जाऊँ तो कोई चिन्ता नहीं ।[3]

---

1. चन्द्रकांता सन्तति, खण्ड छः, इक्कीसवाँ भाग, दूसरा बयान, पृ0 21.

2. वही, तेइसवाँ भाग, सातवाँ बयान, पृ0 175.

3. वही, चौबीसवाँ भाग, तीसरा बयान, पृ0 256.

जासूसी उपन्यास का दौर जब चला तो गोपाल राम गहमरी ने इस क्षेत्र में तहलका मचा दिया । बनारस से 'जासूस' नामक मासिक पत्रिका भी गहमरी जी के संरक्षण में निकलने लगी । जासूसी उपन्यास की पृष्ठभूमि सामाजिक एवं तात्कालिक घटनाओं से सम्बन्ध रखती है इसलिये ऐसे उपन्यासों की लोकप्रियता बढ़ने लगी । पाठकों को तिलस्मी-ऐयारी पुस्तकों के श्रेणी में जासूसी उपन्यास कम मन गढ़न्त लगे और धीरे-धीरे उन उपन्यासों का प्रचलन मंद पड़ता गया । डा० लक्ष्मणसिंह विष्ट[1] तिलस्मी उपन्यासों को ऐतिहासिक जासूसी मानते हैं ।

जासूसी उपन्यासों में 'गेरुआ बाबा'[2] 'काशी की घटना' ठन-ठन गोपाल, मैम की लाश, खूनी का भेद आदि लगभग डेढ़ सौ उपन्यास गहमरी जी ने लिखा । रहस्यमय और रोमांचक घटनाओं के प्रति मनुष्य में सामान्यतया स्वाभाविक आकर्षण होता है । ऐसी विचित्र घटनाओं का क्रम एक विश्वसनीय रूपरेखा में तैयार करने की विधा को जासूसी उपन्यासों की सृष्टि का कारण माना जा सकता है । इंग्लैण्ड में भी ऐसे समाज में हुई हत्या या चोरी-डाके के षडयन्त्रों का पता लगाने के लिये पुलिस और सी०आई०डी० विभाग का विशेष संगठन हो गया तब शरलाक-होम्स जैसे चरित्रों की सृष्टि संभव हुई ।[3] अनेक तथ्यों तथा वैज्ञानिक तरीकों द्वारा कार्य-कारण शृंखला की पुष्टि करके उपन्यासकार घटना की सत्यता प्रमाणित करने की चेष्टा में जुटा रहता है जबकि तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों में जादुई तत्वों का प्रयोग होता है ।

सेठ मुरलीधर के घर पर एक बड़ी चोरी होती है जिसमें उनकी बेटी प्यारी के कीमती जेवरात चले जाते हैं । इस भयंकर चोरी की गुत्थियों को सुलझाने का कार्य 'गेरुआ बाबा' नामक जासूस को सुपुर्द किया जाता है । प्यारी की शादी

---

1. डा० लक्ष्मण सिंह विष्ट, प्रेमचन्द पूर्व के कथाकार और उनका युग, पृ० 162.

2. गोपाल राम गहमरी, गेरुआ बाबा, 1929.

3. आलोचना 13, उपन्यास अंक, 1954, पृ० 73.

मूलचन्द नामक व्यक्ति से होती है जो वकालत करता है। पेशे से वकालत अपने में ही अत्यंत सूझ-बूझ की और बुद्धि कौशल का प्रयोग - क्षेत्र माना जाता है। मूलचन्द की कुछ हरकतों से सन्देह होने लगता है कि कहीं उस चोरी में उसी का हाथ तो नहीं है? गेरुआ बाबा अपने अनुभव और तर्कबुद्धि के प्रयोग से चेहरा देखकर भीतर का आदमी पहचानने में निपुण है। मुरलीधर की खोई हुई पालित नगीना, भोंदू नामक एक व्यक्ति के साथ रहने लगी है परन्तु वह व्यक्ति एक असामाजिक तत्वों के साथ गिरोह में शामिल हो जाता है। एक विस्मयकारी घटना का क्रम उपन्यास के कौतूहल बढ़ाने में बहुत सहायक होता है। एक वनमानुष के द्वारा चोरी करने की कला में दक्षता हासिल करके मूलचन्द अपने को समाज के सामने पाक-साफ बनाए रहता है। अन्त में जब यह ज्ञात हो जाता है कि किस प्रकार गेरुआ बाबा ने वनमानुष का पता लगाकर चोरी का सूत्रपात जानने का प्रयास किया। उपन्यास रोचक होने के साथ साथ अस्वाभाविक घटना क्रमों की शृंखलाबद्ध स्थितियां हैं।

जासूसी उपन्यासों में यथार्थ की प्रतीति होती है जो यथार्थ से परे होने पर भी यथार्थ की विश्वसनीयता प्राप्त करती है तथा रहस्यमय घटनाओं का जाल बुनकर लेखक जिनकी पुष्टि करता है।

प्रेमचन्द पूर्व के उपन्यास परम्परा में पं० किशोरीलाल गोस्वामी का एक महत्वपूर्ण स्थान है जिन्होंने लगभग पैंसठ उपन्यास लिखे हैं जिनमें सामाजिक और ऐतिहासिक भी हैं। गोस्वामी जी उपन्यास की परम्परा संस्कृत गद्य काव्य 'कादम्बरी', 'वासवदत्ता' 'दशकुमारचरित' आदि से जोड़ते थे, उसे प्रेम का विधान मानते थे और सामाजिक दृष्टि से शिक्षा का साधन भी।[1] गोस्वामीजी की दृष्टि में सद्भावना और सच्चरित्रता का जीवन-काल में परिणति भी सुखद एवं सफल होगी। इतना ही नहीं उनके कृतियों में बुराई, दुर्व्यवहार और दुश्चरित्रता की परिणति कठोर

---

1. आलोचना 13, उपन्यास अंक, 1954, पृ० 74.

दुखद एवं दुखांत होगी । प्रायः सभी दुराचारी पात्रों का किसी न किसी प्रकार अंत करा दिया जाता है । यह अन्त भी ऐसा होता है कि पाठक पाप के परिणाम की वीभत्सता को पूरी तरह देख ले । 'माधव-माधवी'[1] व मदन-मोहिनी नामक उपन्यास में दीवान के साथ व्यभिचार करने वाली बड़ी बहू गर्भपात के उपरान्त अस्पताल में मर जाती है, दीवान मेहतरानी के साथ कुकर्म करता हुआ घर की छत गिर जाने से समाप्त हो जाता है । मदन को गायब करने वाला मुरारी तिवारी नाव उलट जाने से मर जाता है । इसके विपरीत सदाचारी पात्र विपत्तियों के बीच से गुजरकर भी अन्त में कृतकार्य होते हैं । माधव का विवाह माधवी से हो जाता है, मदन का मोहिनी से तथा शंकरदयाल का दुर्गा से । लाला जी को वृद्धावस्था में पुत्र उत्पन्न होता है । गरीब माधव को अच्छी सी कोठी और बहुत सा धन मिल जाता है ।

गोस्वामी जी द्वारा इस प्रकार उनके कई उपन्यासों में ऐसी परिणति का उद्घाटन किया गया है जैसे 'स्वर्गीय कुसुम या कुसुम कुमारी'[2] के 'एक प्रश्न' शीर्षक पचासवें परिच्छेद में लेखक ने वियोगान्त प्रेमियों से यह समझ लेने का आग्रह किया है कि 'कुसुम मर गई, पागल बसन्त ।उसका प्रेमी। भी मर गया और उन दोनों के मरने पर ।बसन्त की पत्नी। गुलाब ने भी अपनी जान देकर अपने पाप अर्थात् सपत्नी वध और पति-हत्या का प्रायश्चित कर डाला । -------- ।पर। हा खेद । भला हम आपसे यह पूछते हैं कि कुसुम या बसन्त ने धर्म, कर्म, समाज, लोक,परलोक, देश, विदेश या किसी वियोगान्त प्रेमी विशेष का क्या बिगाड़ा है कि ये दोनों यों संसार निकाल बाहर किये जायँ और जिन अर्थ-पिशाच, नर-राक्षसों से धर्म-कर्म, संसार-समाज, देश-विदेश और व्यक्ति विशेष का सत्यानाश हो रहा है, वे दुराचारी लोग मूँछों पर ताव फेरते हुए मार्कण्डेय बनकर दीर्घजीवी हों । हा, धिक । । ।

उपरोक्त दृष्टांतों से यह कहना तार्किक होगा कि कर्म-फल के जीवन-दर्शन से

---

1. शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास, पृ0 42.
2. आलोचना, 13, उपन्यास अंक, 1954, पृ0 75.

गोस्वामी जी के उपन्यासों में एक मूलभूत दृष्टि मिलती है । सम्भवतः इस संदर्भ को प्रमाणित करने के उद्देश्य से कई घटनाक्रमों को उपन्यास की संरचना में जोड़ा गया है जो यथार्थ से परे दीखती हैं ।

इस प्रकार के उपन्यासों में नियति का प्रयोग भाग्यवादी दृष्टि से भी है । पात्र कर्म अवश्य करते हैं परन्तु मत मानकर करते हैं कि होनी के बावजूद कर्म आवश्यक है । कर्म की स्वीकृति भाग्य को नियति में परिणित कर देती है । चन्द्रकान्ता संतति में भूतनाथ या राजकुमारों को अपनी नियति का पता है । उनके जीवन का लक्ष्य तिलिस्म तोड़ना है और उसके क्रम में अनसोचे कष्ट भी सहने हैं । इसलिए इन उपन्यासों में नियतिबोध का वह दर्द नहीं मिलेगा जो महत्वपूर्ण रचनाओं में आंतरिक एकालाप का कारण बनता है ।

उपन्यासों की इसी शृंखला में जयशंकर प्रसाद ने अपना प्रथम सशक्त उपन्यास 'कंकाल' सन् 1929 में लिखा जिसमें उन्होंने तत्कालीन समाज और धार्मिक मान्यताओं तथा उससे उत्पन्न विषमताओं का वर्णन किया । 'कंकाल' में सामाजिक बंधनों एवं व्यक्ति की सहज प्रवृत्तियों के प्रतिक्रियाओं का मार्मिक अंकन किया गया है । महात्माओं एवं तीर्थस्थानों की पवित्रता का व्यापक विवरण देकर प्रसाद जी ने संकेत किया है कि वास्तव में यह समाज जैसा हम देखते हैं वह वैसा है नहीं । महात्मा देव-निरंजन, ईसाई धर्म गुरु बाथम आदि अनेक पात्रों द्वारा उनके बाह्य प्रतिष्ठा और अन्तः चरित्र की कलुषता से प्रभावित नग्नता का वर्णन समाज के लिए एक व्यंग्यप्रधान दृष्टिकोण की ओर इंगित करता है । प्रसाद जी का विश्वास था कि धर्म हमारे समाज को पतित होने से बचा नहीं सका है और नहीं तो उसने अपने भीतर पैदा होने वाली निस-मूल विसंगतियों से वर्ण संकरी समाज की रचना की है ।[1]

डा० सुरेश सिनहा[2] ने 'कंकाल' उपन्यास को समाज के सड़ांध के प्रति आक्रोश

---

1. डा० रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ० 66.
2. डा० सुरेश सिनहा, हिन्दी उपन्यास, पृ० 214-215.

के रूप में व्यक्त किया है । इस उपन्यास में रूढ़ियों एवं जर्जरित मान्यताओं पर तीव्र व्यंग्य कसा गया है तथा नैतिक - अनैतिक संबंधों के प्रति आँखें खोलने की चेष्टा की गयी है । व्यक्तिवादी मानवतावाद का एक और प्रमुख तत्व विवाह की स्वतंत्रता का समावेश भी इस उपन्यास में हुआ है । व्यक्तिवादी मानवतावाद मानता है कि विवाह दो मन का समझौता है, समाज का नियंत्रित विधान नहीं । वह परस्पर जीवन-निर्वाह करने और एक-दूसरे को निकट से समझने की शर्त है, व्यक्ति के भावों की श्रृंखला नहीं । विजय के माध्यम से प्रसाद जी ने यही स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है, और समाज को इसे स्वीकारना ही होगा । समाज यदि इसकी उपेक्षा करेगा उसकी वही स्थिति होगी, जो विजय की हुई । वह जीवन भर कंकाल ही बना रहा । प्रसाद जी कंकाल के माध्यम से ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें सभी इकाइयाँ स्वतंत्र हों और प्रत्येक दायित्व का वहन वह स्वयं करे । प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अपने निर्माण का अधिकार होना चाहिये । कंकाल में भारत संघ की एक रचना में यही उद्देश्य अन्तर्निहित है ।

शिवनारायण श्रीवास्तव[1] ऐसा स्वीकार करते हैं कि इस उपन्यास में व्यक्ति को नियति के हाथों की पुतली मानकर उसके प्रति व्यंग्य किया गया जिसमें चोट करने की भावना उतनी नहीं है जितनी संवेदना और सुधार की । यह संवेदना किसके प्रति है, और वह सुधार क्या है, जिसकी कामना कंकाल में की गयी है । यह संवेदना समाज द्वारा पीड़ित व्यक्ति के प्रति है । हमारा समाज इतना विकृत हो गया है कि जिनमें अपने कर्मों पर आवरण डालने की क्षमता है, उन पर किसी की दृष्टि नहीं पड़ती अथवा डालने की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती, किन्तु जो दुर्बल हैं, असहाय हैं, उनकी तनिक भी त्रुटि समाज की आँखों में बहुत बड़ी होकर दिखाई पड़ती है, और समाज के विधि-निषेधों के नीचे उन्हें आजीवन घृणित होना पड़ता है । प्रसाद जी का यह उपन्यास यथार्थ का एक नया आयाम लेकर आया यद्यपि मु0 प्रेमचन्द के द्वारा उपन्यासों में यथार्थ उद्घाटन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी ।

---

1. शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास, पृ0 117-123.

परिस्थितियों एवं परिवेश के दायरे में 'कंकाल' की प्रायः सभी स्त्रियाँ पुरुषों द्वारा प्रवंचित हैं जिन्होंने समाज में सज्जनता का आवरण पहन रखा है। तारा को मंगलदेव ठीक विवाह के दिन इसलिये छोड़कर भाग जाता है कि उसकी माँ दुश्चरित्र थी। निर्मल तारा समाज के उत्पीड़न का लक्ष्य बनती है एवं केवल एक तुच्छ विचार की दासता के कारण उस पुरुष द्वारा परित्यक्त की जाती है जो आदर्शवादी आवरण से सज्जित है। इस जघन्य अन्याय को मूकभाव से सहन करती तारा अपने जीवन को सामान्य धारा में डालकर नियति के हाथों समर्पित हो जाती है। 'घंटी' का जीवन इसलिये दुरूह हो जाता है, क्योंकि वह बाल विधवा है। उसका क्या दोष? परिस्थितियों और तत्कालीन सामाजिक मूल्यों का कुचक्र उस सुंदर बाला की नियति जीवनोत्थान का कोई अवसर नहीं देता। इन दोनों स्त्री पात्रों का असहाय जीवन और दयनीयता का चित्रण एक प्रश्न चिन्ह उभारता है। प्रसाद जी ने एक स्त्री पात्र से इन विचारों की पुष्टि करते हुये लिखा है "कोई समाज और धर्म स्त्रियों का नहीं है बहन। सब पुरुषों के हैं। सब हृदय को कुचलने वाले क्रूर हैं फिर भी मैं समझती हूँ कि स्त्रियों का एक धर्म है कि आघात सहने की क्षमता रखना।" किशोरी देवनिरंजन से छली जाती है और उनसे विजय नामक एक अवैध संतान पैदा होता है किशोरी जब मृत्यु-शैया पर पड़ी रहती है उस समय भी विजय को अपना पुत्र कहकर अपने पास नहीं रख पायी क्योंकि समाज में तिरस्कृत होने के भय से कभी भी माँ का स्थान न दे सकी। विजय भिखमंगों की श्रेणी में बैठकर काशी के सड़कों पर नियति के चंगुल में जीवन का करुण अंत 'कंकाल' निर्वाह करता है।

प्रसाद का 'कंकाल' तितली की तुलना में नियतिवादी उपन्यास है। इसमें नियतिबोध नहीं नियतिवाद है क्योंकि किसी पात्र को नियति का बोध नहीं है। नियतिबोध इस उपन्यास में कृष्णशरण को अवश्य है जैसे तितली के बाबा रामनाथ को है। वस्तुतः बाबाओं का यह नियतिबोध महात्मा गांधी के नियतिबोध की याद दिलाता है।

प्रस्तुत उद्धरणों द्वारा 'कंकाल' उपन्यास में चित्रित नियति के कुछ दृष्टांत रेखांकित किये गये हैं :-

"निष्ठुर माता-पिता ने अन्य संतानों के जीवित रहने की आशा से अपने ज्येष्ठ पुत्र को महात्मा का शिष्य बना दिया। बिना उसकी इच्छा के वह संसार से - जिसे उसने देखा भी नहीं था - अलग कर दिया गया। उसका गुरुद्वारे का नाम देवनिरंजन हुआ।"[1]

तारा अपनी दुर्भाग्य की बात बताते हुए कहती है, "मैं हरिद्वार की रहने वाली हूँ। अपने पिता के साथ काशी में ग्रहण नहाने गयी थी। बड़ी कठिनता से मेरा विवाह ठीक हो गया था। काशी से लौटते ही मैं एक कुल की स्वामिनी बनती, परन्तु दुर्भाग्य -------। उसकी भरी आँखों से आंसू गिरने लगे। तारा से कैसे गुलेनार बना दी जाती है और कोठे पर पहुँचा दी जाती है - स्वयं बताती है, "मेरा भगवान जानता है कैसे करती है। दुष्टों के चंगुल में पड़कर मेरा आहार-व्यवहार तो नष्ट हो चुका केवल सर्वनाश होना बाकी है। उसमें कारण है अम्मा का लोभ और मेरा कुछ आने वालों से ऐसा व्यवहार भी होता है कि अभी वह जितना रुपया चाहती हैं, नहीं मिलता। बस इसी प्रकार बची जा रही हूँ, परन्तु कितने दिन। गुलेनार सिसकने लगी।[2]

तारा कोठे से मंगलदेव की सहायता से निकलकर भागने में सफल तो हो जाती है परन्तु पिता उसे स्वीकार नहीं करते। ऐसी स्थिति में विचलित हो जाती है, कहती है, "मैं कभी-कभी विचारती हूँ कि छायाचित्र-सदृश्य जलस्रोत में नियति के पवन की थपेड़े लग रही हैं, वह तरंग-संकुल होकर घूम रहा है। और मैं, एक तिनके के सदृश्य उसी में इधर-उधर बह रही हूँ। कभी भंवरों में चक्कर खाती हूँ, कभी लहरों में नीचे-ऊपर होती हूँ। कहीं कूल-किनारा नहीं। कहते - कहते तारा की आँखें छलछला उठीं।[3]

---

1. जयशंकर प्रसाद, कंकाल, पृ० 10.
2. वही, पृ० 26.
3. वही, पृ० 40.

एक दिन मंगलदेव तारा को छोड़कर कहीं चला जाता है और तारा आत्म-हत्या करने के लिए गंगा में जा चुकी थी कि सहसा एक संयासी उसे रोक लेता है। तारा कहती है, पाप कहाँ। पुण्य किसका नाम ? मैं नहीं जानती। सुख खोजती रही, दुख मिला; दुख ही यदि पाप है, तो मैं उससे छूटकर सुख की मौत मर रही हूँ, पुण्य कर रही हूँ, करने दो।'[1] यहाँ भी नियति के आधीन उसकी जीवन रक्षा के लिए संयासी का आकर आत्महत्या से बचाना और उसके अंदर पल रहे बालक का जन्म होने तक जीवन की सार्थकता को फिर से जागृत करना मात्र संयोग ही कहा जा सकता है।

इधर किशोरी अपने पुत्र विजय की तलाश की कामना के लिए निरंजन से कहती है, तो रोकता कौन है, जाओ। परन्तु जिसके लिए मैंने सब कुछ खो दिया है, उसे तुम्हीं ने मुझसे छीन लिया - उसे देकर जाओ। जाओ तपस्या करो, तुम फिर महात्मा बन जाओगे। सुना है पुरुषों के तप करने से घोर से घोर कुकर्मों को भी भगवान क्षमा करके उन्हें दर्शन देते हैं, पर मैं हूँ स्त्री जाति। मेरा यह भाग्य नहीं, मैंने पाप करके जो पाप बटोरा है, उसे ही मेरी गोद में फेंकते जाओ।[2] कैसी विडम्बना है, किशोरी को महात्मा निरंजनदेव अपना नहीं पा रहा है जिसके फल-स्वरूप किशोरी विजय को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार नहीं कर पाती। इसी द्विविधा में पुनः अपने पति के पास पहुँच जाती है जिसका चित्रण प्रसाद जी ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है : - 'प्रभात में जब श्रीचन्द्र की आँखें खुली, तब उसने देखा, प्रौढ़ा किशोरी के मुख पर पचीस बरस पहले का वही लावण्य अपराधी के सदृश छिपना चाहता है। अतीत की स्मृति ने श्रीचन्द्र के हृदय पर वृश्चिक-दंशन का काम किया। नींद न खुलने का बहाना करके उन्होंने एक बार फिर आँखें बंद कर लीं। किशोरी मर्माहत हुई : पर आज नियति ने उसे सब ओर से निरवलम्ब करके श्रीचन्द्र के सामने झुकने के लिए बाध्य किया था। वह संकोच और मनोवेदना से गड़ी जा रही थी।[3]

---

1. कंकाल, पृ0 53.
2. वही, पृ0 157.
3. वही, पृ0 158.

घटना क्रम में विजय के जीवन में कितने दुर्गम मोड़ आये - कितनों से जुड़ा और बिछुड़ा । अंत में वही विजय जिसे नियति कहाँ से कहाँ पहुँचा देती है । वह भिखमंगा की हालत में पड़ा रहता है - दशाश्वमेध घाट पर ।

किशोरी मरण-सेज पर पड़ी है और यमुना उसे विजय से मिलवाने लाती है और बता भी देती है कि वही उसकी माँ है ।

- विजय किशोरी के पैरों के पास बैठ गया । यमुना ने उसके कानों में कहा भैया आये हैं ।

किशोरी ने आँखे खोल दीं । विजय ने पैरों पर सिर रख दिया । किशोरी के अंग अब हिलते न थे । वह कुछ बोलना चाहती थी, पर आँखों से आँसू बहने लगे । विजय ने अपने मलिन हाथों से उन्हें पोंछा । एक बार किशोरी ने उसे देखा, आँखों ने अधिक बल देकर देखा; पर वे आँखें खुली रह गयीं ———— ।[1]

भारत-संघ का प्रदर्शन चल रहा है - आगे स्त्रियों का दल था और पीछे स्वयं सेवकों की श्रेणी थी ।

एक कंगले की अनाहार से मृत्यु हो गयी और लोगों ने देखा - 'विजय की शव था' । यमुना श्रीचन्द्र से दस रुपये उधार-लाकर उसके अंतिम संस्कार का प्रबन्ध करती है ।

सन् 1929 में वृन्दावन लाल वर्मा ने भी अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'गढ़कुण्डार' में चौदहवीं शताब्दी के बुंदेलखण्ड में राजनीतिक उथल-पुथल का सविस्तार चित्रण किया है । तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक परिवेश में चित्रित यह उपन्यास जीवन में कुछ स्थायी मूल्यों का उद्घाटन करते हैं । इस उपन्यास की कथा बुंदेलखण्ड की पहाड़ियों में जीवनयापन करने वाले बुन्देलों और उनके मुख्य शासक खंगारों से संबंधित हैं । सोहन

---

1. कंकाल, पृ० 273.

पाल बुंदेला अपने ही भाई द्वारा प्रवंचित होकर खंगार राजा हुरमतसिंह से सहायता माँगता है । खंगार राजकुमार नागदत्त सोहन पाल की पुत्री हेमवती पर आसक्त है और उससे विवाह करना चाहता है परन्तु जातीय श्रेष्ठता के गर्व में डूबी हुई हेमवती इस संबंध को अस्वीकार कर देती है । अतः हुरमत सिंह ने एक प्रस्ताव रखा कि सोहनपाल की सहायता वे इस शर्त पर करेंगे कि राजकुमार नाग की शादी हेमवती से सम्पन्न करा दी जाय ।

सोहन पाल इस प्रस्ताव को सुनकर चिढ़ जाता है परन्तु सहायता के बिना वह अपना स्वामित्व एवं अधिकार पुनः पाने में सफल भी न हो पाता, ऐसा सोचकर एक छल की युक्ति का सहारा लेकर वह विवाह होने की स्वीकृति दे देता है । खंगारों को स्वागत में खूब शराब पिलायी जाती है तथा उसके बाद प्रमुख खंगारों की हत्या कर दी जाती है । इस प्रकार कुण्डार पर बुंदेलों का आधिपत्य हो जाता है । इस उपन्यास में कई प्रेम-प्रसंग का वर्णन आता है - जैसे अग्निदत्त, खंगार, कुमारी मानवती से प्रेम करता है । अग्निदत्त खंगार नरेश के मंत्री का पुत्र है परन्तु यह विवाह संबंध भी सम्पन्न नहीं हो पाता । मानवती का विवाह कुण्डार के मंत्री पुत्र राजधर से होना निश्चित होता है ।

- विष्णुदत्त का चेहरा कुछ उदास हो गया । धीरे से अग्निदत्त से बोला, 'मैंने एक तंत्र-शास्त्री से एक योग्य वर की प्राप्ति के विषय में प्रश्न किया था । उन्होंने कहा है कि लड़की को तीन महीने का एक कठोर व्रत रखना पड़ेगा । फूल कहे - से कहा हो, व्रत की समाप्ति पर योग्य वर अवश्य प्रकट होगा । ऐसा लाल कनेर तो कुण्डार में मिल नहीं सकता । शक्ति भैरव के पास जो कनेर लगे हैं, वे भी छोटे-छोटे हैं ।[1]

ब्राह्मण विष्णुदत्त की कन्या तारा और दिवाकर का प्रणय व्यापार उपन्यास की दूसरी प्रासंगिक कथा है । दिवाकर सोहन पाल बुंदेला का मंत्री पुत्र है ।

1. वृन्दावन लाल वर्मा, गढ़ कुण्डार, पृ0 144.

इस ऐतिहासिक उपन्यास में राज्य-स्थापन के साथ-साथ मानव-जीवन-विशेष-तया उसके प्रेम तत्व की व्याख्या करना भी उद्देश्य रहा है ।[1] हुरमतसिंह, नाग, सोहनपाल धीर, विष्णुदत्त, पुण्य पाल, सहजेन्द्र आदि नाम जो इस उपन्यास में आते हैं वे नाम ऐतिहासिक हैं । अपने भाई वीरपाल के द्वारा प्रवंचित होकर सोहन पाल का कुण्डार आना, हुरमतसिंह का विवाह-प्रस्ताव, सोहनपाल की कुमारी के हरण का प्रयत्न, विवाह की निश्चित तिथि पर बुन्देलों द्वारा मदमत्त खंगारों का नाश आदि घटनायें भी ऐतिहासिक तत्व हैं । कहा जाता है कि खंगारों का नाश आदि घटनायें सं0 1345 में हुआ था । इस तरह मूल घटना एक ऐतिहासिक तत्व है, यद्यपि खंगारों के विनाश के कारणों में कुछ मतभेद है ।[2]

ऐतिहासिक तथ्यों के साथ-साथ कई प्रेम प्रसंगों का सजीव चित्रण इस उपन्यास में मिलता है । अग्निदत्त और मानवती एक दूसरे को बहुत प्रेम करते थे परन्तु मानवती की नियति अग्निदत्त को पाने में न थी और वह राजधर की होकर रह जाती है। गढ़कुंडार का प्रधान विषय है युद्ध और प्रेम । अधिकतर युद्ध इतिहास मूलक है तथा अधिकांश प्रेम कल्पनाजन्य । इसमें तीन कथाओं का समावेश वर्मा जी ने बड़ी कुशलता से किया है । नाग का हेमवती के प्रति प्रेम, अग्निदत्त-मानवती का प्रेम तथा तारा और दिवाकर का प्रेम । इनमें मुख्य है नाग का प्रेम, क्योंकि उसी को लेकर खंगारों एवं बुंदेलों में विवाद चला और परिणाम स्वरूप खंगारों का विनाश हुआ ।

मुं0 प्रेमचन्द का 'निर्मला' उपन्यास सामाजिक परम्पराओं में कसमसाते एक ऐसी नारी जीवन की व्यथा गाथा है, जिसकी नियति तिल-तिल कर जलते हुए अपने को समाप्त कर देने में है । इस उपन्यास की मुख्य पात्र निर्मला है । इसमें निर्मला की वेदना एवं करुणा बड़े ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त की गई है । निर्मला की

---

1. डा0 रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ0 189.

2. शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास, पृ0 134-138.

शादी भुवन मोहन सिन्हा से पक्की हो जाती है परन्तु पिता की आकस्मिक मृत्यु एवं पर्याप्त दहेज के अभाव के कारण यह शादी टूट जाती है । अंततः निर्मला की शादी तीन बच्चों के अधेड़ पिता तोताराम से हो जाती है । यहीं से निर्मला के जीवन का संघर्ष शुरू हो जाता है । वह उस विधुर के साथ पत्नी रूप में रहने को विवश है । निर्मला का पति उसके और अपने बड़े पुत्र मंसाराम के संबंधों को हमेशा शंका की दृष्टि से देखता है और वह मंसा को उससे दूर रखने के लिये हर प्रकार से प्रयत्न करता है ।

निर्मला अपने भाग्य की दुहाई देते हुए अपने को हर प्रकार से अपराधिनी समझती है । उसको लगता है कि घर में जो कुछ भी अच्छा बुरा हो रहा है सभी की जड़ वह ही है । उसके आते ही घर में सारा बवंडर शुरू हो गया है । मंसाराम घर छोड़कर बोर्डिंग हाउस चला जाता है । उसकी बुआ रुक्मिणी निर्मला को खरी खोटी सुनाती हैं - तुम्हीं[1] ने उसे कुछ कहा होगा या उसकी कुछ शिकायत की होगी । क्यों अपने लिये काटे बो रही हो ? रानी, घर को मिट्टी में मिलाकर चैन से न बैठने पाओगी ।

निर्मला ने रोकर कहा - मैंने कुछ कहा हो तो मेरी जबान कट जाए । हाँ सौतेली माँ होने के कारण बदनाम तो हूँ ही । आपके हाथ जोड़ती हूँ जरा जाकर उन्हें बुला लाइये ।

रुक्मिणी ने तीव्र स्वर में कहा - तुम क्यों नहीं बुला लाती ? क्या छोटी हो जाओगी ? अपना होता तो क्या इसी तरह बैठी रहती ? निर्मला की दशा उस पंखहीन पक्षी की तरह हो रही थी, जो सर्प को अपनी ओर आते देखकर उड़ना चाहता है, पर उड़ नहीं सकता, उछलता है और गिर पड़ता है, पंख फड़फड़ाकर रह जाता है । उसका हृदय अंदर ही अंदर तड़प रहा था; पर बाहर न जा सकती थी।

मंसाराम को जब अपनी माता के दुख का आभास होता है तो वह यह सोचने लगता है - उनका उद्धार कैसे होगा । उस निरपराधिनी का मुख कैसे उज्ज्वल होगा ? उन्हें केवल मेरे साथ स्नेह का व्यवहार करने के लिए दंड दिया जा रहा है । उनकी सज्जनता का उन्हें यह उपहार मिल रहा है । मैं उन्हें इस प्रकार निर्दय आघात सहते देखकर बैठा रहूँगा । अपनी मान-रक्षा के लिये न सही, उनकी आत्म-रक्षा के लिए इन प्राणों का बलिदान करना पड़ेगा । इसके सिवाय उद्धार का कोई उपाय नहीं । -------- एक सती पर सन्देह किया जा रहा है, और मेरे कारण । मुझे अपने प्राणों से उनकी रक्षा करनी होगी, यही मेरा कर्तव्य है, इसी में सच्ची वीरता है । माता, मैं अपने रक्त से इस कालिमा को धो दूँगा । इसी में मेरा और तुम्हारा दोनों का कल्याण है ।[1]

नियति चक्र में फंसा मंसाराम चारपाई पकड़ लेता है । उसे खून की जरूरत पड़ती है । निर्मला अपना खून देने के लिये तैयार हो जाती है । मुंशी जी के कहने पर "तुम अपना खून दोगी ? नहीं, तुम्हारे खून की जरूरत नहीं । इसमें प्राणों का भय है । निर्मला कहती है - मेरे प्राण और किस दिन काम आयेंगे ?

मुंशी जी ने सजल नेत्र होकर कहा - नहीं निर्मला, उसका मूल्य अब मेरी निगाहों में बहुत बढ़ गया है । आज तक वह मेरे भोग की वस्तु थी, आज से वह मेरी भक्ति की वस्तु है । मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है, क्षमा करो । पुनश्च, जो कुछ होना था हो गया, किसी की कुछ न चली । डाक्टर साहब निर्मला की देह से रक्त निकालने की चेष्टा कर ही रहे थे कि मंसाराम अपने उज्ज्वल चरित्र की अंतिम झलक दिखाकर इस भ्रम-लोक से विदा हो गया, कदाचित इतनी देर तक उसके प्राण निर्मला की ही राह देख रहे थे । उसे निष्कलंक सिद्ध किये बिना वे देह को कैसे त्याग देते । अब उनका उद्देश्य पूरा हो गया । मुंशी जी को निर्मला के निर्दोष होने का विश्वास हो गया । पर कब ? जब हाथ से तीर निकल चुका था- जब मुसाफिर रकाब में पांव डाल चुका था ।[2]

---

1. निर्मला, पृ0 59.
2. वही, पृ0 74.

धनाभाव के कारण निर्मला की दुहाजू से शादी और उसके परिणाम को सोचकर कि कहीं उसकी छोटी बहन कृष्णा की शादी, मेरी ही नियति की पुनरावृत्ति तो नहीं होने जा रही है ? निर्मला कांप जाती है । अपनी सहेली सुधा को अपनी करुण-कहानी बतलाती है "आठवां महीना बीत रहा है । यह चिन्ता तो मुझे और भी मारे डालती है । मैंने तो इसके लिये कभी ईश्वर से प्रार्थना नहीं की थी । यह बला मेरे सिर न जाने क्यों मढ़ दी ? मैं बड़ी अभागिन हूँ बहिन । विवाह के एक महीने पहले पिताजी का देहान्त हो गया । उनके मरते ही मेरे शनीचर सवार हुए । जहाँ पहले विवाह की बातचीत पक्की हुई थी, उन लोगों ने आँखे फेर लीं । बेचारी अम्मा को हारकर मेरा विवाह यहाँ करना पड़ा । अब छोटी बहन का विवाह होने वाला है । देखें उसकी नाव किस घाट जाती है ।[1]

इस विषय पर सुधा की उत्सुकता जाहिर करने पर निर्मला उसे लड़के का पता-ठिकाना अनुमान से बताती है । जिसको सुनकर सुधा स्तंभित सी हो जाती है, निर्मला जैसी देवी को ठुकराने वाला कोई और नहीं उसका पति ही है । सुधा के यह के यह कहने पर कि - "मैं तो उस लड़के को पाती तो खूब आड़े हाथों लेती।"

निर्मला - मेरे भाग्य में जो लिखा था वह हो चुका । बेचारी कृष्णा पर न जाने क्या बीतेगी ।[2]

निर्मला बहन की शादी का समाचार पाकर अपने मायके जाती है । वहाँ पहुँचने पर कृष्णा को अपने घर की सभी अच्छी-बुरी बातें बतलाती है । मंसाराम की मृत्यु के बारे में भी विस्तारपूर्वक बताती है, साथ ही अपने पति के शंकालु स्वभाव का भी जिक्र करते हुये अपनी बहन कृष्णा से प्रश्न करती है "तू ही बता - एक पचास वर्ष के मर्द से तेरा विवाह हो जाय, तो तू क्या करेगी ——— ।

---

1. निर्मला, पृ0 76.

2. वही, पृ0 77.

निर्मला - तो बस यही समझ लो उस लड़के ने कभी मेरी ओर आँख उठाकर नहीं देखा, लेकिन बुड्ढे तो शक्की होते ही हैं - तुम्हारे जीजा उस लड़के के दुश्मन हो गये और आखिर उसकी जान लेकर ही छोड़ी। जिस दिन से उसे मालूम हो गया कि पिताजी के मन में मेरी ओर से संदेह है, उसी दिन से उसे ज्वर चढ़ा, जो जान लेकर ही उतरा। हाय! उस अन्तिम समय का दृश्य आँखों से नहीं उतरता। मैं अस्पताल गयी थी, वह ज्वर में बेहोश पड़ा था - उठने की शक्ति न थी, लेकिन ज्यों ही मेरी आवाज सुनी, चौंककर उठ बैठा, और माता-माता कहकर मेरे पैरों पर गिर पड़ा।रोकर। कृष्णा उस समय ऐसा जी चाहता था अपने प्राण निकालकर उसे दे दूँ।"[1]

भाग्य एक बार फिर निर्मला के साथ अजीब परिहास करता है। कृष्णा की शादी उसी डाक्टर सिन्हा के छोटे भाई से सम्पन्न होती है। निर्मला की डाक्टर सिन्हा से उस परिस्थिति में मुलाकात होती है परन्तु उसमें मिले-शिकवे की कोई बात नहीं आती। शादी के थोड़े ही दिनों के उपरांत सुधा के पुत्र की मृत्यु हल्की बीमारी के कारण हो जाती है। डा० सिन्हा इस दुखद घटना के फलस्वरूप द्रवित हो जाते हैं, अपनी भावना को निम्न शब्दों में व्यक्त करते हुए कहते हैं - "अगर ईश्वर को इतनी जल्दी यह पदार्थ छीन लेना था, तो दिया ही क्यों था? उन्होंने तो कभी सन्तान के लिये ईश्वर से प्रार्थना न की थी। वह आजन्म निःसंतान रह सकते थे, पर संतान पाकर उससे वंचित हो जाना उन्हें असह्य जान पड़ता था। क्या सचमुच मनुष्य ईश्वर का खिलौना है? यही मानव जीवन का महत्व है।[2]

इसी संदर्भ में सुधा अपने पति से आपसकी बातचीत के दौरान कहती है - "जब हमारे ऊपर कोई बड़ी विपत्ति आ पड़ती है तो उससे हमें केवल दुःख ही नहीं होता - हमें दूसरों के ताने भी सहने पड़ते हैं ———। मंसाराम क्या मरा मानों

---

1. निर्मला, पृ0 85.

2. वही, पृ0 96.

समाज को उन पर आवाजें कसने का बहाना मिल गया । भीतर की बात कौन जाने, प्रत्यक्ष बात यह थी कि यह सब सौतेली माँ की करतूत है । चारों तरफ यही चर्चा थी, ईश्वर न करे लड़कों को सौतेली माँ से पाला पड़े । जिसे अपना बना बनाया घर उजाड़ना हो - अपने प्यारे बच्चों के रहते हुए दूसरा ब्याह करे -------- ऐसी देवी ने जन्म ही नहीं लिया जिसने सौत के बच्चों को अपना बच्चा समझा हो ।[1]

निर्मला कितना ही चाहती है कि अपने आचरण व व्यवहार से सबको प्रसन्न रखे परन्तु उसके तकदीर में अपयश और कलंक ही बदा है । इधर तोताराम का दूसरा लड़का जियाराम चोरी के अभियोग में गिरफ्तार कर लिया जाता है । उसका भी दोष प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में निर्मला को ही जाता है । निर्मला दुःखी होकर कहती है कि - "मैं तो फूंक-फूंक कर पाँव रखती हूँ फिर भी अपयश लग ही जाता है । अभी घर में पाँव रखते देर नहीं हुई और यह हाल हो गया । ईश्वर ही कुशल करे ----- निर्मला को यह नई चिन्ता हो गई - जीवन कैसे पार लगेगा ? अपना ही पेट होता तो विशेष चिन्ता न थी । अब तो एक नई विपत्ति गले पड़ गई थी । वह सोच रही थी - मेरी बच्ची के भाग्य में क्या लिखा है राम ।"[2]

जियाराम आत्महत्या कर लेता है, जिसके फलस्वरूप तोताराम इस वृद्धावस्था में टूट जाते हैं । इसी बीच उनके छोटे पुत्र सियाराम से निर्मला की बातचीत के दौरान कुछ ऐसी बातें हो जाती हैं कि वह क्रोध में उससे कहती है "मैं तो तुम्हारी दुश्मन ठहरी । अपना होता तब तो उसे दुख होता । मैं तो ईश्वर से मनाया करती हूँ कि तुम पढ़ लिख न सको । मुझमें सारी बुराइयां ही बुराइयां हैं, तुम्हारा कोई कसूर नहीं । विमाता का नाम ही बुरा होता है । अपनी माँ विष भी खिलाये तो अमृत है, मैं अमृत भी पिलाऊँ तो विष हो जायेगा । तुम लोगों के कारण

---

1. निर्मला, पृ0 98.

2. वही, पृ0 106.

में मिट्टी में मिल गयी, रोते-रोते उम्र कटी जाती है, मालूम ही न हुआ कि भगवान ने किसलिये जन्म दिया था ।"[1]

निर्मला सदैव हालात से समझौता करने की कोशिश करती है पर दुर्भाग्यवश जीवन के प्रत्येक मोड़ पर उसे असफलता ही मिलती है । तोताराम यह सोचकर दुःखी हो रहे थे कि तीन लड़कों में केवल एक बच रहा था, वह भी हाथ से निकल गया तो फिर जीवन में अंधकार के सिवा और क्या है । कोई नाम लेने वाला न रहेगा । निर्मला से कहते हैं - "यह तुम्हारी ही करनी है । तुम्हारे ही कारण आज मेरी यह दशा हो रही है । -------- तुमने बना बनाया घर बिगाड़ दिया, केवल एक ठंठ रह गया है -------- । मैं अपना सर्वनाश करने के लिये तुम्हें अपने घर नहीं लाया था । सुखी जीवन को और भी सुखी बनाना चाहता था । यह उसी का प्रायश्चित है ।[2]

निर्मला की वेदना ऐसी नारी की कहानी है जिसके दुःखों का कोई अंत नहीं है । मुंशी तोताराम घर छोड़कर लड़के की तलाश में चले जाते हैं । निर्मला को लेकर डा० साहब के साथ एक ऐसी अप्रत्याशित घटना घटती है जिसके परिणामस्वरूप डा० सिन्हा को आत्मग्लानि होती है । अचानक खबर मिलती है कि उनकी हालत खराब हो गयी[3] - कोई कहता है जहर खा लिया था, कोई कहता है दिल का चलना बंद हो गया था भगवान जाने क्या हो गया था ।" निर्मला ने ठंडी सांस ली और रुंधे कंठ से बोली - हाय भगवान सुधा की क्या गति होगी ।"

निर्मला अपने को निष्ठुर एवं डा० साहब के मृत्यु के लिये दोषी ठहराती है और कहती है "जिसे रोने के लिये ही जीना है उसका मर जाना अच्छा है । पूर्व

---

1. निर्मला, पृ० 117.
2. वही, पृ० 127.
3. वही, पृ० 137-138.

जन्म में न जाने कौन सा पाप किये थे जिसका यह प्रायश्चित करना पड़ा ।"

निर्मला की हालत बिगड़ती जाती है और नियति से जीवन पर्यन्त जूझती उसके प्राण पक्षी सदा के लिये उड़ जाते हैं । मुंशी तोताराम उसी समय लौटकर आते हैं, अपने जीवन का अंतिम दुर्भाग्य देखने के लिये ।

चन्द्रकान्ता से गोदान तक के दौर में मुं0 प्रेमचन्द का एक महत्वपूर्ण उपन्यास 'गबन' 1930 में प्रकाशित हुआ । परिस्थितियों के बहाव में मध्यवर्गीय आकांक्षाओं का संघर्ष जीवन को किस प्रकार प्रभावित करता है, 'गबन' में अच्छी तरह चरितार्थ हुआ है । प्रेमचन्द अपनी चिन्तनधारा में शिक्षित युवक को, व्यक्ति, समाज और समग्र देश के संदर्भ में रखकर उसका मूल्यांकन करते हैं ।

रमानाथ एक साधारण प्रतिभा का मध्यवर्गीय परिवार का नवयुवक है, जो फैशन, बाह्य आडंबर और दिखावा में विश्वास रखता है ।[1] वह अपने व्यक्तित्व के खोखलेपन और आर्थिक कमजोरी को बाह्य आडंबर से ढकने का प्रयास करता है । विद्यार्थी जीवन में पढ़ने-लिखने में साधारण रहा जिसके कारण मिथ्याभिमान तथा डींग हांकने की प्रवृत्ति से ग्रसित था । रमानाथ की शादी जालपा नामक युवती से बड़ी धूमधाम से होती है । विवाह के पश्चात् वह स्त्री पर इतना अनुरक्त हो गया कि उसे प्रसन्न रखना ही उसके जीवन का लक्ष्य बन गया । जालपा से वह कभी अपनी वास्तविक आर्थिक स्थिति का जिक्र नहीं करता है । अपने पिता के ऐश्वर्य का डींग मारता रहता है । जब उसे म्युनिसिपैलिटी में पचास, साठ रुपये मासिक की नौकरी मिली तो उसका भी जालपा के सामने इस प्रकार बखान किया मानो कमिश्नर से कम पोस्ट नहीं । उसके मन में कई बार विचार आये कि जालपा से सब कुछ सच-सच बता दे, परन्तु अपनी झूठी शान बट्टा लगाना उसे स्वीकार नहीं था । जालपा में बचपन से ही गहनों की आसक्ति का संस्कार पैदा हो गया था ।[2] शादी में चन्द्रहार पाने

---

1. कमल किशोर गोयनका, प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प-विधान, पृ0 374.
2. प्रेमचन्द, गबन, पृ0 10.

की उसे बड़ी आशा थी परन्तु उसे निराश होना पड़ता है। इसी प्रकार आकांक्षा के फलस्वरूप वह रमानाथ से बार-बार चन्द्रहार लाने का आग्रह करती है। जालपा की इच्छा को पूरा करने में तथा उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा में रमानाथ घूस लेता है, कर्ज लेता है और कर्ज चुकाने के लिए एक दिन दफ्तर के कुछ रुपयों का गबन भी कर लेता है।[1]

गबन का समाचार प्रकाश में आने पर पुलिस और बदनामी के भय से छिपकर कलकत्ते में एक खटिक परिवार में जाकर दिन बिताता है। फिर भी पुलिस के चंगुल में फंस जाता है और 'मुखबिर' बन जाता है। इसी बीच में जालपा आ जाती है और रमानाथ को उबारकर सामान्य जीवन की राह पर ला देती है।

"जालपा को गहने से जितना प्रेम था, उतना कदाचित संसार की और किसी वस्तु से न था, और उसमें आश्चर्य की कौन सी बात थी? जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी, उस वक्त उसके लिये सोने के चूड़े बनवाये गये थे। दादी जब उसे गोद में खिलाने लगतीं, गहनों की ही चर्चा करती।"[2]

रमानाथ ने रिश्वत में हजारों रुपये मारे थे, पर क्षण भर के लिये उसे ग्लानि न आयी थी। रिश्वत बुद्धि से कौशल,से, पुरुषार्थ से मिलती है। दान पौरुषहीन, कर्महीन या पाखण्डियों का आधार है। वह सोच रहा था, मैं इतना दीन हूँ कि भोजन और वस्त्र के लिए मुझे दान लेना पड़ता है। वह देवीदीन के घर दो महीने से पड़ा हुआ था, पर देवीदीन उसे भिक्षुक नहीं मेहमान समझता था। उसके मन में ऐसा उद्वेग उठा कि इसी दम थाने में जाकर अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाये। यही न होगा, दो - तीन साल की सजा हो जायेगी। फिर तो यों प्राण सूली पर न टंगे रहेंगे। कहीं डूब ही क्यों न मरूँ। इस तरह जीने से फायदा ही क्या। न घर का हूँ न घाट का। दूसरों का भार तो क्या उठाऊँगा, अपने ही लिए दूसरों

---

1. गबन, पृ0 91.
2. गबन, पृ0 26.

को मुंह ताकता हूँ । इस जीवन से किसका उपकार हो रहा है ? धिक्कार है मेरे जीने को ।"[1]

– उसे जालपा के लिए एक जूते की जोड़ी और सुन्दर कलाई की घड़ी की फिक्र पैदा हो गई । उसके पास फूटी कौड़ी भी न थी, उसका खर्च रोज बढ़ता जाता था । अभी तक गहने वालों का एक पैसा भी देने की नौबत न आयी थी । एक बार-गंगू महराज के इशारे से तकाजा भी किया था, लेकिन यह भी नहीं हो सकता कि जालपा फटे हालों चाय-पार्टी में जाय । नहीं, जालपा पर वह इतना अन्याय नहीं कर सकता । इस अवसर पर जालपा का रूप-शोभा का सिक्का बैठ जायेगा । सभी तो आज चमाचम साड़ियाँ पहने हुए थीं । जड़ाऊ कंगन और मोतियों के हारों की भी तो कमी न थी ---------- आखिर यही तो खाने-पहनने और जीवन का आनन्द उठाने के दिन हैं । जब जवानी में ही सुख न उठाया तो बुढ़ापे में क्या कर लेंगे । बुढ़ापे में मान लिया धन हुआ ही तो क्या ? यौवन बीत जाने पर विवाह किस काम का ? साड़ी और घड़ी लाने की धुन उसे सवार हो गई । रात भर तो उसने सब्र किया । दूसरे दिन दोनों चीजें लाकर ही दम लिया ।[2]

जालपा का व्यक्तित्व बड़ा ही सबल है, स्थिति को ठीक से जानने के बाद चन्द्रहार बेचकर रमानाथ के आफिस के रुपये चुकाना[3], कंगन बेचकर सर्राफ के रुपयों को लौटाना और कलकत्ते जाकर रमानाथ को पुलिस से छुड़ाना ।

---

1. प्रेमचन्द, गबन, पृ० 143.
2. वही, पृ० 70.

3. कमलकिशोर गोयनका, प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प विधान, पृ० 376.

गबन मुख्य रूप से रमानाथ की कथा है जो प्रयाग में जालपा, दयानाथ आदि पात्रों एवं कलकत्ते में देवीदीन जग्गो, जोहरा और बाद में जालपा के संसर्ग से विकसित होती है। जालपा की कथा एक आभूषणप्रेमी एवं प्रदर्शन प्रिय स्त्री का स्वार्थ-त्याग कर कर्तव्यनिष्ठ स्त्री बनने की कथा है।[1] गबन में राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं का स्थान-स्थान पर उद्घाटन हुआ है। उच्च वर्ग के लोगों और नेताओं में मनोबल की कितनी हीनता है, कितनी असंगतियां हैं, कितना दिखावा है, जीवन के वास्तविक मूल्यों की पकड़ कितनी कम है। यह सत्य देवीदीन खटिक की बातों से स्पष्ट होता है। रतन के पति के मरने के बाद तथाकथित बड़े लोगों का प्रतिनिधि उसका भतीजा कितना विश्वाक्त आचार दिखाता है यह उस वर्ग के नीचे बहती क्रूरता और अमानवता का परिचायक है।[2]

गबन के चरित्रों में बड़ी स्वाभाविकता है और वस्तुतः ये यथार्थवादी पात्र ही हैं पर उनको अन्त में आदर्शवादी बना दिया। इस उपन्यास में नियति का उद्घाटन जालपा के जीवन में परिस्थितियों के घेरे में सत्य का वास्तविक रूप देखने के बाद कलकत्ते पहुँचकर रमाकान्त को सामान्य अवस्था में लाने में समर्थ होती है। रतन की शादी अपनी आयु से अधिक वृद्ध से होती है जो उसे भौतिक सुखों में केंद्रित कर लेती है परन्तु नियति का फैसला उसके विपक्ष में होता है जब उसके पति की आकस्मिक मृत्यु हो जाती है।

- रतन ने कोई जवाब न दिया। कुछ देर वह हतबुद्धि सी बैठी रही, फिर मोटर मंगवायी और सारे दिन वकीलों के पास दौड़ती फिरी। पण्डितजी के कितने ही वकील मित्र थे। सभी ने उसका वृतान्त सुनकर खेद प्रकट किया और वकील साहब के वसीयत न लिख जाने पर हैरत करते रहे।

---

1. प्रेमचन्द, गबन, पृ0 143.

2. वही, पृ0 70.

3. वही,

-------- अभागिनी रतन लौट आयी । उसने निश्चय किया, जो कुछ मेरा नहीं है, उसे लेने के लिए मैं झूठ का आश्रय न लूँगी । फिर किसी तरह नहीं । मगर ऐसा कानून बनाया किसने, क्या स्त्री इतनी नीच, इतनी तुच्छ, इतनी नगण्य है ? फिर क्यों ? दिन भर रतन चिन्ता में डूबी, मौन बैठी रही । इतनी दिनों वह अपने को इस घर की स्वामिनी समझती रही । कितनी बड़ी भूल थी । पति के जीवन में जो लोग उसका मुंह ताकते थे, वे आज उसके भाग्य के विधाता हो गये । यह घोर अपमान एवं जैसी मनिनी स्त्री के लिए असह्य था ।"[1]

- जिस घर को उसने इतने चाव से खरीदा था, जिसकी लालसा उसे बाल्य-काल ही में उत्पन्न हो गयी थी, उसे आज आधे दामों में बेचकर उसे जरा भी दुःख नहीं हुआ, बल्कि गर्वमय हर्ष का अनुभव हो रहा था । जिस वक्त रमा को मालूम होगा कि उसने रुपये दे दिये हैं, उन्हें कितना आनन्द होगा ।"[2]

इस प्रकार उपन्यास में मुं0 प्रेमचन्द एक नारी-पात्र जोहरा के भी नियति का चित्रण एक वेश्या के रूप में करते हैं जो परिस्थितियों के थपेड़ों में पुरुषों के लिए मनो-रंजन का माध्यम बनती ? रमानाथ को रिझाने के लिए जोहरा का प्रयोग दरोगा ने किया है, परन्तु सहृदय जोहरा रमानाथ के दुःख से द्रवित होकर उसे जालपा की सहायता से, कोर्ट से बरी करवाने के लिये प्रयास करती है ।

"जोहरा वेश्या थी, उसको अच्छे-बुरे सभी तरह के आदमियों से साबिका पड़ चुका था । उसकी आँखों में आदमियों की परख थी । उसको इस परदेशी युवक में और अन्य व्यक्तियों में एक बड़ा फर्क दिखायी देता था । पहले वह यहाँ भी पैसे की गुलाम बनकर आयी थी, लेकिन दो-चार दिन के बाद ही उसका मन रमा की ओर आकर्षित होने लगा । प्रौढ़ स्त्रियां अनुराग की अवहेलना नहीं कर सकतीं ।

---

1. गबन, पृ0 230.

2. वही, पृ0 127.

रमा में सब दोष हों, पर अनुराग था । इस जीवन में जोहरा को यह पहला आदमी मिला था जिसने उसके सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया, जिसने उससे कोई परदा न रक्खा । ऐसे अनुराग रत्न को वह खोना नहीं चाहती थी । उसकी बात सुनकर उसे जरा भी ईर्ष्या न हुयी; बल्कि उसके मन में एक स्वार्थमय सहानुभूति उत्पन्न हुई, इस युवक को, जो प्रेम के विषय में इतना सरल था, वह प्रसन्न करके हमेशा के लिये अपना गुलाम बना सकती थी । उसे जालपा से कोई शंका न थी ।[1]

जोहरा एक ब्रह्मसमाजी महिला के वेश-भूषा में काफी प्रयास के बाद जालपा से मिल पाती है । वापस आकर रमानाथ को बताती है, "जालपा उसी दिनेश के घर है, जिसको फांसी की सजा हो गयी है । उसके दो बच्चे हैं, औरत है और माँ है । दिन भर उन्हीं बच्चों को खेलाती है, बुढ़िया के लिए नदी से पानी लाती है । घर का सारा काम काज करती हैं, और उनके लिए बड़े बड़े आदमियों से चन्दा माँगकर लाती हैं । दिनेश के घर में न कोई जायदाद थी और न रुपये थे । लोग बड़ी तकलीफ में थे । कोई मददगार तक न था, जो जाकर उन्हें ढारस तो देता । जितने साथी-सोहबती थे, सब के सब मुंह छिपा बैठे । दो-तीन फाके तक हो चुके थे। जालपा ने जाकर उनको जिला लिया ।[2]

जोहरा जालपा के दुखों को आत्मसात कर लेती है, यहाँ तक कि जब जालपा दिनेश के घर बर्तन माँजती है तो जोहरा मांजे हुए बर्तनों को धोती जाती है । सामान्यरूप में जोहरा को जालपा से ईर्ष्या होनी चाहिए थी परन्तु जोहरा का दिल जालपा की करुणा, त्याग एवं सेवा-भाव से इतना प्रभावित हो जाता है कि वह जालपा को देवी की तरह पूज्य मानने लगती है ।[3] जोहरा मन ही मन जालपा से अपने जीवन से लज्जित हो जाती है और दोनों में बहनापा हो जाता है ।[4] जोहरा

---

1. गबन, पृ0 254.
2. वही, पृ0 259.
3. वही, पृ0 263.
4. वही, पृ0 278.

ने जो वर्णन किया उसी आधार पर रमानाथ जज से मिलकर सारी यथार्थ वस्तुस्थिति को बताने को प्रेरित होता है ।

कोर्ट में जोहरा का बयान बहुत ही प्रभावोत्पादक था । उसने देखा, जिस प्राणी को जंजीरों से जकड़ने के लिये वह भेजी गयी है, वह खुद दर्द से तड़प रहा है उसे मरहम की जरूरत है, जंजीरों की नहीं । वह सहारे का हाथ चाहता है, धक्के का झोंका नहीं । जालपा देवी के प्रति उसकी श्रद्धा, उसका अटल विश्वास देखकर मैं अपने को भूल गयी । मुझे अपनी नीचता, अपनी स्वार्थान्धता पर लज्जा आई । मेरा जीवन कितना अधम, कितना पतित है यह मुझ पर उस वक्त खुला और जब मैं जालपा से मिली, तो उसकी निष्काम सेवा, उसका उज्ज्वल तप देखकर मेरे मन के रहे-सहे संस्कार भी मिट गये । विलासयुक्त जीवन से मुझे घृणा हो गयी । मैंने निश्चय कर लिया, इसी अंचल में मैं भी आश्रय लूंगी ।"[1]

जालपा का बयान सुनकर दर्शकों की आंखों में आंसू आ गये, उसके अन्तिम शब्द ये थे, "मेरे पति निर्दोष हैं । ईश्वर की दृष्टि में ही नहीं, नीति की दृष्टि में भी वह निर्दोष है । उनके भाग्य में मेरी विलासासक्ति का प्रायश्चित करना लिखा था, वह उन्होंने किया । ------- अगर अपराधिनी हूँ तो मैं हूँ, जिसके कारण उन्हें इतने कष्ट झेलने पड़े । मैं मानती हूँ कि मैंने उन्हें अपना बयान बदलने के लिये मजबूर किया । अगर मुझे विश्वास होता कि वह डाकों में शरीक हुये, तो सबसे पहले मैं उनका तिरस्कार करती । मैं यह नहीं सह सकती थी कि वह निरपराधियों की लाश पर अपना भवन खड़ा करें ।[2] अंत में रमानाथ कोर्ट से बरी किया जाता है ।

जोहरा और रतन लगभग एक वर्ष साथ रहती हैं परन्तु रतन की मृत्यु के बाद जोहरा अकेली रह जाती है । एक प्रचण्ड तूफान में एक बच्चे को बचाने के लिए

---

1. गबन, पृ0 274.
2. वही, पृ0 274.

जोहरा पानी की वेगवती धारा में कूद जाती है और डूबकर भी उसे बचाने में असफल रह जाती है। किनारे पर खड़े रमानाथ और जालपा भी पानी में उतरते हैं परन्तु असहाय जोहरा के डूबने का भयानक दृश्य देखकर अत्यन्त दुखी हो जाते हैं।

इस उपन्यास में रतन, जोहरा एवं जालपा की एक दुखद कहानी चित्रित की गयी है। विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार नियति इनकी जीवन-नौकाओं का दिशा मार्ग निर्धारित करती है और कैसे संघर्ष करती है यही उपन्यास के माध्यम से मुं0 प्रेमचन्द ने दर्शाने का प्रयास किया है। जालपा सत्य और न्याय के कठिन मार्ग पर नियति स्वरूप प्राप्त यातनाओं को सहर्ष स्वीकार करती है परन्तु पति-परमेश्वर मानकर रमानाथ द्वारा अन्यायपूर्ण निर्णय को कभी स्वीकार नहीं करती।

<u>गोदान</u>

1936 में प्रकाशित हुआ था। मुं0 प्रेमचन्द के इस औपन्यासिक कृति को अपने समय के महाकाव्य की संज्ञा दी गई है। प्रेमचन्द आसानी से पराजय स्वीकार करने वाले लेखक नहीं थे, व्यक्ति रूप में जीवन-भर वे परिस्थितियों से संघर्ष करते रहे। उन्होंने कर्ज और उसकी तमाम क्रूर विडम्बनाओं से जर्जर होरी को भी जीवन पर्यन्त संघर्ष करते हुए ही दिखाया।[1] होरी का महत्व, उसके संघर्ष और उस संघर्ष की चेतना, वैयक्तिकता की निर्बाध चरमता अथवा नव-मूल्य स्थापक धारणाओं में नहीं बल्कि सहानुभूति जगाने की उस क्षमता में है जो सामान्य उन्नति की आकांक्षा और उसकी आपूर्ति में है। होरी को साधारणीकृत करने की अपेक्षा नहीं हुई, सामान्य होरी का विशेषीकरण ही साधारणीकरण का स्वरूप हो गया।[2]

---

1. डा0 परमानंद श्रीवास्तव, उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा, पृ0 1.

2. आलोचना, 13, उपन्यास विशेषांक, 1954, पृ0 147.

गोदान की मूल समस्या ग्रामीणों की आर्थिक एवं सामाजिक समस्या का यथार्थवादी चित्रण है। समाज का आर्थिक आधार इस प्रकार का निर्मित हो गया है, जिसमें वर्ग वैषम्य निरन्तर बढ़ता ही जाता है। निर्धन और धनवान मुख्य रूप से दो वर्ग बन गये हैं। होरी और जैसे किसान निर्धनता के अभिशाप से संत्रस्त होकर मजदूर बन जाते हैं और खन्ना जैसे पूँजीपति अपनी तिजोरियां भरते जाते हैं।[1] आर्थिक विषमताओं के कारण ही यह सामाजिक विषमता है। इस गहन सत्य को प्रेमचन्द पहचान गये थे कि सामाजिक संबंधों के निर्माण और नियंत्रण में धर्म का हाथ नहीं रहा।

-होरी और उसकी पत्नी धनिया अपने तीन बच्चों के साथ शादी के बीस वर्षों का जीवन खेती-बारी करके अपनी छोटी-सी गृहस्थी को किसी तरह चला रहे थे। तत्कालीन जमींदारी व्यवस्था में कितनी समस्यायें थीं उसका बयान क्या कोई कर पायेगा?

धनिया इतनी व्यवहार-कुशल न थी। उसका विचार था कि हमने जमींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलायें। परन्तु होरी इस बात को समझता है कि जमींदार की कृपा दृष्टि होने पर ही वह सम्मानसहित जी सकता है अन्यथा किसी न किसी प्रकार उसे उनका कोप भाजन बनना पड़ सकता है। यही एक किसान की अथवा उसी तरह होरी की नियति, तत्कालीन सामाजिक परिवेश में जीवन-यापन की थी। बंधुआ मजदूरी कहें या दासता, उस समाज में, किसानों की यही नियति थी। प्रेमचन्द निम्न शब्दों में इस आशय को व्यक्त करते हैं, "जो बात धनिया तू नहीं समझती, उसमें टांग क्यों अड़ाती है: मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख। यह इसी मिलने जुलने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है। नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गये। गांव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई,

---

1. डा० सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास, पृ० 211.

किस पर कुड़की नहीं आयी । जब दूसरे के पाँव-तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है ।"[1]

प्रेमचन्द के अनुसार किसान एक सीधी, बेजान, दुधारू गाय है । जमींदार इस गाय से केवल दूध निकालने का संबंध रखता है, भूसा व खली मिलने न मिलने की उसे कोई चिन्ता नहीं है । किसान अपनी सभी आवश्यकताओं - बीज, कपड़ा, बैल शादी, गमी आदि कर्ज से ही पूरा करता है और एक बार कर्ज लेकर वह जीवन-पर्यंत उऋण नहीं हो सकता । वह कर्ज लेकर महाजनों की यावज्जीवन मजदूरी करता है और मृत्यु के पश्चात पुत्रों को विरासत के रूप में कर्ज दे जाता है । जमींदार और महाजन खलिहान में ही अपना-अपना हिस्सा ले लेते हैं और किसान हाथ झाड़कर अपनी तकदीर को रोता हुआ घर आ जाता है ।[2]

इसी संदर्भ में होरी चिन्ता करता हुआ जब तंबाखू चिलम में भरकर पीने लगता है, इन वाक्यों में अपनी मजबूरी व्यक्त करता है - "इस फसल में सब कुछ खलिहान में तौल देने पर भी अभी उस पर कोई तीन सौ कर्ज था, जिस पर कोई सौ रुपये सूद के बढ़ते जाते थे । मँगरू साह से आज पाँच साल हुए बैल के लिये साठ रुपये लिये थे, उसमें साठ दे चुका था, पर वह साठ रुपये ज्यों के त्यों बने हुए थे ।

- जीवन किसी तरह गरीबी में कट रहा था परन्तु होरी के परिवार में दूध घी देखने को मयस्सर न था । हर एक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गाय की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी ।

'होरी कदम बढ़ाये चला जाता था । पगडण्डी के दोनों और ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देखकर उसने मन में कहा - भगवान कहीं गौ से बरखा कर दें और डाँड़ी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा । देशी गायें तो न दूध दे

---

1. प्रेमचन्द, गोदान, पृ0 1.
2. डा0 कमल किशोर गोयनका, प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प विधान, पृ0 447-8.

न उनके बछवे किसी काम के हों । बहुत हुआ तो तेली के कोल्हू में चलें । नहीं, वह पछाँईं गाय लेगा । उसकी खूब सेवा करेगा । कुछ नहीं तो चार-पाँच सेर दूध होगा गोबर दूध के लिए तरस-तरस कर रह जाता है । इस उमिर में न खाया-पिया, तो फिर कब खायेगा । साल-भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक हो जाय । बछवे भी अच्छे बैल निकलेंगे । दो सौ से कम की गोईं न होगी । फिर गऊ से ही तो द्वार की सोभा है । सबेरे-सबेरे गऊ के दर्शन हो जायँ तो क्या कहना । न जाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह शुभ दिन आयेगा ।[1]

दातादीन पण्डित से तीस रुपये लेकर आलू बोये थे । आलू तो चोर खोद ले गए और उस तीस के इन तीन बरसों में सौ हो गये थे । दुलारी विधवा सहुआइन थी, जो गाँव में नोन तेल तमाखू की दुकान रखे हुए थी । बटवारे के समय उससे चालीस रुपये लेकर भाइयों को देना पड़ा था । उसके भी लगभग सौ रुपये हो गये थे, क्योंकि आने रुपये का ब्याज था । लगान के भी अभी पच्चीस रुपये बाकी पड़े हुए थे और दशहरे के दिन शगुन के रुपयों का भी कोई प्रबन्ध करना था । बाँसों के रुपये बड़े अच्छे समय पर मिल गये । शगुन की समस्या हल हो जायगी, लेकिन कौन जाने । यहाँ तो एक धेला भी हाथ में आ जाय, तो गाँव में शोर मच जाता है, और लेनदार चारों तरफ से नोचने लगते हैं, वे पाँच रुपये तो वह शगुन में देगा, चाहे कुछ हो जाय, मगर अभी जिन्दगी के दो बड़े-बड़े काम सिर पर सवार थे । गोबर और सोना का विवाह । बहुत हाथ बाँधने पर भी तीन सौ से कम खर्च न होंगे । ये तीन सौ किसके घर से आयेंगे । कितना चाहता है कि किसी से एक पैसा भी कर्ज न लें, जिसका आता है, उसका पाई पाई चुका दें, लेकिन हर तरह का कष्ट उठाने पर भी गला नहीं छूटता । इसी तरह सूद बढ़ता जायगा और एक दिन उसका घर-द्वार सब नीलाम हो जायगा, उसके बाल-बच्चे निराश्रय होकर भीख माँगते फिरेंगे । होरी जब काम-धन्धे से छुट्टी पाकर चिलम पीने लगता था, तो यह चिन्ता एक

---

1. गोदान, पृ0 10.

काली दीवार की भाँति चारों ओर से घेर लेती थी, जिसमें से निकलने की उसे कोई गली नहीं सूझती थी ।[1]

- होरी का भाई हीरा, उसके घर पर गाय बंधने की बात से ईर्ष्यालु बन गया । एक दिन रात में हीरा गाय की नाद में जहर डाल आता है परन्तु होरी देख लेता है । गाय मर जाती है । पुलिस की गिरफ्त में पड़कर हीरा बर्बाद हो जायेगा ऐसा सोचकर होरी का मन करुणा से भर आया । जब दरोगा ने गरजकर कहा - मैं हीरा के घर की तलाशी लूँगा । होरी के मुख का रंग ऐसा उड़ गया था, जैसे देह का सारा रक्त सूख गया हो । तलाशी उसके घर हुयी तो, उसके भाई के घर हुयी तो, एक ही बात है । हीरा अलग ही सही, पर दुनिया तो जानती है, वह उसका भाई है, मगर इस वक्त उसका कुछ बस नहीं । उसके पास रुपये होते तो इसी वक्त पचास रुपये लाकर दरोगा जी के चरणों पर रख देता और कहता - सरकार, मेरी इज्जत अब आपके हाथ है मगर उसके पास तो जहर खाने को भी एक पैसा नहीं है । धनिया के पास चाहे दो चार रुपये पड़े हों, पर वह धेला भला क्यों देने लगी। मृत्युदण्ड पाये हुए आदमी की भाँति सिर झुकाये, अपने अपमान की वेदना का तीव्र अनुभव करता हुआ चुपचाप खड़ा था ।[2]

- झिंगुरीसिंह से तीस रुपये उधार लेकर, होरी मामला रफा-दफा करना चाहता है परन्तु धनिया इसे ताड़ लेती है और रुपये छीन लेती है और कहती है - "ये रुपये कहाँ लिये जा रहा है, बता । भला चाहता है तो सब रुपये लौटा दे, नहीं कहे देती हूँ । घर के परानी रात-दिन मरें और दाने-दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को मयस्सर न हो और अंजुलीभर रुपये लेकर चला है इज्जत बचाने । ऐसी बड़ी है तेरे इज्जत । जिसके घर में चूहे लोटें वह भी इज्जत वाला है ।[3]

---

1. ~~इस~~ ~~मुंशी~~ ~~प्रेम~~ गोदान, पृ0 39-40.
2. गोदान, पृ0 66.
3. वही, पृ0 67.

इन उद्धरणों से ऐसा ज्ञात होता है कि जीवन-पर्यन्त कर्ज व्यूह में फँसे रहना जैसे होरी की नियति बन गयी थी।

गोदान में होरी की कथा मुख्य रूप से चित्रित की गई है जो एक ऐसे परम्परागत कृषक की कहानी है, जो विभिन्न शोषण-शक्तियों के बीच कृषक जीवन की मरजाद बनाये रखने के प्रयत्न में मजदूर बनकर मृत्युद्वार पर पहुँचने के लिये विवश है। होरी के संबंध में सर्वप्रमुख तथ्य यह है कि वह एक परम्परागत कृषक है, जिसकी कृषक के रूप में कुछ आकांक्षायें हैं, मान्यतायें हैं, जिसके लिये वह जीवित रहता है। होरी जैसे कृषक का शोषण करने वाली अनेक शक्तियाँ हैं, जिनमें सबसे शक्तिशाली गाँव के महाजन हैं। उसके पश्चात् शोषण शक्तियों में जमींदार और उसका कारिंदा पं० दातादीन, गाँव के पंच, पुलिस-अफसर, मिल-मालिक आदि का क्रम आता है। होरी इन शोषकों के बीच कृषक बने रहने की मरजाद को बनाये रखने के प्रयत्न में मजदूर बनने को विवश होता है। कृषक का मजदूर बनना उसकी मरजाद का टूटना है और होरी भी मजदूर बनकर संसार से उठ जाता है। होरी के साथ ही होरी का कृषक वंश समाप्त हो जाता है क्योंकि उसका पुत्र गोबर नगर का मजदूर बन गया है और वहीं का हो गया है। जिस दो-तीन बीघे जमीन की रक्षा के लिये होरी लड़की को बेचने जैसा घृणित काम करता है वह जमीन उसकी मृत्यु के साथ ही वीरान हो जाती है। होरी की मृत्यु के साथ उसका कृषक-कुल भी समाप्त हो जाता है।[1]

- होरी इस आश्वासन पर भोला के घर से गाय लाता है कि वह उसकी शादी करा देगा। परन्तु गोबर जब भोला की मरजी के खिलाफ झुनिया को भगा ले जाता है तब आक्रोश में आकर भोला, होरी से गाय का दाम माँगता है। किसी तरह होरी उसे मना लेता है। माघ तक की मोहलत माँगता है। जब माघ बीत गया, भोला रुपये के लिए आ धमका। 'होरी जब अपनी विपत्ति सुना-कर और सब तरह चिरौरी करके हार गया और भोला द्वार से न हटा, तो उसने झुंझलाकर कहा - तो महतो, इस बखत मेरे पास रुपये नहीं हैं और न मुझे कहीं उधार

---

1. डा० कमलकिशोर गोयनका, प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प विधान, पृ० 450.

ही मिल सकते हैं। मैं कहाँ से लाऊँ ? दाने, दाने को तंगी हो रही है। विश्वास न हो, घर में आकर देख लो। जो कुछ मिले उठा ले जाओ।'[1]

– जब भोला उसके दोनों बैल खोल ले जाने की बात कहता है तब – 'होरी ने उसकी ओर विस्मय-भरी आँखों से देखा, मानो अपने कानों पर विश्वास न आया हो। फिर हत-बुद्धि सा सिर झुकाकर रह गया। भोला क्या उसे भिखारी बनाकर छोड़ देना चाहते हैं ? दोनों बैल चले गये, तब तो उसके दोनों हाथ ही कट जायेंगे।' दीन स्वर में बोला – दोनों बैल ले लोगे, तो मेरा सर्वनाश हो जायेगा। अगर तुम्हारा धरम यही कहता है, तो खोल ले जाओ।'[2]

गोदान एक यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास है जिसमें होरी के सम्पूर्ण जीवन-संघर्ष की गाथा का चित्रण है। इस उपन्यास में तत्कालीन परिवेश में एक मर्यादित किसान की नियति का वास्तविक वर्णन मिलता है।

वस्तुतः यह उपन्यास अपनी सृजनशीलता के गहरे संदर्भ में केवल होरी, धनिया गोबर, मेहता, मालती आदि पात्रों के व्यक्ति और परिवेश की व्याख्या नहीं है बल्कि उससे भी अधिक यह उस समूची मानवीय स्थिति की व्याख्या से संबद्ध है, जिसमें ये पात्र रूप ग्रहण करते हैं और अपना जीवन संघर्ष करते हैं जिसमें उनकी पराजय उनकी नियति हो सकती है लेकिन उनका संघर्ष उनकी नियति से अलग नहीं।[3]

बात-चीत के दौरान धनिया आकर होरी से गुस्से में बोलती है – 'महतो दोनों बैल माँग रहे हैं, तो दे क्यों नहीं देते ? उनका पेट भरे, हमारे भगवान मालिक हैं। हमारे हाथ तो नहीं काट लेंगे ? अब तक अपनी मजूरी करते थे, दूसरों की मजूरी करेंगे। भगवान की मरजी होगी, तो फिर बैल बछिये हो जायेंगे, और

---

1. ~~प्रेमचन्द~~x गोदान, पृ० 97.
2. वही, पृ० 98८
3. डा० अजुन वीर अरोड़ा, आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास, पृ० 83.
4. गोदान, पृ० 99.

मजूरी ही करते रहे तो कौन बुराई है । बूढ़े - तुझे और पोत-लगान का बोझ तो न रहेगा । मैं न जानती थी, यह हमारे वैरी हैं, नहीं गाय लेकर अपने सिर पर विपत्ति क्यों मोल लेती । उस निगोड़ी का पौरा जिस दिन से आया, घर तहस-नहस हो गया ।

भोला कहता है कि होरी "तुम्हारी कुशल इसी में है कि जैसे झुनिया को घर में रखा था वैसे ही घर से उसे निकाल दो, फिर न हम बैल मागेंगे, न गाय का दाम मागेंगें -------- ।"[1] होरी और धनिया ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। भोला खूँटे पर बंधे दोनों बैलों को लेकर चला गया ।

- कर्ज और सूद की रकम बढ़ती रही, होरी परेशान हो गया । खेत बेचने की भी सोच नहीं पाता - बाप दादों की इतनी ही निशानी बच रही है । रूपा सयानी हो गयी है उसका ब्याह करना है । इसी बीच पं0 दातादीन ने एक प्रस्ताव रखा जिसमें एक अधेड़ व्यक्ति से रूपा की शादी करने की बात थी और कुछ सौ-दो सौ रुपये भी दिला देंगे ।

रामसेवक होरी से दो ही चार साल छोटा था । ऐसे आदमी से रूपा के ब्याह करने का प्रस्ताव ही अपमानजनक था । कहाँ फूल सी रूपा और कहाँ वह बूढ़ा ठूँठ । जीवन में होरी ने बड़ी-बड़ी चोटें सहीं थी, मगर यह चोट सबसे गहरी थी । आज उसके ऐसे दिन आ गये हैं कि उससे लड़की बेचने की बात कही जाती है और उसमें इन्कार करने का साहस नहीं है । ग्लानि से उसका सिर झुक गया ।[2]

- पं0 दातादीन ने होरी को दो सौ रुपये दिये और बोले - तुमने मेरी सलाह मान ली, बड़ा अच्छा किया । दोनों काम बन गये । कन्या से भी उरिन

---

1. गोदान, पृ0 99.

2. वही, पृ0 205.

हो गये और बाप-दादों की निशानी भी बच गयी ।[1]

- होरी ने रुपये लिये तो उसका हाथ काँप रहा था, उसका सिर ऊपर न उठ सका, मुँह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है । आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद परास्त हुआ है ।[2]

गोदान सिर्फ एक किसान के उत्पीड़न की कहानी होकर नहीं रह जाता, एक स्त्री-पुरुष की सहभागिता की कहानी भी बनता है । प्रेमचंद व्यक्ति के भाग्य को उसके परिवेश में इस तरह रखते हैं कि वह व्यक्ति और परिवेश दोनों की सम्मिलित नियति का वाचक होता है तथा मनुष्य के दुःख को दूर तक मनुष्य के प्रति मनुष्य के अत्याचार के रूप में परिभाषित करते हुए कृति की कालातिक्रामी विशेषता को निर्धारित करता है ।[3]

गोदान में तत्कालीन भारतीय समाज के विविध रूप और गतिविधियों का विवरण मिलता है - एक किसान का सम्पूर्ण जीवन, संघर्ष करते रहने का प्रतिरूप होरी है जो परिस्थितिवश आर्थिक संकट के चक्रव्यूह में टूटता चला जाता है । होरी जिन परिस्थितियों एवं परिवेश के गिरफ्त में आकर एक चुनौती स्वीकार करता है वही उसके अदम्य साहस एवं पुरुषार्थ का परिचायक बनता है । दुनिया को घर लाकर गोबर इस दुस्साहस को कभी स्वीकार नहीं करता क्योंकि तत्कालीन समाज इस प्रकार की सुविधा छोटे जाति के लोगों नहीं देता था कि वे बड़ी जाति की स्त्री को अपना सके । वर्ग-संघर्ष की इस प्रतिक्रिया का शिकार होरी बनता है और पंचायत द्वारा लगाये गये दण्ड के रूप में 30 मन अनाज और एक सौ रुपये नकद, कर्ज देने के लिये लेता

---

1. गोदान, पृ0 210.

2. वही, पृ0 211.

3. डा0 नवल किशोर, आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता, पृ0 53.

लेता है और जिसके चुकाने की व्यवस्था में शोषित होकर बुरी तरह से तबाह हो जाता है। कर्ज के माध्यम से, साहूकारों, जमींदारों आदि के द्वारा तबाही, तत्कालीन ग्रामीण समाज में जी रहे किसानों की नियति थी, उससे होरी अछूता नहीं रह सका।

चार वर्षों के बाद शहर से गोबर रूपा की शादी में शरीक होने आता है शादी के बाद होरी अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहता है - बेटा, मैंने इस जमीन के मोह में पाप की गठरी सिर लादी। न जाने भगवान मुझे इसका क्या दण्ड देंगे।

गोबर श्रद्धा भाव से बोला - दादा, आखिर तुम क्या करते? मैं किसी लायक नहीं, तुम्हारी खेती में अन्न नहीं, करज कहीं मिल नहीं सकता, एक महीने के लिये भी घर में भोजन नहीं। ऐसी दशा में तुम और कर ही क्या सकते थे? जैजात न बचाते तो रहते कहाँ? जब आदमी का कोई वश नहीं चलता, तो अपने को तकदीर पर ही छोड़ देता है। न जाने यह धाँधली कब तक चलती रहेगी जिसे पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उसके लिए मरजाद और इज्जत सब ढोंग है। औरों की तरह तुमने भी दूसरों का गला दबाया होता, उनकी जमा मारी होती, तो तुम भी भले आदमी होते। तुमने कभी नीति को नहीं छोड़ा, यह उसी का दण्ड है। तुम्हारी जगह मैं होता तो या तो जेल में होता या फाँसी पर गया होता। मुझसे कभी यह बर्दाश्त न होता कि मैं कमा-कमा कर सबका घर भरूँ और आप अपने बाल बच्चों के साथ मुँह में जाली लगाये बैठा रहूँ।[1]

- कई वर्षों के बाद हीरा एक दिन अपने जीर्ण-शीर्ण अवस्था में होरी के घर आ पहुँचता है। अपने किये पर पछतावा जाहिर करता है। क्षमा माँगता

---

1. गोदान, पृ0 212.

है। होरी उसे गले लगा लेता है और कहता है - तुम नाहक भागे। अरे, दरोगा को दस-पाँच देकर मामला रफा-दफा करा दिया जाता और होता क्या ?

होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशायें मानों उसके चरणों पर लोट रहीं थीं। कौन कहता है, जीवन संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण है। इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकायें हैं। उसकी छाती फूल उठी है, मुख पर तेज आ गया है। हीरा की कृतज्ञता में उसके जीवन की सारी सफलता मूर्तिमान हो गयी है। उसके बखार में सौ, दो सौ मन अनाज भरा होता, उसकी हाँड़ी में हजार पाँच सौ गड़े होते पर उससे यह स्वर्ग का सुख क्या मिल सकता था।[1]

इस सम्पूर्ण एपिसोड में हीरा की भूमिका गाय को जहर देकर मारने की घटना, होरी के परिवार की तबाही का कारण बनता है। उसी हीरा को गले लगाकर असीम सुख की अनुभूति होरी के विशाल उदारता को चित्रित करता है।

- होरी अंत में मजदूरी करता है। 'आज होरी खुदाई' करने चला तो देह भारी थी। रात की थकान दूर न हो पायी थी, पर उसके कदम तेज थे और चाल में निर्द्वन्द्वता की अकड़ थी।[2]

- लू तेज थी और होरी उसका शिकार हो गया। सिर चक्कर करने लगा खड़ा न हो पाया। तेज ज्वर था। फिर हाथ-पैर ठण्डे होने लगे। एक मजदूर उसके घर जाकर धनिया, हीरा और शोभा को बुला लाया। होरी की सांसे उखड़ने लगी।

हीरा ने रोते हुए कहा - भाभी, दिल कड़ा करो गोदान करा दो, दादा चले।

---

1. गोदान, पृ0 214.
2. वही, पृ0 215.

धनिया यंत्र की भाँति उठी, आज जो सुतली बेची थी उसके बीस आने पैसे लायी और पति के ठण्डे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली - महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा । यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है और पछाड़ खाकर गिर पड़ी ।[1]

'चन्द्रकान्ता' से 'गोदान' तक हिन्दी उपन्यास में भाग्यवाद के स्थान पर नियतिबोध बढ़ता गया है । नियतिबोध यथार्थ की समझ और मानवीय पक्ष की विवशता के द्वन्द्व से पैदा होता है । देवकीनन्दन खत्री, किशोरी लाल गोस्वामी आदि के उपन्यासों में यथार्थ का वर्णन है ही नहीं । घटनाओं को कौतूहल, जिज्ञासा, मनोरंजन और आकस्मिकता के तत्वों से जोड़कर प्रस्तुत करने से रोचकता जरूर पैदा हुई है परन्तु, जीवन यथार्थ या युग यथार्थ का कोई दृश्य विधान नहीं है । इसलिए उस संवेदना का विकास ही नहीं हुआ जिससे नियतिबोध होता है । प्रेमचन्द के उपन्यासों में यथार्थ का बोध और उससे टकराने की प्रतीति पात्रों में है । यद्यपि यह प्रतीति गबन और गोदान में ही अधिक सफलता के साथ प्रतीत होती है । मानवीय पक्ष पर निष्ठा का क्रमिक विकास सामाजिक जीवन में मनुष्य की स्थिति को बताने के साथ-साथ जीवित मनुष्यों की हरकतों को प्रेमचन्द के बाद क्रियाशील रूप में प्रस्तुत किया गया है । उसे परिस्थितियों को बदलने की इच्छा और कोशिश करते हुए चित्रित किया गया है ।

--------::0::--------

---

1. गोदान, पृ0 216.

अध्याय - पाँच

"प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नियतिबोध के विविध रूप"

क. मानव बनाम परिस्थिति.

ख. मनुष्य बनाम समाज.

ग. व्यक्ति बनाम समाज.

घ. व्यक्ति बनाम व्यक्तिमन.

मानव जीवन के यथार्थ चित्रण के लिए उपन्यास, साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण एवं उपयुक्त विधा है । प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यास के प्रमुख सृजनकर्ता के रूप में अवतरित हुए और उनकी कृतियों का प्रभाव उनके समकालीन उपन्यासकारों से भी अछूता नहीं रहा । यह यथार्थ चित्रण का युग जिसे 'प्रेमचन्द युग' कहा गया । प्रेमचन्द के पश्चात् अर्थात् प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासकारों ने यथार्थ के साथ-साथ मानव-मूल्यों, मनोवैज्ञानिक व वैज्ञानिक धरातल पर कथा-साहित्य को विकसित करने का प्रयास किया है ।

नियतिवाद की चर्चा और नियति का समावेश प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में किस-किस रूप में उद्घाटित किया गया, इस अध्याय में कुछ विशिष्ट उपन्यासों को लेकर, इसका विश्लेषण करने का सफल प्रयत्न किया गया है । निम्न बिंदुओं पर इस विषय का विश्लेषण करके कुछ उपन्यासों का वर्गीकरण करने का प्रयास किया गया है :-

क. <u>मानव बनाम परिस्थिति</u>

1. बाणभट्ट की आत्मकथा
2. कनक-टूटता हुआ

ख. <u>मनुष्य बनाम समाज</u>

1. भूले-बिसरे चित्र,
2. मैला आँचल,
3. अलग-अलग वैतरणी.

ग. <u>व्यक्ति बनाम समाज</u>

1. मानस का हंस
2. दिव्या
3. यह पथ बन्धु था.

घ. व्यक्ति बनाम व्यक्तित्व

1. त्यागपत्र,
2. जहाज का पंछी.

क. "मानव बनाम परिस्थिति"

1. बाणभट्ट की आत्मकथा

डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी

'बाणभट्ट की आत्मकथा' हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक अनूठा प्रयोग है। लेखक ने ऐतिहासिक कथानक का आधार लेकर आत्म-कथात्मक शैली में विषय को अधिक रोचक एवं प्रभावोत्पादक बनाया है। लेखक ने चारित्रिक विकास पर महत्व देते हुए कई योजनाबद्ध घटनाओं का क्रम ले, बाणभट्ट को कार्य करते हुए चित्रित किया है। परन्तु नियति के सम्मुख बाणभट्ट नतमस्तक हैं। वह कई प्रतिज्ञायें करता है परन्तु नियति के वश में अनेक समस्याओं में उलझ जाता है।

बाणभट्ट का वास्तविक नाम दक्ष है। वात्स्यायन वंश में जन्म होने के कारण पारिवारिक वातावरण साहित्यिक एवं आध्यात्मिक था। बचपन में ही माँ-बाप की छत्र-छाया न रहने के कारण वह आवारा बन जाता है। लोग 'बण्ड' कहा करते थे जो बाद में बाण बना।

- आवारा तो मैं था ही। इस नगर से उस नगर में, इस जनपद से उस जनपद में बरसों मारा-मारा फिरता रहा। इस भटकन में मैंने कौन सा कर्म नहीं किया ? कभी नट बनता, कभी पुतलियों का नाच दिखाता, कभी नाट्य-मण्डली संगठित करता और कभी पुराण-वाचक बनकर जनपदों को धोखा देता रहा, सारांश, कोई कर्म छोड़ा नहीं। भगवान ने मुझे रूप अच्छा दिया था और बोलने की पटुता भी थोड़ी सी थी। बस मेरी किशोरावस्था और जवानी के दिनों में ये ही दो बातें मेरी सहायता करती थीं। यद्यपि लोग मेरे बहुविध कार्य-कलापों को देखकर

मुझे 'भुजंग' समझने लगे थे, पर मैं लम्पट कदापि नहीं था ।[1]

द्विवेदी जी ने इतिहास में प्राप्त हर्षकालीन स्थूल आँकड़ों को आधार न बनाकर तत्कालीन साहित्यों में चित्रित तत्व को आधार बनाया है । ------- मध्यकालीन सामन्तशाही, उसकी हीनता, उसके पाप, उसकी छाँह में पलती हुई नागरिक सभ्यता निर्वीर्यता, राजमहलों के अंध गह्वरों में बन्दी तड़पता हुआ नारीत्व, आश्रय पाता हुआ विलासी क्रूर समुदाय, मिथ्या दर्प, ईर्ष्या-द्वेष और स्वार्थ पर ठहरा हुआ धर्म और पाण्डित्य तथा मानवमूल्यों को गलत ढंग से आँकने वाली पनपती हुई दृष्टियाँ, ये सभी (आत्म कथा) के परिवेश में बड़ी जीवन्तता से उभरे हैं ।[2]

स्थाण्वीश्वर पहुँचकर बाण की भेंट निपुणिका से हो जाती है । निपुणिका के चले जाने के बाद, बाण नाट्य-मण्डली ही भंग कर देता है । निपुणिका उसे भट्टिनी की सहायतार्थ वचन-बद्ध करती है । भट्टिनी के भेंट से बाण के चरित्र का नया अध्याय आरम्भ होता है जिसकी सुरक्षा के लिए बाण अपने प्राणों की बाजी लगा देता है ।

- निपुणिका के शब्दों में, "जिस क्षण मैं अपना सर्वस्व लेकर इस आशा से आगे बढ़ी थी कि तुम उसे स्वीकार कर लोगे, उसी समय तुमने मेरी आशा को धूलि-सात कर दिया । उस दिन मेरा निश्चित विश्वास हो गया कि तुम जड़ पाषाण पिण्ड हो, तुम्हारे अन्दर न देवता है, न पशु, एक अडिग जड़ता । मैं इसलिए वहाँ ठहर न सकी । जीवन में मैंने उसके बाद बहुत दुख झेले हैं ---------- । भट्ट तुम मेरे गुरु हो, तुमने मुझे स्त्री-धर्म सिखाया है ।[3]

---

1. बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० 13.
2. डा० रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ० 204.
3. बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० 22.

वेश बदलकर निपुणिका के साथ जब भट्टिनी की सहायता के लिए बाण पहुँचता है और उसे ज्ञात होता है कि भट्टिनी राजकुमारी है और देवपुत्र तुवर-मिलिन्द की कन्या है। उस दृश्य का चित्रण द्विवेदी जी ने निम्न वाक्यों में करने का प्रयास किया है :-

- मैं थोड़ी देर तक आश्चर्य में डूबता-उतराता खड़ा रहा। उचित स्थान पर विधाता का पक्षपात हुआ है हिमालय के सिवाय गंगा की धारा को कौन जन्म दे सकता है? महासमुद्र के सिवा कौस्तुभमणि को कौन उत्पन्न कर सकता है? धरित्री के सिवा और कौन है जो सीता को जन्म दे सके? मैं बड़भागी हूँ जो इस महिमाशालिनी राजबाला की सेवा का अवसर पा सका। आ हा! किस पाप, अभिसन्धि ने इस कुसुम कलिका को तोड़ दिया था? किस दुर्दम भोग-लिप्सा ने इस पवित्र शरीर को कलुषित करने का संकल्प किया था? किस दुर्निवार पाप - भावना ने ज्योत्स्ना को मलिन करना चाहा था?[1]

भट्टिनी किस प्रकार नियति के चंगुल में पड़कर राजकुमारी से बंदिनी बनकर इस दुर्गम जीवन-यापन को विवश होती है। बाण असत्य और अन्याय को बर्दाश्त नहीं करता। कृष्णकुमार से भी जाकर भट्टिनी को स्वाधीन कराने की युक्ति में विवाद कर लेता है। परन्तु बाणभट्ट के साहस और सत्य के प्रति निष्ठा से कृष्ण कुमार बहुत प्रभावित होता है, "मैं तुम्हारे साहस का प्रशंसक हूँ भट्ट! मैंने आज से पहले तुम्हारे जैसे ब्राह्मण को क्यों नहीं देखा, यही सोच रहा हूँ।[2]

"धर्मतः बाणभट्ट भी राजकोप के भागी होंगे और इनकी निपुणिका का सर्वनाश तो निश्चित है। इसलिए मैं यह सोच रहा हूँ कि बाणभट्ट का सायंकाल

---

1. बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ0 49.

2. वही, पृ0 69.

तक देवपुत्र - नन्दिनी और निपुणिका को लेकर मगध की ओर चले जाएँ। आज ही मैं एक बड़ी नौका की व्यवस्था कर देता हूँ। देवपुत्र-नन्दिनी आज रात को विश्राम करें। कल प्रस्थान के पूर्व बाणभट्ट इनसे मिल लें। ऐसा कृष्ण कुमार ने कहा।[1]

इधर बाणभट्ट की भेंट बाबा अघोरभैरव के एक टोली के साथ हुआ। बाण उनके प्रभाव में भयभीत हो गया। "मैं कुछ भी समझ न सका। इसी समय महामाया नामक भैरवी आई। बाबा ने उनसे कहा - यह पशु नहीं जान पड़ता, किन्तु वीर भी नहीं है। अमंगल से डरा हुआ है। इसे आज का प्रसाद देना। अमंगल से इसका चित्त विक्षिप्त हो रहा है।[2]

- बाबा के चले जाने के बाद मैंने सोचने का अवसर पाया। यह कहाँ आ फँसा हूँ। बाबा की बातों का मतलब क्या है? महामाया यदि स्वयं उलझी हुई हैं तो उनके प्रसाद को निष्ठापूर्वक क्यों ग्रहण करूँ? पर बाबा ने तो ऐसा ही आदेश दिया है। बाबा के प्रभाव से मैंने जो कुछ देखा, वह क्या सत्य है?--।[3]

बाबा ने बाणभट्ट के झूठ बोलने पर कड़ी भर्त्सना की और बाबा हँसी। बोले - बता न, तू कर्मफल मानता है या नहीं? - मानता हूँ आर्य। - तो अमंगल से क्यों डरता है? मिथ्याचारी है तू।[4]

बाणभट्ट ऐसी स्थिति में फँस गया - भट्टिनी के लिये वचनबद्ध है परन्तु नियति के व्यूह ने उसे कहाँ से कहाँ ला दिया। बाणभट्ट सोचता है, "मैंने स्वेच्छा से यह कैसा बंधन अपने लिए तैयार कर लिया है। कल तक मैं स्वतंत्र था, आज

---

1. बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ0 69.
2. वही, पृ0 82.
3. वही, पृ0 86.
4. वही, पृ0 80.

पराधीन हूँ । मेरी रात अपनी नहीं है, मेरे दिन अपने नहीं हैं, मेरी गति अपनी नहीं है, मेरा मन अपना नहीं है, क्यों ऐसा हुआ ?[1]

- आभीर सामन्त ईश्वरसेन के सैनिकों को हमारे ऊपर संदेह हो गया । उन्होंने नाव पकड़नी चाही । युद्ध अवश्यम्भावी था । वह शुरू भी हो गया । उस समय कठिनता से आधी रात बीती होगी । हमारी नौकाएँ यथाशक्ति भागने की कोशिश कर रही थी, पर वे एक स्थान पर घेर ली गईं । तमसा का संगम पार हो चुका था और भी किसी छोटी नदी का संगम पीछे छूट गया था । हम प्राणों का पण लगाकर मगध की सीमा में घुस जाना चाहते थे । पर जो नहीं होना था, वह नहीं हुआ, और जो होना था, वह हो गया ।[2]

- ठीक इसी समय धम्म से आवाज हुई । निपुणिका चिल्ला उठी - भट्ट बचाओ । और वह स्वयं भी नदी में कूद पड़ी । मैं कुछ समझ नहीं सका । नीचे आकर देखता हूँ, तो भट्टिनी और निपुणिका पानी में डूब रही हैं । क्षणभर में मैंने अपना कर्तव्य निर्णय कर लिया और पानी में कूद पड़ा । निपुणिका ने चिल्ला कर कहा - 'मुझे छोड़ो, भट्टिनी को सँभालो । उधर देखो, उधर -------- ।' मैं भट्टिनी की ओर लपका । एक क्षण का विलम्ब हुआ होता, तो भट्टिनी गंगा तल में होतीं ।[3]

- भट्टिनी बीच में टोककर बोलीं - 'छोड़ो मेरी सुरक्षा की बात । तुम मुझे नहीं बचा सकते । कोई मेरी रक्षा नहीं कर सकता । मैं जिसके साथ रहूँगी, उसी को डुबाऊँगी । मैं सत्यनाश लेकर पैदा हुई हूँ, वैसी ही रहकर जी सकती हूँ। मेरी चिन्ता छोड़ो ।'[4]

---

1. बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ0 94.
2. वही, पृ0 134.
3. वही, पृ0 135.
4. वही, पृ0 141.

महामाया से भट्टिनी बताती है, "पर भट्ट की वाणी सुनने के बाद मैंने पहली बार अनुभव किया, मेरा यह शरीर केवल भार नहीं है, केवल मिट्टी का ढेला नहीं है - वह उससे बड़ा है। विधाता ने जब उसे बनाया था तो उसका उद्देश्य मुझे दण्ड देना नहीं था। उन्होंने मुझे नारी बनाकर मेरा उपकार किया था। माँ, भट्ट इस पृथ्वी के पारिजात हैं, इस भवसागर के पुण्डरीक हैं, इस कण्टकमय भुवन के मनोहर कुसुम हैं।[1]

महामाया कहती है, "काल, नियति, राग, विद्या और कला माया के कंचुक हैं, पर सत्य हैं। इन्हें अतिक्रमण कौन कर सकता है? त्रिपुरसुन्दरी की लीला है।

भट्टिनी ने चिन्तित होकर कहा - "मैं तप में विघ्न पैदा कर रही हूँ, माता?

महामाया ने स्नेहपूर्वक कहा "ना रे, ना। मैं विघ्नों की पूजा का ही तो तप कर रही हूँ। विघ्न ही तो मेरे उपास्य हैं। तेरे शास्त्रों के अनुसार तू भी तो एक विघ्न ही है। विधाता ने विघ्न के रूप में ही तो सुन्दरियों की सृष्टि की थी। क्यों रे, तू अपने को किसी का विघ्न नहीं समझती।[2]

नारी को विघ्न समझ कर महामाया ने तो नारी जीवन की नियति ही कष्ट, दुख और विघ्न का पर्याय के रूप में लिया है।

- सुचरिता कहती है, "और मैं भाग्यहीना अब भी रटी बोली बोलती

---

1. बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ0 145.

2. वही, पृ0 155.

जा रही हूँ । पर अनुताप भी क्या करूँ, मैं ऐसी ही हूँ - अच्छी या बुरी निन्दिता या अपमानिता । मैं नारायण पर उत्सृष्ट पुष्पवृन्त के समान गन्धहीन होकर भी सार्थक ही हूँ ।[1]

- मैंने प्रतिज्ञा की थी कि अपने दुर्भाग्य का रोना अधिक नहीं रोऊँगा । परन्तु मनुष्य का जीवन अदृश्य शक्तियों द्वारा गढ़ा जाता है । यदि नियति नटी का अभिनय अपने वश की बात होती तो मनुष्य की प्रतिज्ञा भी टिकती । कैसे कहूँ कि बीसवाँ उच्छ्वास मेरे दुर्भाग्य का रोना नहीं है ? और फिर कैसे कहूँ कि इसमें मेरा चरम सौभाग्य नहीं प्रकट हुआ है ?[2]

एक 'रत्नावली' नामक नाटिका महाराजाधिराज के सम्मान में प्रस्तुत किया गया जिसमें बाणभट्ट, चारुस्मिता, निपुणिका आदि ने भाग लिया । वासवदत्ता की भूमिका में निपुणिका स्वयं अभिनय कर रही थी और राजा की बाणभट्ट वासवदत्ता की भूमिका में निपुणिका ने उन्माद बरसा दिया । उसके हर्ष, शोक और प्रेम के अभिनय में वास्तविकता थी । -------- अंतिम दृश्य में जब वह रत्नावली का हाथ बाणभट्ट के हाथ में देने लगी तो सचमुच विचलित हो गई । वह सिर से पैर तक सिहर गई । उसके शरीर की एक-एक एक-एक शिरा शिथिल हो गई । -------- निपुणिका के प्राण निकल रहे थे । भट्टिनी चिल्ला उठी 'हाय, भट्ट अभागिनी का अभिनय आज समाप्त हो गया । -------- अभिनय करके जिसे पाया था, अभिनय करके उसे खो दिया ।[3]

- भट्टिनी बाणभट्ट को दीप्त कंठ से कहती है, "तुम ? तुम इस आर्यावर्त के द्वितीय कालिदास हो, तुम्हारे मुख से निर्मल वाग्धारा झरती रहती है, तुम्हारा अन्तःकरण कल्याण कामना से परिशुद्ध है, तुम्हारी प्रतिभा हिम-निर्झरिणी की भाँति शीतल और धवल है । तुम्हारे मुख में सरस्वती का निवास है ।[4]

'बाणभट्ट की आत्मकथा' लिखने में लेखक को स्वयं बाणभट्ट बनना पड़ा है ।

---

1. बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ0 255.
2. वही, पृ0 299.
3. बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ0 296.
4. वही, पृ0 272.

इसमें लेखक को बेजोड़ सफलता मिली है । जब हम कृति के चित्रों, त्योहारों, उत्सवों के रंगों से गुजरते हैं तब लेखक की भावुकता, कल्पना और अलंकारों की झनकारों के बीच से निकलती हुई भाषा का सौन्दर्य देखते बनता है ।[1]

2. जल टूटता हुआ

डा० रामदरश मिश्र

स्वाधीन भारत के तराई क्षेत्र के ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में रामदरश मिश्र ने विभिन्न सामाजिक संदर्भों में रेखांकित करने का सफल प्रयास किया है ।

महीपसिंह व्यक्ति वही जो कल जमींदार था आज डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का सदस्य बना बैठा है । साँपनाथ या नागनाथ ऽ अंतर क्या पड़ता है ? मास्टर सुग्गन तिवारी के आँखों के आगे दूर-दूर उफनते हुए नालों का सफेद जाल दिखाई पड़ रहा था । बाढ़ की छाती पर लोटती हुई सड़कें, सुख-समृद्धि, फूलतीं-फलती हरियालियाँ और -------- और क्या ? मास्टर को लगा जैसे उसके पेट में कहींएक तीखी ऐंठन हो रही है -------- हाँ, पाँच दिन पहले वह बाजार से कुछ मटर और जौ ले आया था जो कल शाम को खत्म हो गया, बच्चों के लिये कुछ अंट गया, उसे और उसकी पत्नी को भूखे पेट सो जाना पड़ा । तीन महीने से तनख्वाह नहीं मिली । खेत में कुछ हुआ ही नहीं, उधार कब तक देगा बनिया ?[2]

इतने साल हो गये आजादी मिले हुए । यह अभागी जिन्दगी टस से मस

---

1. डा० रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, पृ० 206.

2. डा० रामदरश मिश्र, जल टूटता हुआ, पृ० 2.

नहीं हुई । पानी की फुंकार वैसे ही हमारी फसलों पर पछाड़ खाती लोटती रहती है । इस साल भी यह पछाड़ खेतों का हाड़ तोड़ कर रहेगी । रबी की फसल को जाने क्या हो गया है ? जब खरीफ लुट जाती है तो रबी भी रूठ जाती है । जेठ गुजरे अभी दो मास भी नहीं हुए कि अन्न साफ ।"[1]

मास्टर सुबह ही कस्बे में जाकर चौधरी के यहाँ अपनी पत्नी के गहने रेहन रखकर कुछ रुपये लाता है । खाने के लिये अन्न और आवश्यक वस्तुयें खरीदता है । मास्टर सुग्गन तिवारी के रूप में गाँव के छोटे किसानों की नियति कर्ज और रेहन की वीभत्स छाया में उन जैसे लोगों का संतप्त जीवन पनाह लेता है ।

कुमार शहर में रहकर अपनी पढ़ाई के साथ-साथ एम०ए० पास कर लेता है । पहले कांग्रेस पार्टी फिर सोशलिस्ट कार्यकर्ता के रूप में प्रभावशाली सदस्य की प्रतिष्ठा कायम करता है । गाँव में खेती-बारी या वहाँ का परिवेश उसे नहीं जंचता । परन्तु एक दिन वज्रपात हुआ । उसके भाई रामबिचार को निमोनिया हो गया । डाक्टरों के प्रयास के बावजूद भी वह बच नहीं पाता - कुमार के चाचा धनपाल बिलख-बिलख कर रोने लगे । - "यह क्या हो गया है हमारे घर को हे प्रभु ? क्या हो गया है ? इस जवान लड़के को उठा लिया । हे मेरे ईश्वर तुमने क्या किया -------- ।"[2]

उन्होंने फिर कुमार को धीरे-धीरे छाती पर से हटाया और भरी आवाज में समझाने लगे - 'बेटा जो हो गया सो हो गया, अब सब तैयारी करो । बन-वारी उठो भाई, जो हो गया सो हो गया, प्रभु की मरजी ।'[2]

इसके बाद ही कुमार निश्चय करता है कि छोटे भाई की बहू और उसकी संतानों को जिंदा रखने के लिए वह नौकरी करेगा । गाँव के पास स्कूल में शिक्षक

---

1. जल टूटता हुआ, पृ० 6.
2. वही, पृ० 32.

हो गया और गाड़ी खिंचती चलने लगी ।

– सतीश ने पहली बार इतने निकट से अनुभव किया कि दीनदयाल इतना मीठा किंतु भयंकर नीच आदमी है । उसने सामने जो देखा, वह बड़ा हृदयविदारक था । इतने बड़े प्रतिष्ठित परिवार की सबके सामने कुर्की हो और सो भी एक अदना – से आदमी केकर्जे के कारण । गरीबी सबसे बड़ा अपमान है, वह तेज, विद्या, बुद्धि सब छीन लेती है । यह अपमान जब कभी दीनदयाल जैसे दो कौड़ी के कमाऊ पूतों के रूप में आता है, तो विद्या-बुद्धि कुछ नहीं कर पाती और उसमें एक बार विरक्ति-सी हो गयी, पैसा चाहिए पैसा -------- उसने ठीक ही पढ़ा था – सर्वे गुणा: कांचन-माश्रयंते ।[1]

दीनदयाल पाँच सौ रूपये उधार देकर सतीश के दो बीघे जमीन को लिखवा लेता है और वह परिस्थिति की भयावह मार को सहने के लिए विवश हो जाता है । नौकरी और पैसे की तलाश में भटकता रहा – "भूखी-प्यासी असफल यात्रायें, खाली जेब, भारी-भारी शामें, और सामने रिक्तता का विराट सन्नाटा । --- वह किसे-किसे याद करे -------- क्यों याद करे । कोई भी तो याद प्रीतिकर होती -------- कितनी-कितनी शक्लें याद आ रही हैं -------- हाँ उस दिन उस ज्योतिषी ने ठीक ही कहा था कि 'सैकड़ों मील तक दौड़ जाओ, कुछ हाथ लगने को नहीं । घर के पास ही तुम्हें सुख-सन्तोष मिलेगा ।"[2]

सतीश आखिर कलकत्ते आ गया और पिता के एक मित्र की सिफारिश पर कपड़े के व्यापारी सेठ की दुकान पर काम सीखने के लिये लगवा दिया गया । और चार महीने बाद वह लौट आया बीमार होकर । नौकरी तो नहीं मिली, बीमारी अलबत्ता चढ़ बैठी । उसे उन गंदी गलियों, बहते हुए नाबदानों, उनके पास बनी

---

1. जल टूटता हुआ, पृ0 41.
2. वही, पृ0 42.

हुई गंदी चालियाँ और उनमें बसे हुए लोगों की याद से उबकाई आने लगी। कितना गीला-गीला मौसम, कितनी गीली-गीली जमीन, कितनी सड़ी-सड़ी हवा और गन्दगी के बीच कीड़ों की तरह बिलबिलाती जिंदगी -------- ।[1]

- इन पंद्रह वर्षों में उसने एक नई दुनियां देखी -------- एक दुनियां जिसका रंगमहल किसानों और मजदूरों की चीख-चिल्लाहटों के कंधे पर खड़ा था, जिसके कमल इन गरीबों के पसीने की कीचड़ में खिले थे, जिसका प्रकाश गरीबों की हड्डियों की रगड़ से फूटता था ।

पुनः कहाँ वह साहित्य का विद्यार्थी और कहाँ वह जमींदार की पैसा - उगाही ? कहाँ संवेदनाओं की कोमलता और कहाँ यह क्रूरता का नर्तन ? वह कारिंदा बन गया और धीरे-धीरे उसे लगा कि वह मात्र कारिंदा ही शेष है ।[2]

सतीश सरपंची का चुनाव लड़ने की सोचता है उस इलाके के गरीब लोगों को न्याय दिलाने के लिये, और बेहतर जिन्दगी के लिए । महीपसिंह भी चुनाव में आना चाहते हैं परन्तु उन्हें सतीश के खड़े होने से खतरा दीखता है । सतीश उनकी नौकरी करके उनका विरोध कैसे करता अतः इस्तीफा दे देता है । यहीं से गाँव की राजनीति का चक्रव्यूह उसके खिलाफ महीपसिंह गुप रचने लगा । कितनी घटनाओं के बाद अन्ततः सतीश सरपंच का चुनाव जीत सका ।

- सतीश चुप रहा जैसे किसी गहरे मानसिक संकट में फंस गया हो । अम्बेश जी गम्भीरता से कहते रहे - 'ईश्वर की लीला भी कितनी विचित्र है बेटा, कभी कुछ करता है कभी कुछ, किसी को किसी तरह मारता है, किसी को किसी तरह ।

हम लोग तो उसके हाथ के कठपुतली है -------- ।[3]

---

1. जल टूटता हुआ, पृ0 44.
2. वही, पृ0 46-47.
3. वही, पृ0 180.

राम्सहाय की पत्नी की मृत्यु डेलिवरी के वक्त कुछ गड़बड़ी होने के कारण और डाक्टर की अनुपस्थिति में कोई सर्जिकल आपरेशन न हो पाने की वजह से हो जाती है । दुखी होकर सतीश अपने पिता से कहता है :-'हो तो बहुत सकता है पिताजी, लेकिन आज कोई अपने काम के प्रति ईमानदार नहीं रह गया है । और तो और हमारी रहनुमा सरकार ही को देखिये । वह समझती है कि शहर के लोगों की ही जान, जान है, सारी सुविधायें वहाँ इकट्ठा की जाती हैं और वह भी पैसे वालों के लिए । टी0बी0 का अस्पताल वहाँ है, दाँत का वहाँ, आँख-कान का वहाँ, प्रसूति का अस्पताल वहाँ और यहाँ के लिए जग्गू बहू चमाइन का मुरदार हँसिया, सुकुमार वैद्य की पुड़िया, पण्डिताई और सोखाई तथा कस्बे के सरकारी अस्पताल का पानी ही काफी है ।[1]

- दो पैसे का जनेव पहनकर सारा धर्म ओढ़ने का दम्भ कर रखा है इन लोगों ने । मैं तो कब से चिल्ला रहा हूँ कि धर्म के मिथ्या आडंबर को छोड़ो, अपना काम करना सबसे बड़ा धर्म है,लेकिन कोई सुनता ही नहीं । सारा पाप करेंगे लेकिन अपना खेत नहीं जोतेंगे ।[2]

कुछ लोग सरपंच के फैसले से क्रोधित रात में उन पर छिपकर गड़ासे से वार करते हैं परन्तु घायल सतीश बच गया । लोगों के हल्ला करने से आक्रमणकारी भाग खड़े होते हैं । सतीश को गाँव के छोटे किसान और मजदूर देखने आये परन्तु तिवारीपुर के तिवारियों ने इस घटना को कोई महत्व नहीं दिया ।

-'अरे बाबा, ई कोई गांव है ? आप जइसे देवता को भी मारने में राक्षस को तकलीफ नहीं हुई ।'

ठीक है जग्गू, मैं तो जो भोग रहा हूँ वह भोग ही रहा हूँ, लेकिन चिंता इस बात की है कि गांव का क्या होगा ? क्या इसी गांव की कल्पना गांधी जी

ने की थी ? हम, तुम, आज हैं कल नहीं रहेंगे, लेकिन इस गांव का क्या होगा ? हे प्रभु ।'

– बाबा, सुना आपने, जो बांध सरकार ने बनवाया था, वह जगह-जगह से कट रहा है । नदी का पानी बढ़ रहा है और बांध को तोड़-तोड़ कर यहाँ-वहाँ बह रहा है । लगता है, इस साल बाढ़ पहले ही आयेगी ।[1]

– सतीश सोच रहा है – इस जवार का जीवन भी तो जल ही है, लेकिन पहले एक साथ बहता था, बाढ़ में उमड़ता था, एक साथ गर्मी में सूखता था, एक था । अब तो नये-नये बांध बंध रहे हैं उस जल के किनारे -------- ये बांध भी पोख्ता नहीं है, जगह-जगह से दरक जाते हैं । जहां से दरकते हैं थोड़ा पानी बह जाता है, थोड़ा कहीं और दरकता है तो कुछ पानी और बह जाता है, दूसरी दिशा को । और ये पानी कहीं मिल नहीं पाते, विपरीत या समानान्तर धाराओं में बहते ही चले जाते हैं -------- हाँ, टूट रहा है यहाँ का जल, टूट रहा है । धारा से धारा बिछुड़ रही है, लहरें लहरों से टूट रहीं हैं, बांध बंध रहे हैं लेकिन पोख्ता नहीं, जो जल को संयत कर एक दिशा में प्रवाहित करें और उसमें से शक्ति उजागर करें, बांध जगह-जगह दरक रहे हैं और जल टूट रहा है, टूट रहा है ।[2]

मास्टर सुग्गन तिवारी जो गरीबी और अर्थाभाव के कारण अपनी लड़की गीता की शादी एक अधेड़ व्यक्ति से कर देते हैं, जिसकी माँ सौतेली थी । गीता के साथ ससुराल में दुर्व्यवहार और अत्याचार किया जाता है जिसका कुप्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पड़ता है । उसे निमोनिया हो जाता है और वह टूटती ही चली जाती है ।

जमुना भौजी का आक्रोश वाजिब था – इकलौती बेटी जिसे कितने प्यार

और दुलार से पाला था, उसकी दुर्दशा कैसे देख सकती थी । अर्थाभाव के कारण गीता का इलाज ठीक से नहीं हो सका ।

-'लो जल्दी से यह दवा पिलाओ, डाक्टर ने आज दवा बदली है ।' जमुना भौजी ने सुतुही में दवा ले ली और गीता के मुंह को खोलकर दवा डाल दी -------- घर्र -------- घर्र -------- घर्र -------- और मुंह खुला का खुला रह गया । आँखें एक बार खुलीं, कुछ देखने-पहचानने का प्रयास किया, फिर बन्द हो गयीं ।'[1]

मास्टर सुग्गन तिवारी और सतीश के जीवन का सम्पूर्ण कार्यक्षेत्र उनका गांव तिवारीपुर रहा । अपने दृष्टिकोण को सदैव दूसरों का हित समझा परन्तु पैसे की कमी और असामान्य परिस्थितियों की चपेट में टूटते चले गये । उन्होंने सारा जीवन संघर्ष किया पर मूल्यों को नहीं छोड़ा ।

इस उपन्यास में सम्पूर्ण गांव के लोगों की यथार्थ गाथा है, जमींदार महीप सिंह, कुमार, वंशी, कुंजू, बनवारी, दीनदयाल, जग्गू, चन्द्रकांत आदि पात्रों का भी गांव की राजनीति में सक्रिय योगदान है ।

पूरा गांव बाढ़ की भयंकर गिरफ्त में प्रत्येक वर्ष आ जाता है । बांध के दरार की भाँति जल की विशाल धारा में भी बिखराव आता है । गांव का जीवन भी उस जल की ही भाँति टूट रहा है । इस उपन्यास में जीवन संघर्षों का व्यापक चित्रण मिलता है । सम्पूर्ण फसल बाढ़ की चपेट में बह जायेगी, जानते हुए भी किसान हाथ पर हाथ धरकर बैठा नहीं रहता । खेती करता है, फसलें को लगाता है और इस आशा में कि अन्न होगा, चारा होगा जो जीवन के अंधकार प्रकाश की एक किरण का संचार करेगा । संघर्ष करता रहता है । यह उन लोगों की नियति कही जा सकती है ।

ङ. "मनुष्य बनाम समाज"

1. भूले - बिसरे चित्र

- भगवती चरण वर्मा

भूले बिसरे चित्र में लगभग पचास वर्ष की कहानी है सन् 1885 से 1931 तक। परिवार की चार पीढ़ियाँ आती हैं, उनके प्रतिनिधि हैं, क्रमशः मुंशी शिवलाल, ज्वालाप्रसाद और नवलकिशोर। सन् 1885 में फतेहपुर की कलेक्टर की अदालत में अर्जीनवीस मु० शिवलाल के लड़के ज्वालाप्रसाद को नायब तहसीलदारी का परवाना मिलता है जो बाद में तहसीलदार हो जाता है।

इसी प्रकार से तहसीलदार का पुत्र गंगाप्रसाद डिप्टी कलेक्टर और अंत में कलेक्टर बनता है। परन्तु कलेक्टर गंगाप्रसाद का पुत्र नवलकिशोर इस कुल परम्परा का निर्वाहन करके कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में नमक-आन्दोलन में भाग लेकर जेल चला जाता है।

- 2 मार्च सन् 1930 को महात्मा गांधी ने लार्ड अरविन के नाम एक पत्र प्रकाशित किया, और उस पत्र से देश-भर में हलचल मच गई। वह पत्र सत्याग्रह आन्दोलन का घोषणा पत्र था।[1] ------- ज्ञान प्रकाश इलाहाबाद के सत्याग्रह की योजना बना रहे थे। नवल उसमें शरीक हो गया, जिसके फलस्वरूप गिरफ्तार कर लिया गया।

मु० शिवलाल ने ज्वालाप्रसाद से कहा, "अपने लिये जमीन-जायदाद इकट्ठा कर लो। लम्बरदारिन जैदेई के पास नकद और जेवर मिलाकर लाखों की जमा-जथा है।"[2] परन्तु जैदेई के नियति की अभिव्यक्ति, मरते वक्त उसी के शब्दों में भगवान ने मुझे सहने को जो पैदा किया था, पति दिया, बेईमान और निर्मम।

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृ० 722.
2. वही, पृ० 122.

कोख से पैदा किया बेटा - बेईमान और निर्मम । दुनिया को इन दोनों ने कितना सताया है । और सब कुछ देखती रही अपनी छाती पर रखकर ।"[1]

चार पीढ़ियों की कथा इस उपन्यास में राष्ट्रीय परिवेश में लिखी गई है । मु० शिवलाल सामन्तवादी परम्परा और नौकरशाही वाली परम्परा के मिलन बिन्दु पर खड़े हैं ।[2] वे मजबूरन लिखते हैं, कचहरी में मुन्शी हैं और पैसे लेते हैं । कचहरी में उठने-गिरने वाली सारी छायाएँ उन पर पड़ती हैं । दूसरे वे सामन्ती संस्कार के व्यक्ति हैं, इस प्रकार संयुक्त परिवार के समर्थक, घूसखोरी, चालाकी, स्वार्थजन्य मूल्यहीनता उन्हें नौकरशाही से संपृक्त करती है । एक दम टिपिकल मुंशी जी हैं ।

ज्वालाप्रसाद एक ईमानदार, कर्मठ और न्यायप्रिय अफसर हैं जिनमें नौकरशाही का, व्यक्तिगत संस्कार का भी प्रभाव पड़ा है । अंग्रेज सरकार के नौकर हैं। गंगाप्रसाद की नियुक्ति सीधे डिप्टी कलेक्टर पद् पर होती है । अपने साहसी और अक्खड़ स्वभाव के कारण एक सफल प्रशासक की ख्याति पाते हैं । सरकारी अफसर होने के कारण अंग्रेजी हुकूमत के प्रति पूर्णतया समर्पित हैं । स्वाधीनता आन्दोलन का विरोध करते हैं और उनका प्रयास रहता है कि सत्याग्रहियों द्वारा किसी प्रकार की कहीं कोई अशांति न पैदा हो । कलेक्टर पद पर कार्य करते हुये उनकी असामयिक मृत्यु हो जाती है ।

वर्मा जी ने इस उपन्यास में एक हद तक यह प्रयास किया भी है कि विभिन्न पीढ़ियों के जीवन में से घटनाओं और व्यक्तियों को छाँटकर इस प्रकार प्रस्तुत किया जाय कि पूरी एक चेतना, परिस्थिति अथवा व्यवस्था स्थापित हो सके ।[3] नियति बोध का भी स्थान-स्थान पर चित्रण किया गया है कि, "आदमी कुछ नहीं करता, जो कुछ कराती हैं वे परिस्थितियाँ ही कराती हैं । परिस्थितियाँ

---

1. भूले-बिसरे चित्र, पृ० 414.
2. डा० रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ० 152.
3. नेमिचन्द्र जैन, अधूरे साक्षात्कार, पृ० 84.

ही हैं जो चौथी पीढ़ी को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ती है - पिता की बिमारी और मृत्यु, नवल की जीवन दिशा बदलती है । वह आई०सी०एस० बनने और रायसाहब की कन्या को ब्याहने का स्वप्न छोड़कर जिन्दगी की कठोर जमीन पर आता है । सत्याग्रह में शामिल हो जाता है नियति का विधान एक अजीब ढंग से चल रहा है ।[1]

रूढ़िवादी परम्परा में ईश्वर का विधान कह कर इस उपन्यास में वर्मा जी ने लिखा है, 'जो अयोग्य है, बुद्धिहीन है, असंयमी हैं उसे तो तबाह होना ही है । उसकी तबाही को भला कोई कैसे बचा सकता है । इस सबकी चिंता छोड़िये । भगवान का विधान एक अजीब ढंग से चल रहा है और वह इसी तरह अजीब ढंग से चलेगा भी । इस दुनिया में जीवित वह रह सकता है जो समर्थ है ।[2]

इस परिवार के विघटन का चित्रण उपन्यास में अत्यंत वेदनापूर्ण और आवश्यकतानुसार सुविधापूर्वक किया गया है । तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक क्रिया-कलापों का वर्णन अधिक प्रभावी न होकर साधारण स्तर पर किया गया है । अंग्रेजी शासन तंत्र में ऊपर तक न पहुंच पाने का गंगाप्रसाद का असंतोष एक व्यक्तिगत अपमान और निराशा बना रहता है - दासत्वबोध के एक राष्ट्रीय चेतना से गहरे स्तर पर नहीं जुड़ता । प्रभुलाल और उसके पुत्र के जरिये आदमी-आदमी के बीच अर्थ प्रधान बाजारू रिश्तों के कायम होने की सूचना है लेकिन प्रभुलाल और उसके पुत्र लक्ष्मीचन्द को एक फार्मूले के तहत लाया गया है, इससे वे संवेदन के स्तर पर नहीं छूते । बदले युग की नैतिकता की सूचना लेखक देता है, "आज की मान्यतायें बदल गई हैं । जिस जगह तुम हो, वहाँ हर चीज बिकती है, दीन, ईमान, सत्य, चरित्र। यह पूँजीवाद का युग है, यह बनियों की दुकान है जहाँ सब कुछ बिकता है ।[3]

---

1. नवल किशोर, आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता, पृ० 171.
2. भूले बिसरे चित्र पृ० 59.
3. वही, पृ० 329.

सामंतवाद का अन्त होता है - जमींदार गजराज सिंह, बरजोर सिंह, सरोहन के राजा आदि टूटते जा रहे हैं और पूँजीवाद उभरकर आ रहा है। प्रभुदयाल और उनके पुत्र लक्ष्मीचन्द प्रमुख रूप से आते हैं। संतों एक आभूषण विक्रेता राधाकिशन की पत्नी है जो गंगाप्रसाद से प्रेम करती है। प्रेम-प्रदर्शन में दूर तक बहक जाती है। मिस्टर वाट्स के साथ भी प्रेम प्रसंग चलता है जिसके फलस्वरूप राधाकिशन को रायबहादुर की उपाधि मिलती है और सन्तों को रानी सतवंत कुँवर कहकर पुकारा जाने लगा। यह पूँजीवादी व्यावसायिकता की चरम परिणति है कि स्त्री भी वस्तुओं की तरह बिक रही हैं और वह भी, अपनी इच्छा से या अपने पति के इशारे पर।[1]

गंगाप्रसाद का मलका नामक वेश्या के साथ भी प्रेम प्रसंग चला और अलीरजा, ज्ञानप्रकाश भी इस चर्चे में आये। कांग्रेस के कार्यों में भी मलका हिस्सा लेने लगी। गंगाप्रसाद हैरिसन द्वारा अपमानित होते हैं और इस्तीफा लिखते वक्त पारिवारिक समस्याओं का ख्याल करके इरादा बदल देते हैं। गंगाप्रसाद धीरे-धीरे अस्वस्थ होने लगे और टूटने लगे। अपने पुत्र नवल से कहने लगे, "मैं जीवन में भयानक रूप से असफल रहा हूँ। यह पद उन्नति, मान यह सब केवल ऊपरी दिखावा-भर है, इसमें कुछ है ही नहीं। लेकिन कहाँ पर कुछ है, यह भी तो मैं आज तक नहीं जान सका।"[2]

गंगाप्रसाद की असामयिक मृत्यु के बाद नवल के मन में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। महात्मा गांधी का प्रभाव पूरे भारत में जोरों पर था। आई०सी० एस० की परीक्षा में बैठने का विचार छोड़ा और प्रस्ताव भी अस्वीकार कर देता है। नवल ने अपनी बहन विद्या का विवाह किया। विद्या अपमानित और निर्वासित हुई। विद्या कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने गई, वहाँ से कर्म का संदेश लेकर लौटी और नारी-शिक्षा-सदन में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। नवल मानता है कि

---

1. डा० परमानंद श्रीवास्तव, उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा, पृ० 69
2. भूले-बिसरे चित्र, पृ० 610.
3.

पुरानी दुनिया वाले चाहे कुछ भी कहें, स्त्री का भी अपना एक अस्तित्व है ।[1]

ज्वालाप्रसाद को यह सभी बड़ा विचित्र सा लगता है । किस प्रकार मान्यताओं का परिवर्तन होता है ? इस चिंता में परेशान और दुखी हैं । इस परिवर्तन का आभास देते हुए भगवती बाबू इन शब्दों में ज्वालाप्रसाद के विचारों को व्यक्त करते हैं । "दो बूढ़े जिन्होंने युग देखा था, जिन्दगी के अनेक उतार चढ़ाव देखे थे जिन्होंने, जिनके पास अनुभवों का भण्डार था, विवश थे, निरुत्तर थे । और दूर हजारों लाखों करोड़ों आदमी जीवन और गति से प्रेरित, नवीन उमंग और उल्लास लिए हुए - एक नई दुनिया की रचना करने के लिए चले जा रहे थे ।"[2]

भूले बिसरे चित्र में परिवार से लेकर समाज और शासन तक में हुए परिवर्तन को लेखक ने उपन्यास में चित्रित करने का सफल प्रयास किया है । कहीं वह इसे नई पीढ़ी का करिश्मा जाहिर करता है और कहीं वह इसे नियति-परिवर्तन मान लेता है ।[3] उपन्यास में बदलते समय का साक्षी ज्वालाप्रसाद है । सारा परिवर्तन उसे अजीब सा लगता है और जब इस परिवर्तन को समझ नहीं पाता तो कहता है, "मैंने तो सोचना विचारना ही छोड़ दिया है, क्योंकि आदमी का सोचा होता नहीं है ।"[4] मानव-समाज के उतार-चढ़ाव तथा उसकी गलतियों का दायित्व भी लेखक नियति पर डालता है । संतों के पतन के विषय में लाला रिपुदमन सिंह तर्क देता है, "मनुष्य की आधारभूत प्रवृत्तियां विशेष परिस्थितियों में उभरेंगी ही उभरने के लिए यदि तुम साधन न बने होते तो कोई दूसरा साधन बन गया होता । आदमी कुछ नहीं करता, जो कुछ कराती है वे परिस्थितियां ही कराती हैं ।[5] जीवन के महत्व-

---

1. डा० सुरेश सिनहा, हिन्दी उपन्यास, पृ० 292.
2. भूले-बिसरे चित्र, पृ० 749.
3. डा० रमाकान्त श्रीवास्तव, व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के संदर्भ में, पृ० 132.
4. भूले बिसरे चित्र, पृ० 512.
5. वही, पृ० 288.

पूर्ण मुद्दों में इस तरह के नियतिवादी निर्णय को नेमिचन्द्र जैन 'दृष्टि का सरलीकरण मानते हैं ।[1] इस उपन्यास में वर्तमान से जुड़े हुए निकट अतीत को समग्र से चित्रित करने का प्रयास किया गया है ।

2. मैला आंचल

– फणीश्वरनाथ रेणु

मैला आंचल एक आंचलिक उपन्यास है । यह कथा बिहार के पूर्णिया जिले के एक छोटे से गांव मेरीगंज के निवासियों की है । स्वतंत्रता से कुछ काल पूर्व से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् तक बिना किसी विरोध विद्रोह के भाग्यलेख मानकर गांव के लोग विदेशी आक्रांता और स्वदेशी धनी लोगों के अत्याचार सहते आ रहे हैं – "इसमें फूल भी हैं, शूल भी, धूल भी हैं गुलाल भी, कीचड़ भी है चन्दन भी, सुन्दरता भी है कुरूपता भी – मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।"[2]

कुछ लोग नियति मानकर सब कुछ सह लेते हैं पर कई लोग ऐसे भी होते हैं जो जीवन युद्ध का निर्णय बिना संघर्ष के नहीं होने देते । जैसे कालीचरण, चलित्तर कर्मकार, बावनदास । राष्ट्र स्वतंत्र हुआ, पर विदेशी हमारे देश को जर्जर कर गये – "पूर्णिया जिले में ऐसे बहुत-से गांव है और कस्बे हैं जो आज भी अपने नामों पर नीलहे साहबों का बोझ ढो रहे हैं । वीरान जंगलों और मैदानों में नील कोठी के खंडहर राही बटोहियों को आज भी नीलयुग की भूली हुई कहानियां याद दिला देते हैं ।"[3]

---

1. नेमिचन्द्र जैन, अधूरे साक्षात्कार, पृ0 88.

2. फणीश्वर नाथ रेणु, मैला आंचल, प्रथम संस्करण की भूमिका.

3. वही, पृ0 11.

किसी भी नीति-निर्धारण, भविष्य की योजना का सफल होना आवश्यक नहीं है। आगे परिस्थितियाँ कैसी हों कौन जाने, इसे भाग्य या नियति का पारम्परिक नाम भी दिया जा सकता है :-

"आज से करीब पैंतीस साल पहले, जिस दिन डब्लू०जी० मार्टिन ने इस गाँव में कोठी की नींव डाली, आस-पास के गाँवों में ढोल बजाकर ऐलान कर दिया - आज से इस गाँव का नाम हुआ मेरीगंज। -------- गाँव का नाम बदलकर, रौतहट स्टेशन से मेरीगंज तक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से सड़क बनवाकर और गाँव में पोस्ट आफिस खुलवाने के बाद मार्टिन साहब अपनी नवविवाहिता मेम मेरी को लाने के लिए कलकत्ता गये। -------- लेकिन मार्टिनसाहब का आयोजन अधूरा साबित हुआ। मेरीगंज पहुँचने के ठीक एक सप्ताह बाद ही जब मेरी को 'जड़ैया' ने धर दबाया तो मार्टिन ने महसूस किया कि पोस्ट आफिस से पहले यहाँ एक डिस्पेन्सरी खुलवाना जरूरी था।"[1]

आपसी झगड़े और वैमनस्य से गाँव का वातावरण अशान्त होता जा रहा था। नियति चक्र में फंसा आदमी जब विवश हो जाता है तो उसकी नियति घसीटते बैल की भाँति हो जाती है और तब मनुष्य समय या भविष्य की प्रतीक्षा भर कर सकता है।

-'बालदेव-हरगौरी संवाद और यादव सेना के अचानक हमले ने गाँव की दलबन्दी को नया जीवन प्रदान कर दिया था। -------- सिंघजी थाना फौजदारी से घबराते हैं। बात-बात में गाली और ढेल-ढेल पर लाठी। कानूनी-कचहरी की शरण जाना तो अपनी कमजोरी को जाहिर करना है समय आने पर बदला ले लिया जायेगा।"[2]

---

1. मैला आँचल, पृ० 12.
2. वही, पृ० 21.

मनुष्य समय के साथ चलके ही अपनी अर्थवत्ता बनाए रखने का सफल प्रयास करता है। परन्तु समय के साथ चलने का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि मनुष्य सब कुछ भाग्यलेख समझकर कर्म से च्युत हो जाय। ऐसा करने पर वह और भी परिस्थितियों के दलदल में फंसता चला जाता है। जो गाँववाले बालदेव का बहिष्कार करते थे वे ही समय आने पर बलदेव की बातों से प्रभावित होकर वे उसकी चिरौरी करने लगे।

-'बालदेव! तुम यहाँ से चले जाओगे तो यह मेरीगंज का दुरभाग होगा, सरम की बात होगी। गाँव में तो लड़ाई-झगड़े लगे ही रहते हैं। दो हण्डी एक जगह रहें तो ठनका होना जरूरी है। तुम लोगों का काम है, गाँव में मेल-मिलाप बढ़ाना, गाँव की उन्नति करना। इसमें जो बाधा डालता है, वह अधर्मी है। तुम लोग देश के सेवक हो। खल और कुटिल लोगों को सुमारग पर चलाना तुम्हीं लोगों का काम है।'[1]

इस उपन्यास में डा0 प्रशान्त कुमार बनर्जी की कथा भी अजीब सी रोचकता लिये है। एक लावारिस बच्चा नियति की ठोकरें खाता हुआ आगे चलकर लोगों के कल्याण के लिए कदम उठाता है। डा0 प्रशान्त परिस्थितियों से लड़ते हुए पुरुषत्व का अप्रतिम उदाहरण है :-

"प्रशान्त अज्ञात कुलशील है उसकी माँ ने एक मिट्टी की हाँडी में डालकर बाढ़ से उमड़ती हुयी कोशी मैया की गोद में उसे सौंप दिया था। नेपाल के प्रसिद्ध उपाध्याय-परिवार ने, नेपाल सरकार द्वारा निष्कासित होकर, उन दिनों सहरसा 'अंचल में' 'आदर्श आश्रम' की स्थापना की थी। एक दिन उपाध्यायजी बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए रिलीफ की नाव लेकर निकले, झाऊ की झाड़ी के पास एक मिट्टी की हाँड़ी देखी। -------- हाँड़ी से नवजात शिशु के रोने की आवाज आयी। --------'आदर्श आश्रम' में एक दुखिया युवती थी -स्नेहमयी।

---

1. मैला आँचल, पृ0 27.

स्नेहमयी को उसके पति डा० अनिलकुमार बनर्जी ने त्यागकर एक नेपोलियन से शादी कर ली थी । उस दिन से प्रशान्त स्नेहमयी का इकलौता बेटा हो गया ।'[1]

'हिन्दू विश्वविद्यालय से आई०एस०सी० पास करने के बाद वह पटना मेडिकल कालेज में दाखिल हुआ । -------- डाक्टरी पास करने के बाद जब वह हाउस सर्जन का काम कर रहा था, 1942 का देशव्यापी आन्दोलन छिड़ा । नेपाल में उपाध्याय परिवार का बच्चा-बच्चा गिरफ्तार किया जा चुका था । -------- प्रशान्त भी तो उपाध्याय परिवार का था, वह कैसे बच सकता था, उसे भी नजरबन्द कर लिया गया ।'[2] प्रशान्त तत्पश्चात् गाँव के मलेरिया सेन्टर में पहुँच गया । नियति ने कहाँ-कहाँ घुमाया प्रशान्त को मगर पराजित नहीं हुआ ।

डा० प्रशान्त यहाँ आकर डाक्टर की-सी वैज्ञानिक की-सी अनासक्ति नहीं रख पाता, वह धीरे-धीरे यहाँ की जिन्दगी के रस में घुलने लगता है । यहाँ की जिन्दगी उसे बहुत ही प्रिय लगती है, यहाँ की जिन्दगी की प्रियता का प्रतीक है कमली -------- और मौसी और गनेश और -------- ।[2] डा० की जिन्दगी का एक नया अध्याय शुरू होता है ।

उपन्यास का एक और सशक्त पात्र बावनदास है । बावनदास सत्याग्रही एवं स्वतंत्रता सेनानी है । इसने महात्मा गांधी और पं० नेहरू के साथ देश की आजादी के लिए अपना योगदान दिया । 'इन सारी चीजों के साथ-साथ बावनदास गाँव की अपूर्व निष्ठा, त्याग और ईमानदारी लेकर अपना बलिदान देता है और राजनीति को एक उच्च मूल्य प्रदान करता है । यही बावनदास लोगों के लिए श्रद्धा का पात्र है ।

---

1. मैला आँचल, पृ० 41.
2. वही, पृ० 42.

बावनदास। पूर्वजन्म का फल अथवा सिरजनहार की मर्जी। प्रकृति की भूल अथवा थायरायड, थायमस और प्युटिटिरी ग्लैंड्स के हेरफेर। डेढ़-हाथ की ऊँचाई। साँवला रंग, मोटे होंठ, अचरज में डाल देने वाली दाढ़ी, और चौंका देने वाली मोटी आवाज। ——— और जब भगवान ने उसे चलता फिरता तमाशा ही बनाकर भेजा है, लोग उसे देखकर खुश हो लेते हैं तो क्यों न वह पारिश्रमिक माँग ले। ——— दे दे मैया कुछ खाने को। भगवान भला करेंगे। सीताराम, सीताराम।[1]

'चन्दनपट्टी की उस सभा ने, तिवारी जी के भारयन सुलतान के गीत ने इस डेढ़ हाथ के आदमी को भी झकझोर दिया था। ——— न जाने पूर्वजन्म के किस पाप का फल भोग रहा हूँ। क्या होगा यह शरीर रखकर? चढ़ा दो गाँधी बाबा के चरण में भारथमाता की खातिर। आभारानी, बावनदास आदि सभी गिरफ्तार हुए। पुनश्च, खून से लथपथ खादी की सफेद साड़ी। पत्थर को भी पिघला देने वाली, करुणा से भरी बोली, साकार भगवान। 'बावन के पूर्वजन्म के सारे पाप मानों अचानक ही पुण्य में बदल गए। सूखे ठूंठ में नयी कोंपल लग गयी। उसके मुंह से मोटी आवाज निकली थी - "माँ"।

डेढ़ हाथ ऊँचा यह 'नर-आदमी' कितना बड़ा हो गया है।[2]

"सौतलिस्ट? सौतलिस्ट? क्या करेगा सौतलिस्ट हमको? सब पार्टी समान है। ——— सब ऐसे मन्तरी होना चाहते हैं बालदेव। देस का काम, गरीबों का काम, चाहे मजूरों का काम, जो भी करते हैं, एक ही लोभ से। ——— उस पार्टी में बस एक जैपरगासबाबू है। हा-हा-हा। उनको भी कोई गोली मार देगा। ——— फिर आराम लेने के लिए सभापति-मन्तरी साथे-साथ ———।"[3]

1. मैला आँचल, पृ० 105.
2. वही, पृ० 106.
3. वही, पृ० 232-333

बावन ने बहुत सफर किया है सैन से - कलकत्ता कांग्रेस, लखनौ कांग्रेस, वैजवाड़ा, साबरमती आसरम, महात्मा गांधी की जन्मभूमि काठियावाड़, फिर बम्बै ।[1] बावनदास की नियति ही उसे संघर्ष की प्रेरणा देती है । ------- जै महतमा जी । जै बापू । -------- मां । मां । -------- धन्न हो प्रभु । एक परीक्षा से तो पार करा दिया प्रभु । बस यही -------- इसी साहुड़ के नीचे । इसी कच्ची लीक के पास -------- डाल दो डेरा रे मन ।[2]

बावन निराश नहीं होता है । जब तक सूरज नहीं उगेगा, वह टलेगा नहीं। -------- बात ही कुछ ऐसी है । यदि इस रास्ते से नहीं आयी गाड़ी तो, --- । वह दूर, बहुत दूर किसी गांव की रोशनी को देखता है ।[3]

आखिर गाड़ी जब गुजर गयी तो छलदार और रामखुआवनसिंघ मिलकर, बावन की चित्थी चित्थी लाश, लहू के कीचड़ में लथपथ लाश को उठाकर चलते हैं । -------- नागर नदी के उस पार पाकिस्तान में फेंकना होगा । इधर नहीं --- हरगिस नहीं ।[4]

बावन की ठण्डी लाश झोली-झण्डा के साथ फिर उठी । बावन ने दो आजाद देशों की, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की - ईमानदारी को, इन्सानियत को बस दो डेग में ही नाप लिया ।[5]

गांव की राजनीति ने साधुओं, ज्योतिषियों के चक्र में फंसे गांव के लोगों को पीस दिया । बालदेव की कांग्रेसी राजनीति और कालीचरण की कम्युनिस्ट

---

1. मैला आंचल, पृ0 234.
2. वही, पृ0 235.
3. वही, प10236.
4. वही, पृ0 238.
5. वही, पृ0 239.

पार्टी के टकरावों के बीच गाँव के लोग सही रास्ता तलाशने में असफल रहते हैं।

"अच्छा। अच्छा। अब काम की बात हो। -------- सुनो कालीचरन बेटा। लीडर बने हो तो बड़ा अच्छा काम है। बाबू - गाँव का नाम तो इसी में है। कोई सोशलिस्ट का लीडर है, तो कोई काँग्रेस का तो कोई काली टोपी का।"[1]

तहसीलदार ने गाँव के लोगों पर बड़ा अत्याचार किया। संथाल टोली के बहुत लोग मौत के घाट उतार दिए गए थे। नया तहसीलदार कालीचरण सब उसी के कारण विपत्ति में फंसे मगर नियति ने ऐसी क्रीड़ा की कि तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद अपनी बेटी के दुखों से टूट गए और जब प्रशान्त जेल से लौटा, उसकी बेटी माँ बनने वाली थी। अचानक ऐसी खुशी पाकर वह अपने पूर्व कर्मों पर बहुत पछताया :-

"सुमिरतदास। लोगों से कह दो -------- हरेक परिवार को पाँच बीघा के दर से जमीन मैं लौटा दूँगा। साँझ पड़ते-पड़ते मैं सब कागज पत्तर ठीक कर लेता हूँ। -------- और संथाल टोली में जाकर कहो -------- वे लोग भी आकर रसीद ले जायें। एक पैसा सलामी या नजराना, कुछ भी नहीं। -------- दे दो, खेलावन को उसकी जमीन का सब धान दे दो।"

नियति से संघर्ष करती मानवता के लिए नई आशा की किरण सचमुच सिद्ध ही होता है। नियति लेख के विरुद्ध नई ध्वनि।[2]

-------- वेदान्त -------- भौतिकवाद -------- सापेक्षवाद -------- मानवतावाद। -------- हिंसा से बर्बर प्रकृति रो रही है। व्याध के तीर से

---

1. मैला आँचल, पृ0 145.
2. वही, पृ0 248.

जख्मी हिरण-शावक सी मानवता को पनाह कहाँ मिले ? -------- हा - हा - हा ! अट्टहास ! व्याधों के अट्टहास से आकाश हिल रहा है । छोटा-सा नन्हा सा हिरण हाँफ रहा है । छोटे फेफड़े की तेज धुकधुकी । -------- नीलोत्पल ! नहीं-नहीं ! यह अंधेरा नहीं रहेगा । मानवता के पुजारियों की सम्मिलित वाणी गूँजती है - पवित्र वाणी । उन्हें प्रकाश मिल गया है । तेजोमय ! क्षत-विक्षत पृथ्वी के घाव पर शीतल चन्दन लेप रहा है । प्रेम और अहिंसा की साधना सफल हो चुकी है । फिर कैसा भय ! विधाता की सृष्टि में मानव ही सबसे बढ़कर शक्ति-शाली है । उसको पराजित करना असंभव है, प्रचण्ड शक्तिशाली बमों से भी नहीं -------- पागलों ! आदमी आदमी है, गिनीपिग नहीं । -------- सवारि अपर मानुस तत्व ।[1]

3. अलग-अलग वैतरणी

- शिव प्रसाद सिंह

अलग-अलग वैतरणी के लेखक शिवप्रसाद सिंह ने उपन्यास में एक खास सजीव ग्रामीण परिवेश करैता की ठनक पहचानने के बहाने, आजादी के बाद के समूचे भारतीय जीवन की तब्दीलियों, विसंगतियों, कठोर सच्चाइयों और प्रतिक्रियाओं से सीधा साक्षात्कार करने की कोशिश की है ।[2] इस उपन्यास में सामाजिक बुराइयों से और फिर पराजय से कुंठित होते हुए मनुष्य का चित्रण है ।

यह उपन्यास टूटते हुए गाँव की कहानी है, इस टूटते हुए गाँव में अभी भी कुछ टूटने को बाकी है । वास्तव में यह टूटना जड़ता और अज्ञानता का टूटना

---

1. मैला आँचल, पृ0 249.
2. डा0 परमानन्द श्रीवास्तव, उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा, पृ0 111.

नहीं है । मूल्यों और संबंधों का टूटना है, विवेक और संवेदनाओं का टूटना है साथ ही साथ जमींदारी और जाति-पाँति का टूटना भी है, किन्तु यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि बुरी चीजें टूटकर भी नहीं टूटीं और अच्छी चीजें टूटने लगीं तो फिर टूटती ही गयीं ।[1]

करैता गाँव के जमींदार अपने छोटे भाई, देवपाल की मृत्यु के उपरांत अफ-सोस करते हुए,

- जिन्दगी के लंबे-लम्बे सत्तर वर्षों में शायद ही कभी कोई ऐसा दिन आया हो, जब बड़े - से - बड़े गम में भी जैपाल सिंह की आँखों में आँसू छलकें हों । पर देवपाल की यादें उन्हें कई बार रुला चुकी हैं । उस दिन भी नवजादिक लाल से बातें करने के बाद सुरजू के बारे में सोचते-सोचते जाने वे कब देवपाल की छाया के पास आ गये । और जब उन्होंने ——— वे फूटफूटकर रो पड़े । वे सोचते कि देवपाल की मौत उन्हीं के कारण हुई । उन्होंने चाहा होता तो देवपाल को उस राह पर कदम बढ़ाने से रोक लिया होता । पर बरसाती नदी की बाढ़ रोकना मुश्किल है उसके रोकथाम के उपाय तो पहले से ही किये जाते हैं । उन्हें पहले मालूम ही कब हुआ ? रामसती और देवपाल की प्रेम-कहानी तो उतने विस्तार से उन्होंने तब सुनी जब वे अपना सब कुछ हार चुके थे ।[2]

ठाकुर जैपाल सिंह अपने अंतिम समय में जैपाल ने पूरा स्पष्ट होकर बहू की ओर मुंह करके कहा - "यह बात पहले से कम बयान करने की नहीं है, अगरचे इसका कुछ दूसरे तरह का है । बेटी, इस परिवार पर पता नहीं, किस ग्रह की छाया पड़ा करती है । दुर्दिन नजर नहीं आता । पर अचानक ऐसा कुछ हो जाता है कि जो इसमें सबसे अनूप, सबसे बेशकीमत होता है, वही खो जाता है ।[3]

---

1. डा० रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ० 245.
2. शिवप्रसाद सिंह, अलग-अलग वैतरणी, पृ० 30-31.
3. वही, पृ० 82.

उपन्यास का एक अन्य पात्र धरमू सिंह है जो बहुत ही ईमानदार व नेक इंसान है, पर गरीबी उसके लिये एक अभिशाप बन गयी है । नियति की चपेट में आकर वह और उसका परिवार तबाह हो जाता है । गाँव की दलगत-नीति भी कुछ हद तक इसके लिये जिम्मेदार है । जमींदार के अत्याचार का शिकार होता है फलस्वरूप उसके घर की कुर्की का आदेश होता है ।

"एक गरीब परिवार के उजड़ने का दर्द अनुभव करना शायद ऊपर-ऊपर की बनावटी बात है । अपने जीवन की नीरसता यदि किसी दूसरे की व्यथा के भीतर से ही कम होती तो ऐसा अवसर भी छोड़ने को कोई तैयार नहीं । यही मनुष्य की नियति है । "गरीब का घर जरे, गुंडा हाथ सेंके ।"[1]

पुनश्च, धरमू सिंह की पत्नी चथिया इन दीवालों को वैसे ही देख रही थीं, जैसे कोई माँ अपने बेकल मासूम बच्चे के भूखे शरीर को देखती है ।"[2]

पूरे उपन्यास के दौर के अन्तर्गत यों तो अनेक पात्र आते हैं, पर कुछ विशेष रूप से अपनी छाप छोड़ते हैं । इन्हीं में से एक पात्र हरिया है । हरिया के पिता टीमल सिंह एक साधारण ओहदे के व्यक्ति थे, थोड़े से खेतों के मालिक । पिता की मृत्यु के बाद हरिया की पढ़ाई छूट जाती है और खेती बारी देखनी पड़ती है । वह एक होनहार छात्र है परन्तु भाग्य के आगे उसे मजबूर होना पड़ता है । स्वयं उसी के शब्दों में,

"मैं तो करम का दरिद्दर हूँ ही । न होता तो ऐसे कंडम खानदान की गाड़ी में इस तरह जुतता क्यों रहता । आँख पर अटौसा लगाये कोल्हू के बैल की तरह घूमता रहूँ, तभी साने भूसा रहेंगे । छः सालों में एक दिन भी ऐसा नहीं रहा होगा कि सात घंटे आठ घंटे खटकर मिहनत न की हो ।"[3]

---

1. अलग-अलग वैतरणी, पृ0 103.
2. वही, पृ0 111.
3. वही, पृ0 132-133.

उपन्यास का नायक विपिन पढ़ाई समाप्त करके गाँव आता है । जग्गन मिसिर और हरखू सरदार से बातचीत के दौरान,

" - आपने तो ओर-माये तक पढ़ लिया । इस देहात में तो कोई इतना नहीं पढ़े है । है कि नहीं जग्गन मिसिर ।"

"ठीक है हरखू सरदार । पढ़े-लिखे आदमी होंगे तभी न हम लोगों की भाग पलटेगी । अभी तो सन्निच्चर कोड़ तोड़े बैठा है । किसी को घर है, तो बैल नहीं । किसी के तन पर पूरा बस्तर नहीं । किसी को भरपेट खाने को अन्न नहीं । संत चली गयी । किसानी तो बवाल हो गयी है । बस ढोये जा रहे हैं । क्या करें कुछ चारा भी तो नहीं ।[1]

छब्बूलाल का लड़का देवनाथ डाक्टरी की पढ़ाई पूरी करके गाँव आता है । छब्बूलाल उससे पूछते हैं,

- "क्यों देवनाथ बेटा, तुम्हारी क्या सम्मति है ? " "कस्बे में तो कई डाक्टर हैं पिताजी । वहाँ खोलना तो ठीक भी है, बुरा भी है । नए आदमी के लिए रुपये से अधिक आवश्यकता यश की है । अगर मिल जाये तो पक्के के जमे जमाये दस डाक्टरों के बीच में भी कोई दिक्कत नहीं होती ——— भाग ने साथ दिया तो बाद में कस्बे के बारे में भी सोचेंगे ।"[2]

उपन्यास के सजीव पात्र हैं, खलील मियाँ वे बड़े ही आदर्शवादी हैं । अपने देश, अपनी अपनी भूमि से उन्हें बड़ा ही लगाव है । परन्तु उनका लड़का बदला देश छोड़कर पाकिस्तान चला गया । ऐसी स्थिति में भी खलील मियाँ प्रसन्न होकर गाँव में जीवन निर्वाह करते हैं । विपिन खलील चाचा से कहता है - यह गाँव तो अब वह रहा ही नहीं । जिधर देखता हूँ अजीब कुहराम है । सभी घरे-

---

1. वैतरणी, पृ0 140. 2. वही, पृ0 147.

शान हैं, सभी दुःखी । पता नहीं इस गाँव पर किस ग्रह की छाया पड़ गयी है । किसी के चेहरे पर खुशी दीखती ही नहीं ।"

"हूँ, आइने पर अक्स पड़ता ही है बरखुरदार । जिसके दिल का आईना जितना साफ है, उस पर यह खौफनाक छाया उतनी ही घनी पड़ेगी, इसमें शक नहीं। पर तुम चाहो भी तो क्या इसे बदल सकते हो ?"

"अब तुमको मैं अपने बारे में ही बताऊँ तो तुम यकीन नहीं करोगे । कौन मानेगा कि कुल बारह साल के भीतरही एक हँसता - चहकता चमन एकदम वीरान हो गया ।"[1]

खलील मियाँ अपने बच्चों से अत्यधिक दुःखी होकर विपिन से कहते हैं,

- मगर भाई, मैं तो साफगो हूँ । जब वर्दी को इफरात था, तब भी सच ही कहा और आज जब फटेहाल हूँ तब भी सच ही कहूँगा । ईमान के अलावा और क्या है इस खलील के पास ।"[2]

गाँव के सम्मानित लोगों में जग्गन मिसिर भी एक हैं जो इस गाँव में अपनी बेवा भाभी के साथ रहते हैं । उनके संबंध में भी लोग तरह-तरह की बातें कहाने से बाज नहीं आते । अभी कुछ दिनों पहले ही उनके भाई की मृत्यु हुई । अब मिसिर की शादी के लिये देखनहरू आने लगे हैं । मिसराइन मन ही मन सोचने लगती है,

- "किस्मत भी क्या - क्या खेल करती है । एक ही उमर के दो आदमियों में से एक अपना दाँव खेलकर सब कुछ हारकर अँधेरे में बैठ गया और दूसरा अपना दाँव खेलने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है । आज नहीं तो कल वह भी दाँव पर लग ही जायेगा ।"[3]

---

1. वैतरणी, पृ0 239.
2. वही, पृ0 241.
3. वही, पृ0 266.

जग्गन मिसिर और मिसराइन को लेकर एक रात अनजाने में जो घटना घटी उसके लिये वे दोनों ही अपने को अपराधी ठहराते हैं।

- "जग्गन आज जब उस रात के बारे में सोचते हैं तो एक अजब कसूरी हँसी उनके अधरों पर छा जाती है। न चाहते हुए भी नियति में विश्वास करना ही पड़ता है।"[1]

स्वप्न दृष्टा शशिकांत मास्टर गाँव के बच्चों को सुधारने के उपक्रम में लांछन और पीड़ा का शिकार होता है,

-"किसी को मदद की जरूरत हो, वह अपने को निःसंकोच समर्पित कर सकता है। -------- मगर आदमी को आज शायद इन सबकी जरूरत नहीं। जरूरत है एक ऐसे हाड़-मांस के यंत्र की, जो दिल और दिमाग न रखता हो जो दूसरों की हाँ में हाँ मिलाया करे और उनके गन्दे स्वार्थों का साधन बन जाए। हमारे जैसे लोगों की यही नियति है।"[2]

शशिकांत के साथ एक ऐसी अप्रत्याशित घटना घटी, जिससे दुखी होकर गाँव छोड़कर चल देता है। "शशिकांत गहरी अन्तर्व्यथा से अभिभूत होकर बोला - "यह सब तकदीर का खेल है और क्या कहूँ। जाने कितनी जगहों में काम किया, मगर ऐसी हालत कहीं नहीं हुई। मेरा माथा तो शरम से झुक गया।"[3]

इस उपन्यास में पटनहियाँ भाभी नियति के हाथों, अपने जीवन की नौका, समय के बहाव के साथ सौंप देती हैं। एक सुन्दर स्वस्थ्य पटना की लड़की की शादी बंशी सिंह के पुत्र बच्चू से बड़े धूम-धाम से होती है। लड़के में पुरुषत्व न था।

---

1. अलग-अलग वैतरणी, पृ0 279.
2. वही, पृ0 465.
3. वही, पृ0 471.

कल्पू इस हीनता के कारण कटा-कटा रहता है, और चिंताग्रस्त रहने के कारण बीमार पड़ गया । सास का एक नया प्रहार था, आरोप लगाया कि बहू में ही नारीत्व की कमी है ।

-"वैसे समय वंशी की काकी के मुंह से दुलहिन के खिलाफ उसके नारी न होने के प्रमाण में, हजारों बातें धारा-प्रवाह फूट निकलती । हमजोली औरतों या फिर ननदों आदि के द्वारा ये बातें किसी न किसी प्रकार & रंग रचकर दुलहिन के पास जरूर पहुँचतीं । इन्हें सुनकर एक बार को दुलहिन के शरीर में अँगूठे से चोटी तक आग लग जाती ।"[1]

घंटों अकेले शीशे के सामने बंद कमरे में अपने नग्न शरीर को देखती रहती । जब पूर्ण रूप से अपने नारीत्व से आश्वस्त हो जाती तो परिस्थिति के साथ समझौता कर लेती है ।

-"वह दिन भर घर के कामों में लगी रहती या फिर खाली हुई तो मुहल्ले की लड़कियों को बटोरकर उनकी बाल-चोटी किया करती । वंशी की काकी बहू के इस रूप परिवर्तन से खुश ही हुई । उन्हें खुद बहू-बेटे के मामले पर ज्यादा सोचना कष्टकारक लगता । जो होगा, सो होगा । अब मैं क्या करूँ । जो करम में लिखा होगा उसका मेटनहार कोई नहीं है ।"[2]

कल्पू बीमार रहने लगा और उसके हीनता से ग्रस्त जीवन का अंत भी हो गया ।

उपन्यास की एक अन्य सशक्त नारी पात्र पुष्पा, धरमू सिंह की बेटी है । विपिन पुष्पा को बहुत चाहता है पर परिस्थितिवश दोनों की शादी नहीं हो

पाती । पुष्पा की शादी, गरीबी के कारण उसके किसी रिश्तेदार से हो जाती है जो दुहाजू है । इस संबंध में पुष्पा की माँ से उसके भाई द्वारा यह पूछने पर,

- तुमको इ रिश्ता पसंद नहीं है ? पधिया उन्हें थकी-थकी सी देखती रहतीं - "पसंद-पसंद का सवाल क्या है भइया । किसी तरह निस्तार हो जाय यही बहुत है । जिसके भाग में जो रहता है वही मिलता है ।"[1]

विपिन को पश्चाताप होता है ।

-"तुमसे कुछ नहीं हो पायेगा । तुम अपने ही बनाये जाल में उलझी मकड़ी की तरह छटपटाते रहोगे और चारों तरफ से कटकर उसी में कैद होकर मिथ्या शान्ति पाने का नाटक करते रहोगे । यही तुम्हारी नियति है ।"[2]

अलग अलग वैतरणी में करैता गाँव से लौटते समय विपिन मिसिर बाबा से पूछता है कि क्या पहले भी लोग इसी तरह भागते थे । तब मिसिर बाबा गाँव के दुर्भाग्य को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं,

"हाँ भाई जाते थे । अक्सर वे जिन्हें यहाँ काम नहीं मिलता था या फिर वे जमींदारों के जोर जुलुम से घबराकर भाग जाते थे । पर अब तो एक नई तरह का असत गौन हो रहा है । यहाँ रहते वे हैं जो यहाँ रहना नहीं चाहते, पर कहीं जा नहीं पाते, यहाँ से जाते अब वे हैं, जो यहाँ रहना चाहते हैं पर रह नहीं पाते ।"[3]

उपन्यास का मुख्य पात्र विपिन, यद्यपि वह परिस्थितियों की विषमताओं से कहीं सीधे नहीं टकराता और न उसमें संघर्षों से साक्षात्कार करने की क्षमता ही

---

1. अलग-अलग वैतरणी, पृ० 487.

2. वही, पृ० 490.

3. वही, पृ० 675.

है । पर वह जीवन की त्रासदी को बराबर रेखांकित करता हुआ आज की वेदना को घनीभूत बनाता है ।[1] यह इस उपन्यास की कम महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं है ।

कथानायक पराजित होकर वर्तमान प्रवाह में अपने को असहाय छोड़ देता है । वह स्वीकार कर लेता है, वर्तमान स्थिति के पाटों में पिसना ही समाज की नियति है ।[2]

ग. "व्यक्ति बनाम समाज"

1. मानस का हंस

– अमृत लाल नागर

उपन्यास मानस का हंस जो एक तरह से तुलसी चरित है, में तुलसी को चमत्कारिक साधु अथवा कपोल कल्पित जन धारणाओं के विपरीत एक सहज मनुष्य के रूप में चित्रित किया गया है । तुलसी एक साधारण मनुष्य जैसे जन्म से ही नियति चक्र में आकंठ डूबे लगते हैं । वास्तव में यह उपन्यास मनुष्य के नियति को मानते हुए भी उससे संघर्ष की गाथा है ।

रत्नावली का अंतिम संस्कार करते हुए कुछ लोगों के कटुवचन तुलसी के कानों में पड़ते हैं । राम भक्ति में लीन जीवन के अंतिम चरण में पहुँचने पर भी गोस्वामी जी नियति चक्र से उत्पीड़ित हो कहते हैं – "हे प्रभु, तुम्हारी यह माया ऐसी है कि जन्म-भर जप-तप साधन करते-करते पच मरो तब भी इससे पार पाना उस समय तक महा कठिन है जब तक कि तुम्हारी ही पूर्ण कृपा न हो । सुनता हूँ, विचारता हूँ, समझता भी हूँ यहाँ तक कि अब तो दूसरों को विस्तार से समझा भी लेता हूँ पर

---

1. डा० सुरेश सिनहा, हिन्दी उपन्यास, पृ० 366.
2. डा० रमाकान्त श्रीवास्तव, व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के संदर्भ में,

मौके पर यह सारा किया-धरा-चौपट हो जाता है। -------- अगले शुक्ल पक्ष की सप्तमी को आयु के नब्बे वर्ष पूरे हो जायेंगे। अब भला मैं और कितने दिन जिऊंगा जो तुम मुझे आशा-निराशा की चकरघिन्नी में नचाते ही चले जाते हो। दया करो राम, अब तो दया कर ही दो।"[1]

जनमते ही भाग्य ने तुलसीदास के साथ खिलवाड़ प्रारम्भ कर दिया था - "घर, गाँव, जन्मभूमि, यह शब्द बाबा के मन में तीन फाँसों से चुभे, व्यंग फूटा, हंसी आई, कहा - "घर घरैतिन के साथ गया। गाँव तुम्हारे नाम से बसता है और रही जन्मभूमि -------- वह तो सूकर खेत में है भाई -------- यहाँ से तो कुटिल कीट की तरह माता-पिता ने मुझे जन्मते ही निकाल फेंका था।"[2]

> तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मात पिताहूँ।
> काहे को रोष दोष काहि धों मेरे ही,
> अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाहूँ।-----[3]

तुलसीदास भाग्यवादी होकर भी जीवन भर भाग्य से प्रतिक्षण संघर्षरत रहे "रामभद्र जानें। सब कुछ उन्हीं की इच्छा से होता है। किन्तु हमारे जीवन-वृत्त में धारा ही क्या है। जन्म-काल से लेकर अब तक केवल अपार दुख-दुर्भाग्य ही मेरे साथ रहा। लोक में कहीं ठौर-ठिकाना न मिला, परलोक की जानता नहीं। मेरे जीवन में जो सारतत्व है वह केवल राम-नाम ही है।"[4]

मानो नियति ने जन्म लेते ही तुलसी के ललाट पर पीड़ा लिख दी। वह

---

1. अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृ0 20.
2. वही, पृ0 21.
3. वही, पृ0 24.
4. वही, पृ0 25-26.

प्रारम्भ से ही भाग्य-अभाग्य के जाल में उलझ गये । आत्माराम ने उसे एक बार देखा फिर मुंह घुमाकर दूसरी ओर देखते हुए कहा - "उस अभागे को गांव से बाहर फेंक आव मुनिया ।" -------- जमना पार हमारी सास रहती है । आप कहो तो उनकी --------" "जौन उचित समझ वही कर । हम तुझे चांदी के पांच सिक्के देंगे । अपनी सास को दे देना । जा, उसकी महतारी की मिट्टी उठने से पहले ही उस अभागे को दूर ले जा, जिससे उसकी पाप छाया अब किसी को न छू पावे।"[1]

अपनी आश्रयदाता पार्वती अम्मा के साथ भिक्षा पर आश्रित बालक तुलसी का जीवन बड़ा ही संघर्षपूर्ण रहा । मातृ-पितृहीन गृह-हीन अभिशाप्त जीवन । "चार-पांच वर्ष का नन्हा-सा बालक कंधे पर धोती लटकाए आंधी-पानी में बढ़ा चला जा रहा है । -------- सहसा देर से कड़कड़ा रही बिजली बच्चे से दो-तीन सौ कदम दूर एक पेड़ पर गिरी । बच्चा भय के मारे दौड़ने लगता है और चार-पांच कदम के बाद ही फिसल के गिर पड़ता है । झोली का अन्न बिखर जाता है । बच्चा उठता है । हवा-पानी कीचड़ उसे उठने नहीं दे रहे हैं । झोली की टोह लेता है, वह कुछ दूर पर छितरी पड़ी है । उसकी बड़ी मेहनत की कमाई, दिन-भर की भूख का सहारा पानी में बहा जा रहा है । --------'हाय-हाय हाय' बिलखता हुआ फिर सरक-सरककर तेजी से अपनी झोली के पास जाता है और उसे उठाकर झटपट कंधे पर टांगता है । -------- घर बहुत दूर नहीं । पर घर है कहां ?"[2]

'रामू और बेनीमाधव जी उन्हें सहारा देकर उठाने के लिये झुके, सरककर आगे आते हुए बाबा ने हंसकर कहा - "अरे बेटा, बालपने में तो हम ऐसी झोपड़ी में रहे हैं कि पानी नहावे और धूप तपावे । हमारी पार्वती अम्मा कहें कि जिसके

---

1. अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृ0 38.

2. वही, पृ0 46-47.

रामजी तपस्या कराते हैं उसे ऐसा ही मजा देते हैं ।"[1]

"अभागे का करम खाता क्या कभी सरलता से चुकता है ? बिना किसी औषधि के, बिना खाये-पिए, राम-राम करती वे फिर चंगी हो गईं । मेरे ब्राह्मण संतान होने और मेरे दुर्भाग्य की बातें सुना-सुनाकर वे मेरे प्रति सहानुभूति जगाया करती थीं ।"[2]

-"पार्वती अम्मां सच ही कहती थीं कि जिससे राम जी तपस्या कराते हैं उसे ही दुख-दुर्भाग्य के अथाह समुद्र में भयंकर क्रूर तिमि-तिमिंगलों के बीच में छोड़ देते हैं । उनसे अपनी रक्षा करना ही अभागे की तपस्या कहलाती है ।"[3]

जन्म से ही नियति के शिकार होने के बाद भी पार्वती अम्मां, बाबा नरहरिदास, शेष सनातन आदि कई सहारों के मिलने व स्वयं के संकल्प से तुलसीदास उबर सके । उपन्यास में कई स्थानों पर कलयुग को नियति का साधन बनाकर प्रस्तुत किया गया है,

-"कुछ समझ में नहीं पड़ता है महराज, क्या होगा ? जिस बब्बरशाह ने जन्मभूमि को नष्ट-भ्रष्ट किया उनही का बेटा आज दण्ड पा रहा है । हार के भागा बिचारा । अब यह पठान क्या करेंगे सो कौन जाने ।"

"राम करे सो होये, कलिकाल है भाई ।"[4]

"गाड़ी पर बैठे हुए बाबा गम्भीर भाव से कहीं अदृश्य में देख रहे थे ।

---

1. अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृ0 46.

2. वही, पृ0 50-51.

3. वही, पृ0 56.

4. वही, पृ0 73.

भगतजी बोले - हमार तो जनम बीत गवा इहै सब कलिकाल के अत्याचारन का देखत-देखत । मनई के प्राणन का मानो कौनो मूल्य नाहीं रहा ।"[1]

नियति अपना स्वरूप यथार्थ के माध्यम से ही प्रदर्शित करती है "तुलसी अपने यथार्थ बोध में आ गए और तेजी से सीढ़ियां उतरकर ड्योढ़ी-फाटक पार कर बाहर निकल आए ।

मोहिनीबाई के घर से निकलते समय तुलसी का बावला मन कह रहा था - 'अब यह जीवन निःसार है । यह अपमान असह्य है, अब नहीं जीऊंगा ।' 'आंखें पोंछते, किन्तु वे फिर भर उठती थीं - 'डूब मर रामबोला, डूब मर । तू सचमुच अभागा है । डूब मर । तुझे गंगा की शरण देंगी और कोई नहीं ।"[2]

बादाम छीलने वाला व्यक्ति बोला - "राम जी जिस-तिस को अपनी भक्ति भी नहीं देते हैं भैया । जो ऐसा होता तो सब कोई हमारे गुसाईं बाबा की तरह से न हो जाते । क्या हम कुछ झूठ कहा बाबा ?" -------- बाबा बोले - "राम तो सब पर कृपा करते हैं देवतादीन । हानि-लाभ, जीवन-मरण, जस-अप-जस विधि हाथ । अपने प्रतिफलन के लिए पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्मों का भी हमारे इस जीवन के कर्म में प्रकट आकर्षण होता है । यही तो माया है । इस माया का विषैला तीर एक-न-एक बार सभी को लगता है ।[3]

भगत जी ने तुलसी से कहा - होतव्यता होकर ही रहती है । भाई, जो दुख झेलना बदा है, वह तो झेलना ही पड़ेगा । हम सोचते है कि यदि उससे बच जाते तो अच्छा था ।" "मुझे अपने मन से इतना बच-बचके चलना पड़ रहा है कि सतर्कता से छूटने टेकने लगा हूं । बाहर का संघर्ष और कुछ नहीं तो मन को तगड़ा ही करेगा ।"

---

1. अमृत लाल नागर, मानस का हंस, पृ0 90.
2. वही, पृ0 137.
3. वही, पृ0 158.

अपने भाग्य से बंधे तुलसीदास, मोहिनी, राजकुंवरी से भागने के बाद भी रत्नावली से अंततः बंध ही गए और वही उनकी रामप्राप्ति की साधन भी बनी। तुलसीदास ने जीवन भर कष्टों से लड़ने में ही व्यतीत किया और फिर भी अपने भाग्य से लड़कर अंततः उस पर विजय प्राप्त की। जब उन्होंने अंतिम बार सुखों से पलायन किया।

"सारी रात बीत गई, तुलसी के न पैर थके और न मन। ऐसा लगता था कि घर और घर वालों की पकड़ाई से दूर होने के लिए वे पृथ्वी के दूसरे छोर तक चलते ही चले जाएंगे। -------- तुलसीदास को अपने ऊपर दया आई। उन्हें लगा कि बचपन से लेकर अब तक केवल कष्ट ही कष्ट सहा है। जेठ की चिलचिलाती धूप सा उनका दुर्भाग्य उन्हें तपाता ही रहा है। कहीं भी तो छांव नहीं मिली और जो मिली वह भी इतने कम समय तक ही सुलभ रही कि उन्हें ऐहिक सुख की तृप्ति का अनुभव न हो पाया। -------- अपने हाथों से अपने पैर दबाते हुए तुलसीदास की आंखों में आंसू आ गए।"[1]

तुलसी ने अपनी नियति को गरीब जनता से जोड़कर समस्याओं का निराकरण करना चाहा। "फटे हाल, काल की कठोर मार से पिटे हुए चेहरों वालों की सैकड़ों करुण आंखें इधर-उधर हर गली-कूचे में, हर द्वार पर आशा की एक बुझी सी चमक लिए हुए हर समय दिखाई पड़ा करती है। -------- तुलसीदास दर्द से छलकती आंखों से यत्र-तत्र यह सारे दृश्य देख रहे हैं। एक जनेऊधारी फटेहाल ब्राह्मण ने अपनी रोटी खा लेने के बाद सामने पंगत में बैठे हुए एक डोम की अधखाई रोटी को लालच-भरी दृष्टि से ताका और सयाने कौवे की तरह घात लगाकर वह उसकी रोटी उसके हाथ से छीनकर ले भागा।"

---

1. मानस का हंस, पृ0 255.

तुलसीदास 'हे राम' । कहकर रो पड़े ।'[1]

"इसी रचना से तो मुझे मानस-रचना की स्फूर्ति मिली थी । महर्षि वाल्मीकि ने क्रौंचमिथुन का वध देखकर अपने उर अंतर में जो करुणा का स्रोत पाया था वह राम जी ने असंख्य निरीह जन की यातनाएं दिखा-दिखाकर मेरे मन में फोड़ दिया ।"[2]

असह्य पीड़ाओं को अंगीकार करके भी तुलसीदास नियति से पिटे पराजित लोगों की लड़ाई जीवन पर्यन्त लड़ते रहे । राम नाम का प्रचार करके उन्होंने सत्य के प्रति लोगों की उदासीनता को स्फूर्त किया । किन्तु तुलसीदास नियति से जीत कर भी उसका सम्मान करते हैं -

"देखो नियति भी कैसा खेल खेलती है । हम चाहते थे कि काशी में अपनी कथा प्रारम्भ करने से पहले वहाँ के पण्डित समाज में एक बार अपना सिक्का जमा लें तो उसका परिणाम शुभ होगा । परन्तु प्रभु की वैसी इच्छा न थी ।"

'मानस का हंस' में संघर्ष और तनाव व्यक्ति और समाज दोनों स्तरों पर आज का यथार्थ है । व्यक्ति के स्तर पर वह मानसिक संघर्ष है, अन्तर्द्वन्द्व है यानी अपने से अपनी ही लड़ाई है । और सामाजिक स्तर पर वह जड़ समाज से प्रबुद्ध व्यक्ति की । एक वर्ग से दूसरे वर्ग की परम्परा से प्रगति की, असत्य से सत्य की लड़ाई है । मानस का हंस तत्कालीन परिवेश के जीवन्त चित्रण के माध्यम से आज के परिवेश को भी उजागर करता है ।"[3]

---

1. मानस का हंस, पृ0 289.

2. वही, पृ0 292.

3. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ0 218-219

2. दिव्या

- यशपाल

स्वयं लेखक यशपाल के शब्दों में दिव्या इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना मात्र है। दिव्या सागल के धर्मस्थ की पौत्री है जो एक कुलीन घर की स्त्री होकर भी नियति के बाहुपाश में जकड़कर पहले दासी फिर वेश्या का जीवन बिताने के लिए बाध्य हो जाती है।

दास वर्ग से आया हुआ योद्धा पृथुसेन अपने भाग्य को विजित करता है। ऐसे पराक्रमी लोग भी किसी कार्य की असफलता के विषय में सोचकर उद्विग्न हो जाते हैं - 'दिव्या मैं मृत्यु से भय नहीं मानता -------- मृत्यु क्या है ? अस्तित्व का अन्त। जिसका अस्तित्व नहीं, जिसे अनुभूति नहीं, वह भय भी अनुभव नहीं कर सकता। भय है जीवित रहकर पीड़ा और पराभव सहने में, भय है जीवन भर की पीड़ा और पराभव से। तुम्हें अंक में लेकर समाप्त हो जाने से कौन इच्छा अपूर्ण रह जायगी ? फिर उसमें भय क्या ? वह सुखद अस्तित्व का सुखद अन्त है परन्तु मैं युद्ध में पराक्रान्त होकर, पराभूत होकर जीवन भर तिल-तिल कर मरने की कल्पना सहन नहीं कर सकता। जीवन की सार्थकता अधिकार और सामर्थ्य में ही है।'[1]

वह दास और सामन्तों के बीच भयंकर वर्ग भेद का युग था, और एक बार दास वृत्ति से घिर जाने के उपरांत व्यक्ति इसे ही अपना भाग्य मानने लगता था। ऐसे ही एक दास को सम्बोधित करता हुआ मारिश बोला - "तुम भी मूर्ख हो। तुम समझते हो, सेवा करने के लिए ही तुम्हारा जन्म हुआ है, यही तुम्हारा भाग्य है। दूसरे के स्वार्थसाधन के लिये तुम मनुष्य नहीं बने हो। उस कार्य के लिये पशु हैं। अपने लिये लड़ो। सामन्त और आचार्य अपने लिये लड़ते हैं, तुम अपने लिये लड़ो। अपने अन्न के लिये, अपने वस्त्र के लिये, अपने श्रेय के लिये। उस स्त्री के

---

1. यशपाल, दिव्या, पृ० 52.

लिये जिसे अंक में लेकर सुख पाते हो, उस सन्तान के लिये जिसमें अपने आप को जीवित पाते हो । मरना तो है ही, अपने मनुष्यत्व और अधिकार के लिये मरो -------- तुम सामन्तों के राज्य में आधे मनुष्य हो, पूर्ण मनुष्य बनने का यत्न करो -------- जो मारता है, वह सबल है, जो भय करता है, निर्बल है ।"[1]

मनुष्य जब भवितव्य के आगे विवश हो जाता है तब वह इसे किसी उच्च-स्तरीय शक्ति, किसी अतिमानवीय, प्रतीक का सहारा लेकर अपनी बात कहता है- "मित्र, मनुष्य देवताओं की इच्छा का दास है । देवता अपने प्रयोजन से मनुष्य की मति से परे कार्य करता है । शूद्र के आदर के लिये ब्राह्मण को निर्वासन का यह दण्ड ही मद्र की मुक्ति का सूत्र होगा ।" -------- जिस दिन तुम स्वयं म्लेच्छ-मर्दिनी अथवा शिनी के सम्मुख वर्णाश्रम की ध्वजा धारण कर लौटोगे, उस दिन मद्र के सम्पूर्ण म्लेच्छ और अहंकारी शूद्र यज्ञ के लिये बलि पशु बनकर अपने अपराध का मार्जन करेंगे ।"[2]

नारी की विवशताओं का चित्रण दिव्या में अत्यंत मार्मिक है जो आज के संदर्भ में भी उपयुक्त है । अपने आस-पास के सभी पुरुषों से दुःख पाकर दिव्या, उसे ही नारी का भाग्य स्वीकार कर लेती है - दिव्या ने पूछा, "किस से भय है ? -------- भय किससे नहीं है ? मातामह वृक से भय है ? पृथुसेन से भय नहीं किया था, क्या हुआ । वृक से भय किस कारण ? नारी है क्या ? मातामह वृक ठीक ही कहता है, अम्मा । कठोर, धीर, रुद्रधीर, कोमल पृथुसेन अभद्र मारिश और मातामह वृक, नारी के लिये सब समान है । जो भोग्या बनने के लिये उत्पन्न हुयी है, उसके लिये अन्यत्र शरण कहाँ ? उसे सब भोगेंगे ही । भय किससे नहीं ? क्या तात से भय नहीं ? महापितृव्य से भय नहीं ? वे मुझे आर्य रुद्रधीर को देना चाहते थे । मैंने स्वेच्छा से पृथुसेन को आत्मसमर्पण किया, उसका फल यह है ।"[3]

---

1. यशपाल, दिव्या, पृ0 70. 2. वही, पृ0 70.
3. वही, पृ0 106

सुख समृद्धि में पला व्यक्ति नियति की मार से पीड़ित होकर दुखों में भी जीना सीख लेता है - "सौभाग्य हो, वृद्धि हो ।" प्रधान शौल्किक ने भी हंस कर उत्तर दिया, "परन्तु श्रेष्ठी की सौभाग्यवती पत्नी मद्र की शीतल, स्वतंत्र भूमि छोड़कर राजाओं से उत्पीड़ित उष्ण देश में जाकर क्या भाग्यवती होगी ? उस अबोध को राजाओं के उत्पीड़ित देश की अवस्था और वहां की उष्णता का क्या ज्ञान । अस्तु, मनुष्य दैव की लीला का साधन-मात्र है श्रेष्ठी ।"[1]

दिव्या अपने दुर्भाग्य के कारण जीवन भर कष्ट झेलती रही - "मैं अभागी वंचिता हूं । मेरे पितृगृह में सब कुछ था परन्तु मेरे लिये स्थान न रहा । इस अवस्था में मेरा कुल मेरी सहायता नहीं कर सकता । आश्रय की खोज में भटकती तुम्हारे स्वामी के हाथों पड़ गई हूं । अब दैव की जो इच्छा हो ।"[2]

उसने अंशु को संबोधन किया - "भद्रे, इस दूर देश में, इस स्थान पर भद्रे का आना किस प्रकार हुआ ?"

"आर्य, भाग्य से या कर्मफल से ।" अंशु घने मेघ में छायी संध्या के अस्पष्ट प्रकाश में अपने नेत्र मारिश की ओर उठाकर साहस से उत्तर दिया ।

भाग्य और कर्मफल का प्रसंग सुनकर मारिश जैसे विचार-तंद्रा में चुटकी काट ली जाने से व्यग्र हो उठा - "भद्रे, भाग्य और कर्मफल से क्या अभिप्राय ? भाग्य का अर्थ है, मनुष्य की विवशता और कर्मफल का अर्थ है, कष्ट और विवशता के कारण का अज्ञान । भद्रे, इसके अतिरिक्त भाग्य और कर्मफल कुछ नहीं ।"[3]

अपनी नियति से पीड़ित व्यक्ति संवेदनशील व्यक्तियों के लिये उद्विग्नता

---

1. यशपाल, दिव्या, पृ० 120.

2. वही, पृ० 123.

3. वही, पृ० 150.

का कारण बनता है - आर्य मारिश मौन बैठे रहे जैसे वे मेरे दुर्भाग्य से दुखी हैं। मेरे दुर्भाग्य से वे दुखी क्यों है ? शत्रा: रसिक समाज यहाँ रस और विनोद के लिये आता है। उन्हें मेरे उसी अस्तित्व से प्रयोजन है जो उनके सम्मुख रहता है। परन्तु आर्य मारिश प्रकट के पीछे छिपे वास्तविक की उपेक्षा न कर सके।"[1]

उपन्यास में अंशु और मारिश में वाद-विवाद में भाग्य के संदर्भ में रोचक तथ्य उभरते हैं।

कुछ पल प्रश्न का अभिप्राय अवगत करके अंशु ने उत्तर दिया - "आर्य, उचित अनुचित का विचार करके स्वेच्छा से कुछ स्वीकार नहीं किया। यह भाग्य है।"

मारिश सचेत हो गया - "भाग्य ? -------- देवी, भाग्य का अर्थ है विवशता।" "हाँ आर्य, विवशता है।" अंशु ने स्वीकार किया।

"भाग्य का अर्थ है असामर्थ्य।" मारिश पुनः बोला "हाँ आर्य, असामर्थ्य है।" अंशु ने पुनः स्वीकार किया। अंशु की स्वीकृति से मारिश निरुत्तर हो गया। विचार कर पुनः कुछ उत्तेजना से उसने कहा - "असामर्थ्य का अर्थ है प्रयत्न और चेष्टा न करना।" अंशु इस भर्त्सना से अप्रतिभ न हुयी। नीलिमा लिये उसके विशाल नेत्र झुके नहीं - "नहीं आर्य।" उसने उत्तर दिया "प्रयत्न किया और चेष्टा की, सामर्थ्य की सीमा पर्यन्त प्रयत्न किया और असमर्थ होकर असामर्थ्य को स्वीकार किया।"[2]

ज्ञानवान व्यक्ति भाग्य के साथ ही साथ मनुष्य की महत्ता भी कम नहीं होने देता ताकि संघर्ष का उत्साह बना रहे, "मारिश ने अंशु की निराशा से अधिक

---

1. यशपाल, दिव्या, पृ0 153.

2. वही, पृ0 157.

द्रवित होकर आग्रह किया - "भद्रे, ऐसा क्या हो गया ? यह जीवन का एक अंश था । जब तक जीवन है उसमें परिवर्तन और प्रयत्न के लिये अवसर और सम्भावना है ।" अपने आग्रह में बल देने के लिये मारिश ने अंशु के नेत्रों में देख कर कहा - "कुमारी दिव्या, जीवन अनन्त है और मनुष्य की सामर्थ्य भी अनन्त है ।"[1]

रत्नप्रभा ने मारिश के लोकायत सिद्धांत के प्रति जिज्ञासा की - "मित्र, यदि मृत्यु जीवन का पूर्णान्त है, इस लोक और परलोक में किसी दूसरे जन्म अथवा जीवन की आशा नहीं तो इस जीवन के प्रति भी उत्साह व्यर्थ है । यह जीवन तो केवल आकस्मिक घटना मात्र है, कारणरहित, परिणामरहित, हुआ हुआ, न हुआ न हुआ ।"[2]

सागल में होती कला की अवनीति को देखकर राजनर्तकी मल्लिका कहती है- "आर्य, समय का चक्र है अथवा दैव की इच्छा । क्या कहूं सागल का अथवा मेरा दुर्भाग्य । स्वयं मेरी आयु । -------- शरीर के सामर्थ्य की एक सीमा है आर्य। उत्तराधिकारी द्वारा परंपरा की रक्षा करने योग्य किसी शिष्या का न मिलना अतः जन समाज का निरादर । आर्य ज्ञानी है, कला सूक्ष्म भावना द्वारा ही पोषित होती है । वह हीन जन के अधिकार की वस्तु नहीं । अनेक कारणों का संयोग है आर्य । दोष किसे दूं ? भाग्य ही समझिये ।[3]

---

1. यशपाल, दिव्या, पृ0 158.

2. वही, पृ0 161.

3. वही, पृ0 190.

यह पथ बन्धु था

: नरेश मेहता

इतिहास महापुरुषों या अच्छा कहें तो विशिष्ट व्यक्तियों का लेखा अपने पास रखता है । इन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों के बीच नियति से पराजित असफल व्यक्तियों का चित्रण बहुत ही नगण्य होता है । श्री नरेश मेहता ने इस उपन्यास में स्वतंत्रता संघर्ष के काल के एक ऐसे ही भाग्य-पीड़ित व्यक्ति का चित्र उकेरने का आयास किया है ।

अपने जिले मालवा का गौरव बढ़ाने के प्रयोजन से श्रीधर ठाकुर ने इतिहास की एक पुस्तक लिखी । इस पुस्तक से अनायास ही श्रीधर ठाकुर को प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई । नियति हर व्यक्ति को अनुशासित करती रहती है । श्रीधर बाबू को पुस्तक से प्रतिष्ठा तो मिली किन्तु एक समस्या भी सम्मुख आ गई । - "एक दिन चलती क्लास से श्रीधर बाबू को गाडगिल साहब ने बुलवाया और शिक्षा-विभाग के इन्सपेक्टर का पत्र सामने कर दिया । लिखा था कि श्रीधर बाबू ने अपने इतिहास में श्रीमन्त सरकार तथा उनके पुण्य स्मरणीय पितामहों का बारम्बार उल्लेख करते हुए उचित राजकीय संबोधनों एवं पदवियों का प्रयोग नहीं किया, इस कारण राज्य में बड़ा असंतोष फैल गया है । लेखक इस भूल को तत्काल सुधारे तथा एक क्षमा-पत्र श्रीमंत की सेवा में विभाग के मार्फत लिखकर अविलंब भेजे । - श्रीधर बाबू ने बीसियों उदाहरण देकर बताया कि इस प्रकार के विशेषण इतिहासों में नहीं लगाये जाते, इसलिये क्षमा-पत्र का प्रश्न ही नहीं उठता ।"[1]

श्रीधर बाबू किंचित असांसारिक प्रकृति के व्यक्ति थे । कुछ व्यक्ति बहुत बड़ी हस्ती न होते हुए भी ऐसे सिद्धांतों से आबद्ध होते हैं कि संसार के छल-प्रपंच उनके लिये बेकार होते हैं । नियति से क्रमशः पराजित होते रहने पर भी ऐसे दुस्साहसी व्यक्ति अपने सिद्धांतों को अमूल्य निधि की तरह संजोए रहते हैं । यों

1. नरेश मेहता, यह पथ बन्धु था, पृ0 28.

ऐसे साधु बेटे के लिए सदैव चिंतित रहती हैं। - "तेरे लिए तो जैसी पुरानी वैसी नयी। तुझे तो विधाता ने जैसे दुनियादारी के अलावा सब कुछ दिया है। पाती नहीं तुझे ये सब क्यों नहीं समझ में आती ?"[1] सिर से माला छुआकर गोमुखी की तह करते हुए एक गहरे निःश्वास के साथ बोली।

- जाते हुए श्रीधर को देखकर माँ अत्यंत चिन्तित थीं कि इसका क्या होगा ? जैसा यह वैसी इसकी बहू। उसे भी जरा दुनियादारी नहीं आती।[2]

सिद्धांतवादी व्यक्ति जब कठिनाई में पड़ता है तो अपनी असांसारिकता से उत्पन्न मुसीबत की व्यथा को भाग्य के ऊपर आश्रित होकर झेलता है। जबकि व्यक्ति को पता होता है कि उसका पथ ही श्रेष्ठ है, परन्तु फिर भी उसे यह देखकर अतीव कष्ट होता है कि इसके इस पथ में न कोई उसका बंधु है न ही उसे कोई सफलता प्राप्त हो रही है।

- "श्रीधर बाबू सारी बात समझ रहे थे। माता-पिता की चिन्ता भी वह सहज समझते थे। क्षण-भर में सारी वास्तविकता आँखों के आगे कौंध गई। इतना बड़ा परिवार, जिसके वह सदस्य हैं, इस टूटे घर की तरह ही भीगा-टपक रहा था। राम्नीधर में इतनी रात बातें मलती सरस्वती की विवशता भी वह बूझ रहे थे तथा यह भी कि भाभी अपने कमरे में क्यों छप्पर पलंग पर बैठी दाल - चावल का हिसाब लिखाती रहती है, और परेशानी का नाटक आये दिन करती रहती है। ------ क्यों श्रीधर बाबू के बच्चे फटे कपड़े पहने घूमते रहते हैं और दादा-भाभी के बच्चे ------- और वह लगभग चीख पड़े।

---

1. नरेश मेहता, यह पथ बन्धु था, पृ० 34.

2. वही, पृ० 35.

– माँ मेरी चिन्ता न करो । अपना-अपना भाग्य ।[1] कभी जब व्यक्ति अपने संघर्ष कष्ट पाते किसी प्रियजन को देखता है तो उसे बहुत पीड़ा होती है ।

– "इतिहास राजाओं का ही होता है, क्यों ? साधारण जनों का क्या कोई इतिहास नहीं होता ? पानीपत ही की लड़ाई थी और सरो जो एक शस्त्र-हीन लड़ाई लड़ रही है, उसका क्या कोई महत्व नहीं ?"[2]

मूल्यों के लिये जीवित रहने वाले श्रीधर ठाकुर जैसे व्यक्ति समझौता न करके संघर्ष के लिये तत्पर हो जाते हैं । अपनी इतिहास की पुस्तक में संशोधन न करने का परिणाम उन्हें त्यागपत्र के रूप में मिला । नौकरी छूट गई थी अब श्रीधर के सामने कर्म का कंटकाकीर्ण मार्ग प्रशस्त था ।

– "मोह के बन्धन तो स्मृतियों में सालते हैं, तब भला खुली आँखों कोई किसी को जाने दे सकता है ? – तो फिर किसी को नहीं बताया जाए ? क्या ? कि मैं यहाँ से अपने पुरुषार्थ और भाग्य दोनों की परीक्षा के लिए जा रहा हूँ । कहाँ ? भला अभी से इसका निर्णय कैसे किया जा सकता है ।"[3]

श्रीधर ठाकुर नियति के इस खेल पर सर्वाधिक चकित हुए थे जब उन्हें वर्षों पहले बिछुड़ी इन्दू दीदी अपने बनारस प्रवास के काल में मिली । बचपन में जब श्रीधर बालासाहब की बेटी इन्दू दीदी के पास जाया करते । इन्दू उनसे आयु में करीब दस वर्ष बड़ी थीं । श्रीधर ठाकुर की उनसे बहुत अंतरंगता हो गई थी । विवाहोपरांत उसका कोई समाचार नहीं मिला । बस इतना ही ज्ञात हो सका कि वे विधवा हो गई हैं । वही इन्दू दीदी जब श्वेत वस्त्रों में गांभीर्य धारण

---

1. यह पथ बन्धु था, पृ0 35.
2. वही, पृ0 37.
3. वही, पृ0 72.

किये हुए उन्हें मिली, तो वे विश्वास ही न कर सके कि वे वही इन्दु दीदी हैं जो युवावस्था में चहकती फिरती थीं आज नियति से पराजित ऐसी अवस्था में हैं ।

इन्दौर में श्रीधर की भेंट बिमल नामक एक व्यक्ति से हुई । वह कांग्रेस का काम किया करता था परन्तु गुप्त रूप से वह एक क्रांतिकारी था । 'श्रीधर बाबू ने काफी चौंकते हुए पूछा ।

– मतलब यह कि आज जीवन संघर्ष के जिस दौर से आप गुजर रहे हैं और ऐसे अनेक सम्पन्न लोग हैं, जो हर बात में आपसे गये बीते होंगे वे क्यों नहीं ऐसे संघर्ष से गुजरते हैं ? क्या इसलिये कि वे साधन सम्पन्न हैं ? सिर्फ इसलिये ? श्रीधर बाबू ने सम्भवतः आज के पूर्व लोगों को उनकी संपन्नताओं और विपन्नताओं के प्रतिफल के रूप में देखा ही नहीं था ।'[1]

बिमल, इतना संघर्षशील व्यक्ति भी भवितव्य को मानने पर कदाचित विवश हो जाता है "चारों ओर का दबाव या गतिमयता किसी को एक स्थान पर टिकने कहां देती है ? हम जब भी पैर टिकाकर खड़े होने की चेष्टा करते हैं तो भूमि नहीं मिलती, केवल जल होता है और हम धंसते जाते हैं ।"[2]

बिमल बाबू में एक बार एक वेश्या को आत्महत्या करने से बचाया था । बिमल बाबू ने जिसकी रक्षा की उसी वेश्या मालिनी ने उन्हें भूख से बचाया । मालिनी सरीखे लोग अपनी दुर्दशा भाग्य मानकर ही जीवन पर्यन्त सहते रहते हैं और एक भाग्यहीन मनुष्य की हीन भावना उनमें घर कर जाती है, – "आप नहीं जानते कि व्यक्ति किस सीमा पर खड़ा होता है तभी आत्महत्या करता है । – तो आपने मुझे फिर अपनी ही नियति की ओर लौटा दिया ।

---

1. यह पथ बन्धु था, पृ0 92.
2. वही, पृ0 93.

– वही जो प्रत्येक पथभ्रष्टा की होती है। -------- चाहा था कि एक बार प्राण देकर पुनः पथ प्राप्त कर सकूं, लेकिन आप फिर मेरी मुक्ति में आड़े आ गये। -आप जानते हैं, मैं वेश्या हूं, मालिनी।'[1]

– "जाने कितने जन्म के पाप आड़े आते हैं कि कोढ़ी हो जाएं, अंग-अंग गल रहे हों तांस फूल-फूल उठने पर भी हम जीना चाहते हैं। कैसी प्यास है यह जीवन की विशन। घिसटते हुए कुत्ते और मनुष्य में कोई अन्तर नहीं रह जाता। हम निरे ढोंगी हैं। तब हम दुःखी भी वास्तव में नहीं होते। दुःख का ढोंग करते हैं ताकि सामने वाला व्यक्ति हमें अपनी दया के आंचल में ले ले। – अरे मैं जानती थी कि सौन्दर्य का जादू तो अब रहा नहीं, लेकिन वितृष्णा का स्वांग भरना भी व्यर्थ गया। हाय रे भाग्य।"[2]

विशन की क्रांति सहयोगिनी रत्ना जो एक बार श्रीधर को मालिनी के घर मिली थी वह बनारस प्रवास के दौरान पुनः मिली उससे पता चला कि एO जीO जीO काण्ड के समय विशन मारा जा चुका था और वह, गुप्त रूप से बनारस में निवास कर रही थी। रत्ना को प्राणदण्ड दिया गया। इसके पूर्व वह श्रीधर से बहुत ही आत्मिक रूप से बंध चुकी थी :-

– "आज विपदा बने चक्की पीस रहे हैं और जो उन्हें सर्वस्व मानने पर आयी थी, इस समय जाने कहां, कहां --------

और श्रीधर बाबू विक्षुब्ध हो उठे। हाय, वह कैसे अभागे रहे कि जिसके सम्पर्क में आये, वही या तो विरक्त हो गया या न रहा।"[3]

---

1. यह पथ बन्धु था, पृO 108-109.

2. वही, पृO 117-118.

3. वही, पृO 272.

श्रीधर बाबू के वृद्ध माता-पिता ने अपनी पौत्री गुणवन्ती का विवाह बड़े ही उत्साह से किया परन्तु नियति के वशीभूत गुणवन्ती को बहुत कष्ट भोगनेपड़े ।

"अत्यंत पराजित होकर बापू और माँ पैरों से पगड़ी तथा अपनी गुनी को लेकर घर लौटे । रास्ते भर वे सोचते रहे कि ऐसी गुनी को देख, सरो का क्या हाल होगा । अभी कुछ ही महीनों पहले जिस गुनी को सोने से लादकर डोली पर बिठाकर लक्ष्मीरूपा बनाकर उसके ससुराल भेजा था, आज वह अपने घर परित्यक्ता रूप में दोनों पैरों से लंगड़ी बनी, देह पर मारके अनगिन चिन्ह लिये अर्द्ध-विक्षिप्ता सी लौटकर जा रही थी ।"[1]

- "इसके बाद गुनी के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता था । अब तो जो कुछ था, उसे सिवाय रेंग-रेंगकर पार करने के बचा ही क्या था ? सिवाय स्वयं के उसे और कोई घृणा या दया नहीं करता । सरो के लिये वह आज भी वह सबसे लाडली गुनी थी । माँ ने परिस्थितियों से समझौता कर लिया था कि अब इन्हें दो की सेवा करनी है । -------- गुनी यदि अपंग हुई थी तो उसमें उनकी ही अव्यावहारिकता थी, इसलिये जीवन भर अपनी गुनी को अब और लांछित न होने देंगे ।"[2]

- "सहसा सरो की समझ में नहीं आया कि वह ताऊमाँ को क्या समझाए ? क्योंकि कहीं वह स्वयं को इस सारे दुर्भाग्य का कारण मानती है । जब कि ताऊ माँ स्वयं को दोषी गिनती है, वर्ना जब वह बहू बनकर आयी थीं तो सभी ने उनके सौभाग्य से ईर्ष्या की थी कि इतने सम्पन्न ठाकुरघर में वह ब्याही गई थीं । और आज देखते-देखते ठाकुरघर की सम्पन्नता दो नालियों में बहकर चली गयी है तथा मूल स्रोतस्थान में न केवल कीचड़ ही रह गई थी, बल्कि घिनौनी दुर्गन्ध आने लगी थी ।"[3]

---

1. यह पथ बन्धु था, पृ0 244.   2. वही, पृ0 245.
3. वही, पृ0 248.

जब व्यक्ति नियति से पराजित होकर अपने अतीत के बारे में सोचता है तो वह उसके सर्वाधिक दुःख का क्षण होता है ।

- "वह सोच रही थीं कि क्या फिर कभी वे लोग वैसे ही युवा पति-पत्नी नहीं हो सकते ? कैसे जल्दी सब बीत गया न ? जैसे वह किसी प्रपात के ऊपर खड़ी थी कि पैर तक भीगे नहीं और मानों पानी टूट-टूटकर शब्द करता हुआ जाने कहाँ चला गया ? चले गये उन दिनों की हंस-बोलियाँ जाने कहाँ, उन जलों के साथ चली गयी है । जल चला गया था और वे दोनों, सूखी बालू पर खिंची दो वृद्ध रेखाओं से रह गए थे ।"[1]

श्रीधर ठाकुर ने कुछ दिनों शंखनाद का संपादन कर अपनी वर्षों की आकांक्षा पूरी कर ली । शंखनाद ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । श्रीधर बाबू दस साल के लिए जेल चले गये । वापस जब मालवा लौटे माँ-पिता दोनों स्वर्ग सिधार चुके थे। सुशीला का विवाह हो गया था । उसके आने के बाद सरस्वती का भी देहान्त हो गया और गुणवन्ती अपने नाना के यहाँ चली गई । बेटा देवव्रत वहाँ पहले से ही था, श्रीधर बाबू अकेले रह गये ।

किसी ने कहा है हमारा जीवन एक डायरी के मानिन्द है जिस पर हम मनचाहा लिखना चाहते हैं पर नियति कुछ और लिखवा देती है । हमारे कष्टतम क्षण वे होते हैं जब हम जो लिखना चाहते और जो लिखा गया है, उसकी तुलना करते हैं,

- "उनका पुरुषार्थ दीमक खायी पुस्तक था । आज उसका कोई मूल्य नहीं था । बड़े भाई ने परिवार की अवमानना की । उनकी पत्नी को चरित्रहीन कहा क्योंकि वह किसी से कुछ भी बताकर नहीं गये थे । उस पर उन्होंने क्या अर्जित

---

1. यह पथ बन्धु था, पृ० 25।

किया ? यह टूटा घर ? पानी उलचती दीवारें पत्नी की मृत्यु, मुन्नी की अपंगता और ------- आज की यह असमाप्त लगने वाली भाद्रपद की रात ? वह चीख पड़े - सब व्यर्थ गया श्रीधर । सब व्यर्थ गया ।"[1]

और तरो की मृत्यु के बाद श्रीधर बाबू के मन में "हर बार यह प्रश्न उठता कि वह किस मुँह से रोयें । उन्हें दुख नहीं, परिताप था, पश्चाताप था । अपने असफल होने पर नहीं अपमानित होने पर । उन्होंने प्रत्येक बार समुद्र की रत्नाकरी सीमाओं में प्रवेश करने की भरसक चेष्टा की, लेकिन कोई न कोई ज्वार उनके सारे कर्म को नगण्य सि.. कर हर बार किनारे पर ला पटक देता ।[2]

इतना पराजित आदमी भी अपने मनोबल द्वारा संघर्ष के लिये तत्पर हो ही जाता है और यही मानवता के विकास का रहस्य है :-

"अकेली लालटेन और भाद्रपद की मूसलाधार वृष्टि, तेज हवा दीवारों से होकर बह आया हुआ चारों ओर का जल प्रतिहत था - वह लिख रहे थे ।"[3]

घ. "व्यक्ति बनाम व्यक्तिमन"

1. त्यागपत्र

- जैनेन्द्र कुमार

'त्यागपत्र एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो जीवन भर पराजित होने के बाद भी अपना विजय बोध मरने नहीं देती । भाग्य से हारती है और उस हार को वहन करती है । उसके भतीजे का प्रेम ही उसे नियति से संघर्ष की प्रेरणा देता है ।

---

1. यह पथ बन्धु था, पृ0 322.
2. वही, पृ0 322.
3. वही, पृ0 323.

मनुष्य स्वप्न देखता है कभी यथार्थ रूप लेते हैं परन्तु यदा-कदा नियति चक्र में पिस भी जाते हैं। मृणाल ।बुआ। एक स्वच्छंद जीवन की अभिलाषिनी थी परन्तु वह उत्तरोत्तर पिंजरे में फंसती ही गई - "मैं नहीं बुआ होना चाहती। बुआ। छी:। देख चिड़िया कितनी ऊँची उड़ जाती है। मैं चिड़िया होना चाहती हूं।" -------- उसके छोटे-छोटे पंख होते हैं। पंख खोल वह आसमान में जिधर चाहे उड़ जाती है। क्यों रे कैसी मौज है। नन्हीं-सी चिड़िया नहीं-सी पूंछ। मैं चिड़िया बनना चाहती हूं।"[1]

अपने भाग्य के आगे मृणाल को अक्सर झुकना पड़ा। पराजित होते होते ही मनुष्य लड़ना सीखता है। प्रारम्भ में तो मृणाल सारी परिस्थितियों को अपना दुर्भाग्य समझकर सहती चली गई। बुआ बोली - "प्रमोद, तेरी बुआ तो मर गई। तू उसे अब कभी याद मत करियो। कैसा राजा भइया है हमारा।"[2]

यह कथा बुआ के लाडले भतीजे ।प्रमोद। द्वारा कही गई है जो जीविका और गृहस्थ जीवन में व्यस्त होने के बाद बुआ के प्रति उदासीन हो जाते हैं और बुआ यानि कि कथा की नायिका मृणाल जीवन संग्राम में अकेली योद्धा रह जाती है। उसके पास युद्ध की प्रेरणा देने वाला भतीजे का प्रेम भी नहीं रहता।

मृणाल को अपने जीवन में कई बार भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में प्रताड़ित होना पड़ता है। पहली बार जब बुआ ससुराल से प्रताड़ित होकर घर आयी - "मैं चाहता था कि बुआ मुझसे बातें करें। जैसे पहले सुख-दुख की बातें करती थीं वैसे अब भी बतायें कि जिस ससुराल से वह आई हैं वहां उनका क्या हाल रहा। चेहरे का रंग उतरा सा क्यों है? अनमनापन क्यों आजकल उनकी तबीयत में रहता है? बुआ, मैं वही प्रमोद हूं। देखो, मैं अब बच्चा नहीं हूं, तुम बताकर देखो तो, मैं तुम्हारा सब दुख समझ लूंगा। मैं बालक नहीं हूं बुआ, जो तुम्हें दुख देता है,

1. जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, त्यागपत्र, पृ0 10.
2. वही, पृ0 13.

उसकी मैं अच्छी तरह खबर ले सकता हूं। -------- बुआ मेरी, इस प्रमोद को अपने मन का कुछ हाल नहीं बतलाओगी ?"[1]

'ज्यों-ज्यों ससुराल जाने का दिन आता उनकी निगाह कुछ बन्धती सी जाती थी। जहाँ देखतीं, देखती रह जाती थी। जैसे सामने उन्हें कुछ नहीं दीखता। सब भाग्य दीखता है और वह भाग्य चीन्हा नहीं जाता है।'[2]

बाबू जी ने बुआ को समझाया - "थोड़ी बहुत रगड़-झगड़ होती ही है। पर पति के घर के अलावा स्त्री को और क्या आसरा है ? यह झूठ नहीं है मृणाल कि पत्नी का धर्म पति है। घर पति-गृह है। उसका धर्म, कर्म और उसका मोक्ष भी वही है।"[3]

- "बहुत कुछ जो इस दुनिया में हो रहा है वह वैसा ही क्यों होता है, अन्यथा क्यों नहीं होता - इसका क्या उत्तर है ? उत्तर को अथवा न हो, पर जान पड़ता है भवितव्य ही होता है। नियति का लेख बंधा है। एक भी अक्षर उसका यहां से वहां न हो सकेगा। वह बदलता नहीं, बदलेगा नहीं। पर विधि का वह अतर्क्य लेख किस विधाता ने बनाया है, उसका उसमें क्या प्रयोजन है - यह भी कभी पूछकर जानने की इच्छा की जा सकती है या नहीं ?"[4]

भाग्य-दुर्भाग्य के तूफान के बीच फंसा मनुष्य अपने को पूर्वजन्म, कर्मफल आदि की दिलासा देकर संतुष्ट करता है। स्वयं प्रमोद के शब्दों में -

"कहो कि जो है, कर्मफल है। मैं अपनी व्यर्थ प्रतिष्ठा के दूह पर बैठा

---

1. जैनेन्द्र कुमार, त्यागपत्र, पृ0 14.
2. वही, पृ0 18.
3. वही, पृ0 25.
4. वही, पृ0 36.

हूँ, वह कृत्रिम है क्षणिक है । हृदय वहां कहां है ? यश वहां कहां है ? लेकिन वही सब कुछ मुझे ऊंचा उठाए हुए है । नामी वकील रहा, अब जज हूं । लोगों को जेल-फांसी देता हूं, समाज में माननीय हूं । इस सबके समाधान में चलो यही कहो कि कर्मफल है । लेकिन सच पूछो तो मेरा जी जानता है कि वह कैसे कर्मों का फल है ।[1] कामयाब वकालत और इस जजी के इतने मोटे शरीर में क्या राई जितनी भी आत्मा है ।

– "लेकिन मैं नहीं जानता । स्वर्ग नरक मैं नहीं जानता । विधाता के विधान को मैं नहीं जानता । बस इतना जानता हूँ कि मैं हृदय-हीन न हो सका होता तो आज कामयाब वकील बनने के बाद जजी की कुर्सी में बैठना मेरे नसीब में न होता ।"[2]

– बहुत दिनों बाद जो बात मैंने जानी वह यह थी कि पति ने बुआ को त्याग दिया । बुआ दुश्चरित्र है और फूफा को मालूम है कि वह सदा से ऐसी है।[3]

'जिन्दगी है, चलती जाती है । कौन किसके लिए थमता है ? मरते हुए मर जाते हैं, लेकिन जिनको जीना है वे तो मुर्दों को लेकर वक्त से पहले मर नहीं सकते ।'[4]

परिस्थितियों की मारी बुआ की दूसरी प्रताड़ना उस कोयले के व्यापारी द्वारा मिलती है । कुछ दिनों तक साथ रहने के बाद वह अपने परिवार वालों के पास चला गया जब वह गर्भवती थीं । प्रमोद के यह पूछने पर कि इस पेट के बालक का क्या होगा ?

---

1. जैनेन्द्र कुमार, त्यागपत्र, पृ0 37.
2. वही, पृ0 39.
3. वही, पृ0 40.
4. वही, पृ0 41.

-------- क्या होगा ? भगवान ही जानता है क्या होगा । मुझे और कोई आसरा नहीं है । पर भगवान् सर्वान्तर्यामी है, सर्वशक्तिमान है । मुझे कोई और आसरा क्यों चाहिए -"[1]

नियति के वशीभूत मनुष्य विफल होकर भगवान जैसे आलम्बों का आश्रय लेने के लिए विवश हो जाता है - "कुछ काल बाद पता लगा कि उन्होंने एक मृत कन्या को जन्म दिया है । उसे जन्म देने में उनकी भी हालत मृतप्राय हो गई थी । पर 'जाको राखे साईंया' उसका मरना आसान नहीं है । सो परमात्मा की दया से बच गई ।'[2]

- "मन में एक गाँठ-सी पड़ती जाती थी । वह न खुलती थी, न घुलती थी । बल्कि कुछ करो, वह और उलझती और कसती ही जाती थी । जो होता था । कुछ होना चाहिए था, कुछ करना चाहिए कहीं कुछ गड़-बड़ है । कहीं क्यों, सब गड़बड़ ही गड़-बड़ है । सृष्टि गलत है, समाज गलत है । जीवन ही हमारा गलत है । -------- इसमें जरूर कुछ होना होगा, कुछ करना होगा । पर क्या - आ ? वह क्या है जो भवितव्य है और जो कर्तव्य है ?[3]

बुआ से बिछुड़ा भतीजा उन्हें ढूंढता रहा । भाग्य से जूझती मृणाल इधर-उधर भागती रही - "मैंने अस्पताल में जाकर छान-बीन की । मिशन के अस्पताल में पाँच महीने हुए एक मिनाल नाम की स्त्री आई थी । उसके वहाँ एक लड़की हुई।"[4]

"लेकिन इस बार वहाँ जाना ही पड़ा । और संयोग की बात कि उन्हीं

---

1. त्यागपत्र, पृ0 58.
2. वही, पृ0 39.
3. वही, पृ0 65.
4. वही, पृ0 66.

डाक्टर साहब के घर बुआ से भेंट हो गई ।"[1] जहाँ मेरी शादी की बात, पक्की हुई थी। मृणाल संघर्ष करते हुए अपने को परिस्थितियों के अनुकूल ढालती है ।

- "थोड़ी देर बैठा मैं उन्हें देखता रहा । कोई कुछ नहीं बोला । --- आँखों की स्निग्धता विशेषता से निगाह को आकृष्ट करती थी । देह इकहरी और वशीभूत । मानो अपने भाग्य से, गहरा सौहार्द है, अनबन किसी प्रकार की भी नहीं है । जो रोना है, सब पी गई है । सब का रस बन गया है । खार कोई नहीं है ।"[2]

- "पर तब भी तो ऐसा नहीं मालूम हुआ कि बुआ उस भटकने का अब भी अन्त चाहती है, आगे भी तो भटकना ही है । सदा के लिये भाग्य में भटकना बदा है ।"[3] बुआ अपने दुर्भाग्य की छाया अपने प्राणप्रिय भतीजे पर नहीं पड़ने देना चाहती थी - "प्रमोद, मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ । जा, जा, अब भी यहाँ मत ठहर ।"[4]

यदा-कदा नियति से लड़ने पर कुप्रभाव भी सामने आते है । अपने बुआ से अपने संबंधों के बारे में बता देने पर प्रमोद का विवाह सम्बन्ध टूट जाता है - "पर विधि-लीला । स्थिति में तनाव आया और मेरे झुकने पर भी वह न सम्भली । रिश्ता टूट गया ।" मानव जीवन ही है । बिना प्रयोग किए किसी सिद्धांत को न मानने का आदि-अंत ।[5]

---

1. त्यागपत्र, पृ0 68.
2. वही, पृ0 70.
3. वही, पृ0 71.
4. वही, पृ0 72.
5. वही, पृ0 73.

- "किनारे पर ही रहें, जहाँ पैर धरती से छू जाते हैं। वहीं तक रहें जहाँ हमारा लंगर धरती को पकड़ ले और हम ठहर सकें। बस, बस उसके आगे जब तब समन्दर के अगाध फैलाव की ओर हम देख लिया करें, यहीं क्या कम है। ---- जितनी झेल सकें उतनी ही विराट की झाँकी ले लें और अपनी धरती के पास-पास किनारे-किनारे सबसे उलझते - सुलझते फिर चलें। यही उपाय है। यही मानव जीवन है।"[1]

वही भतीजा, जब परिस्थितियों के वशीभूत होता है तो वह अपनी प्रिय बुआ से भी विमुख हो जाता है :-

"बात को क्यों बढ़ाऊं। उसमें मेरी ही कापुरुषता बढ़ी हुई दीखेगी। सार यही कि मैं उनको नहीं ला सका। पथ्य आदि की भी कोई विशेष व्यवस्था कर सका, यह भी नहीं कह सकता। एक स्थानीय परिचित वकील मित्र को सौ-दो-सौ जाने कितने रुपये दे आया था और कह आया था कि ध्यान रखना। ---- मैं बहुत नाराज होकर, बहुत चुनौती -भरी बातें कहकर, बहुत ताकीदें और नसीहतें देकर वहाँ से चला आया।

चला आया कि फिर नहीं गया। और आकर ऐसा वकालत में चिपट गया कि किसी बात के लिये आँखें खुली न रहें, कुछ भी और न देखें। अपने आगे का स्वार्थ देखें और - और बस।"[2]

त्यागपत्र की मृणाल ने जो यातनायें भोगीं वे सब अनिवार्य रूप से उसके जीवन परिवेश से छूटी नहीं थी उसमें से अधिकांश को उसने स्वयं वरण किया था और अन्त

---

1. त्यागपत्र, पृ0 76.

2. वही, पृ0 82-83.

में मर गयी । मृणाल अपनी नियति स्वयं निर्मित कर लेती है जिसे ढोती हुई अन्त तक चलती रहती है ।[1]

त्यागपत्र में उस पुरुष शासित नारी के कष्टों की कथा है जिसे प्रेम करने का अधिकार नहीं है । और जिस किसी के साथ उसका विवाह किया जाता है उसको पति-रूप में अपनाना होता है - पति ही जिसका अन्नदाता है । अतः पति से त्याज्य होकर वह सम्मानित जीवन नहीं बिता सकती । मृणाल एक सीमा तक अपने दुर्भाग्य को स्वीकार करने के लिये बाध्य है ।[2]

2. जहाज का पंछी

- इलाचन्द्र जोशी

एक शिक्षित मध्यवर्गीय व्यक्ति, जो साधनहीन है समाज के बीच यात्रा करता है । जीवन संघर्ष में उलझा वह व्यक्ति कलकत्ता पहुँचता है । यह सत्ताइस वर्ष का युवक शिक्षित एवं बौद्धिक क्षमता रखते हुए भी समृद्ध कलकत्ता महानगरी में जीविको-पार्जन के लिये एक उपयोगी काम वह ढूढ़ नहीं पाता । अपने दुबले-पतले भूख से व्याकुल शरीर को वह कलकत्ता के सड़कों, गलियों और पार्कों पर घसीटता हुआ चलता है । देखने वाले उसे चोर-गिरहकट समझते हैं और पुलिस उसे बार-बार कभी जेल, कभी कचहरी और कभी सरकारी अस्पताल की दवा खिलाती है । वह निरुद्देश्य घूमता रहता है । कथानायक ने स्वयं ही प्रथम पुरुष में अपनी कथा कही है - "लगता था कि यदि कहीं सेल्टे-भर को जगह पा जाऊँ तो कई युगों तक बिना अन्न-जल लिये भी जी सकूँगा । इस विराट नगरी की बड़ी-बड़ी सड़कों के दोनों ओर से घेरे हुए जो बड़े-बड़े भवन, सौध-श्रेणियां और अट्टालिकाएँ खड़ी थीं, उनकी ईंट-ईंट के भीतर

---

1. डा० रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ० 94-95.
2. डा० नवल किशोर, आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता, पृ० 58-59.

जैसे मनुष्य रूपी असंख्य कीट भरे पड़े थे, पर उनमें मेरे और मेरे ही जैसे निःसंबल, जीवन संघर्ष में थके-हारे, युग-युग से भटकते हुए पथिकों के लिये कहीं तिल-भर भी स्थान नहीं था ।"[1]

एक शिक्षित नवयुवक की महानगरी में क्या नियति बनती है, जिसका पर्याप्त चित्रण जोशी जी ने इस उपन्यास में बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है । व्यक्ति भूख और बेबसी से मजबूर होकर क्या-क्या करने पर उतारू नहीं होता । व्यक्ति यदि ईमान, मूल्य और मानवीय संवेदना छोड़कर अपने स्वार्थ में लीन हो जाय तो उसे कोई कष्ट नहीं किन्तु यदि वह ईमानदार और आदर्शवादी हो तो 'जहाज के पंछी' के नायक की तरह पग-पग पर गिरता और टूटता है, उसकी आदर्शवादिता कहीं भी असत्य और अन्याय से समझौता नहीं करती ।[2]

अस्पताल के आश्रय से निकाले जाने की आशंका-से युवक एक बहाना बनाकर कुछ दिनों और इसी तरह खैराती अस्पताल का भोजन करने की बात सोच रहा था कि - "इतने दिनों बाद भाग्य के अप्रत्याशित चक्र से, पेट में कुछ डालने की सुविधा प्राप्त हुयी थी - फिर चाहे वह खैराती अस्पताल का अखाद्य भोजन ही क्यों न हो । पेट के दर्द की शिकायत करने से डाक्टर इतना सा राशन भी बंद कर देगा, नर्स की कटु व्यंगभरी बातों से इस तथ्य की ओर अकस्मात् मेरा ध्यान गया । इस-लिये मैं सम्भल गया और मैंने छाती में दर्द बताया । यह मेरा दुर्भाग्य ही था जो बहाना बनाने के पहले मेरे ध्यान में यह बात न आयी । अन्यथा सन्देह के लिये कोई गुंजाइश न रह जाती ।[3]

---

1. इलाचन्द्र जोशी, जहाज का पंछी, पृ0 10.

2. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ0 107.

3. इलाचन्द्र जोशी, जहाज का पंछी, पृ0 35.

युवक नौकरी की तलाश में इधर उधर भटकता हुआ पानी की जहाज की ओर पहुँच जाता है। शायद कोई खलासी, बावर्ची या कुछ और जो भी मजदूरी मिल जाती, तो उसके गुजर-बसर का एक सहारा बनती। एक अमेरिकी युवक-युवती का क्रमशः हाथ देखकर, ज्योतिषी बनकर, पचास रुपये बेवकूफ बनाकर ऐंठ लेने में सफल हो जाता है। "उसके बाद मैंने उसके स्वभाव, रुचि और मानसिक प्रवृत्तियों के संबंध में कुछ इस तरह के मन्तव्य प्रकट किये साधारणतः उसकी उम्र के सभी युवकों के लिये उपयुक्त बैठ सकते थे। साथ ही उसके ऊपरी व्यक्तित्व से उसके भीतरी स्वभाव की जो व्यक्तिगत विशेषता मेरी समझ में आ सकती थी उससे भी मैंने लाभ उठाया।[1]

इस प्रकार पाँचों नोटों को 'कान्सेक्वान्स आफ ए ठग' के नामक पुस्तक के भीतर रखकर दोनों को धन्यवाद देकर युवक आगे ही बढ़ा था कि दूसरे विदेशी यात्री से भेंट हो गयी जिसे उसने संदिग्ध व्यक्ति समझकर पुलिस को सुपुर्द कर दिया। भूख और बेरोजगारी की स्थिति से त्रस्त युवक किस प्रकार गलत कार्य करने को मजबूर हो जाता है इस उपन्यास में वर्णित है। सम्भवतः इस प्रकार की अपराध प्रवृत्ति पैदा होने के पीछे मनुष्य की आर्थिक विपन्नता की स्थिति ही उसकी नियति बनकर निर्देशित करती है।

युवक पुलिस की हिरासत में ले लिया जाता है, जहाँ पर उसे लाक-अप में जेल जाने के पूर्व तक रखा जाता है। थाने में पुलिस उसके साथ तथा उसी प्रकार के अन्य अभियुक्तों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करती है यह स्वयं अपने आप में एक दुखद अनुभव की गाथा बनती है। यातनाओं के इस दौर में दो-चार अभियुक्त साथियों के साथ बात-चीत एवं खाने-पीने और रहने के कारण आपस में उन लोगों के बीच एक दोस्ती का माहौल बन जाता है। झूठे केस में फंसाकर पुलिस उस व्यक्ति को जेल की हवा खिला देता है। कुछ दिनों के बाद उस व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के

---

1. जहाज का पंछी, पृ0 122-123.

सामने पेश किया जाता है, गवाही और बहस के बाद मजिस्ट्रेट कहता है - "देखिये मिस्टर, यह आपका भाग्य ही था कि पुलिस के गवाह ऐसे कच्चे निकले । नहीं तो जिस तरह के जुर्म आप पर लगाये गए हैं वे बड़े ही गम्भीर हैं । यह दूसरी बात है कि मैं आपको बहुत कुछ समझ गया हूँ और आपको निर्दोष मानता हूँ । पर पुलिस के गवाह काफी पक्के और चालाक होते तो आप परेशानी से नहीं बच सकते थे । जो भी हो, मुझे एक बात की खुशी है कि मैं एक बेगुनाह आदमी को सजा देने या परेशानी में फँसाने के अज्ञात दोष से बच गया । मैं आपको रिहा करता हूँ, पर इतनी 'वार्निंग' के साथ कि भविष्य में आप अपने को ऐसी परिस्थितियों में न डालें जहाँ 'फार नथिंग' आप पुलिस के चक्कर में आ जायं ।"[1]

इस घटनाक्रम में यह व्यक्ति कलकत्ता जैसी महानगरी में कितने ही रोज गिरहकटी, चोरी आदि घटनाओं के जुर्म में फंस जाता है परन्तु भाग्यवश कच्चे गवाहों के बयानों से, उसे निर्दोष समझकर अदालत से बरी कर दिया जाता है ।

'जहाज का पंछी' में एक बात स्पष्ट होकर आती है कि मनुष्य के दुख और पतन के लिये समाज की असंगत और अन्यायपूर्ण व्यवस्था उत्तरदायी है । करीम चाचा से जब इस व्यक्ति से मुलाकात होती है, पूछ बैठते हैं, "कैसे आये थे ? नौकरी की तलाश में आया था, चाचा । सब जगह कोशिश करके हार चुका हूँ । न कहीं खाने का ठिकाना लग पाता है, न रहने को जगह मिलती है । पुलिस वाले ऊपर से अलग परेशान किये रहते हैं । अब तो मैं आदी हो चुका हूँ, पर पहले बुरी हालत थी मेरी ———" करीम चाचा कहने लगे, 'जमाने की खूबी है, बेटा । अगर जमाने में इन्साफ होता, बेकारी न होती, भुखमरी न होती, इन्सानियत का कहीं नामो-निशान भी होता तो आज इन्सान को इन्सान का गला काटने में इस कदर मजा ही क्यों आता । इन आँखों ने बहुत कुछ देखा, अभी न जाने क्या-क्या देखना बाकी है ।"[2]

---

1. जहाज का पंछी, पृ0 111.   2. वही, पृ0 122-123.

करीम चाचा के इस नियतिवादी दृष्टिकोण से समाज के यथार्थ चित्रण का विवरण ज्ञात होता है।

वह व्यक्ति निरुद्देश्य भटकता रहता है और इस यात्रा में कितने अजनबी चेहरे उसके सामने आते हैं, उनसे मिलकर और उनकी समस्याओं का अध्ययन अपनी पैनी दृष्टि से करता है। कुछ दिनों सरकारी अस्पताल में रहकर वह डाक्टरों नर्सों की कार्य-विधि का यंत्रवत निरीक्षण करता है। कुछ दिनों एक धोबी के घर नौकरी करता है, और धोबियों की गन्दी बस्ती में चींटियों, गोजरों, खटमलों, मच्छरों आदि के 'फ्री वर्ल्ड' का स्वाद लेता है। इस प्रकार वह जीवन के अनेक पहलुओं और व्यक्तियों को जीता कभी चोरों, उचक्कों, गिरहकटों तथा पहलवानों के बीच रहकर उनकी आन्तरिक मानवता का निरीक्षण करता हुआ शरीर बनाता है।

'इस प्रकार प्रायः दस महीने मैंने चाचा की शागिर्दी में बिता डाले। सुबह कसरत करना और कुश्ती लड़ना सीखता था, दोपहर करीम को हिन्दी सिखाता था और शाम को पाक-विज्ञान सम्बन्धी 'क्लास' अटेंड करता था। बीच-बीच में हुक्का गुड़गुड़ाता, चाय पीता और चाचा की तकरीरें सुनता। रात को छत वाले कमरे में सोने के लिये चला जाता था।'[1]

एक धोबी का सम्पर्क, अमेन्द्र मोहन भादुड़ी के परिवार में प्रवेश, जेल में मजीद से लगाव, करीम चाचा का साहचर्य, सीला का सम्पर्क - इनमें अधिकतर स्थितियां वे जिनमें 'जहाज का पंछी' का यह प्रमुख पात्र आया चाहे विवशता से ही हो, पर जब भी जाता है, अपनी इच्छा से ही जाता है क्योंकि जीवन के नये नये अनुभवों की कुछ तिक्त उपलब्धियां सुख और सुविधा की सहज प्राप्ति से कहीं मूल्यवान है।[2]

---

1. जहाज का पंछी, पृ0 167.

2. डा0 परमानंद श्रीवास्तव, उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा, पृ0 51.

भादुड़ी महाशय से व्यक्ति की निम्न वार्तालाप से कुछ नियतिवादी तथ्यों के आकलन में सहायता मिलेगी -

मैं भादुड़ी महाशय के सामने, काफी दूर हटकर खड़ा हो गया । क्षणभर के लिये सारे कमरे में एक अजीब, अशोभन-सा सन्नाटा छाया रहा । उसके बाद भादुड़ी महाशय ने धीरे-धीरे बोलते हुए साफ शब्दों में कहा सुना जाता है कि कल तुमने लड़कों की साहित्यिक गोष्ठी में भाषण दिया । क्या यह सच है ?"

"भाषण तो मैं नहीं कहूँगा", अत्यंत शांतभाव से मैंने कहा, "पर हाँ, अवसर के अनुकूल कुछ शब्द मैं भी बोला था ।"

"तो तुम स्वयं भी कोई लेखक हो क्या ?"

"लेखक तो मैं नहीं हूँ, पर हाँ, साहित्य का प्रेमी पाठक अवश्य रहा हूँ ।"

"जब तुम इस हद तक पढ़े-लिखे हो तब एक रसोइया बनना तुमने क्यों स्वीकार किया ?"

"इसलिये कि मेरी पढ़ाई और लिखाई को किसी ने कभी तनिक भी महत्व नहीं दिया और उस आधार पर मुझे कहीं कोई नौकरी प्राप्त न हो सकी ।"[1]

उस शिक्षित और बेरोजगार व्यक्ति की दर-दर ठोकरें खाने के कारण, जीवित रहने के लिये रसोइया बनने की नियति परिस्थितिवश एक विकल्प के रूप में इस उपन्यास में चित्रित किया गया है । लेखक का कार्य के प्रति सम्मान का महत्वपूर्ण प्रदर्शन भी उपन्यास में अत्यंत सराहनीय है । शिक्षित होने से जीवन का दृष्टिकोण संकुचित न होकर, ज्यादा बेहतर मानवीय एवं संवेदनशील है । यहाँ तक कि 'जहाज का पंछी' के नायक को भादुड़ी महाशय 'प्रच्छन्न कम्युनिस्ट' कहकर परिभाषित करते हैं ।

---

1. जहाज का पंछी, पृ0 236.

युवक ने कहा, "मैं प्रच्छन्न कम्युनिस्ट हूँ या 'सम-भूमिस्ट' यह अभी आपको प्रमाणित करना बाकी है। और फिर मैं न किसी गरीब, नौकर की लगी-लगाई रोजी छीनना चाहता हूँ, न चोरी को अपना पेशा बनाने की इच्छा रखता हूँ न किसी की बहू-बेटियों पर बुरी नज़र रखता हूँ, न हजारों लाखों आदमियों के शोषण द्वारा अपनी आर्थिक चर्बी बढ़ा-बढ़ाकर मोटा होना चाहता हूँ।"[1]

समृद्धि और वैभव से उसकी शत्रुता है। वह भटकता हुआ एक दिन, एक अत्यधिक सम्पन्न लीला नाम की युवती के द्वार पर पहुँच जाता है, और उसे वहाँ भी कुक का काम मिल जाता है। सुसंस्कृत एवं प्रगतिशील विचारों वाली यह युवती शीघ्र ही उस व्यक्ति की प्रतिभा एवं कला पर मुग्ध होकर उसे अपना स्वामित्व अधिकार देने की आकांक्षा करने लगती है। लीला की लगभग चालीस लाख की सम्पत्ति के आधे भाग से वह युवक एक आश्रम की स्थापना करना चाहता है जिसमें नारकीय जीवन से पीड़ित उन स्त्रियों को मुक्ति दिला सके।

व्यक्ति की इस कलकत्ता महानगरी की यात्रा की नियति कहाँ से कहाँ जाकर विराम लेती है। युवक उस परिवेश से भाग निकलता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने बहुत ही रोचक प्रसंगों का चयन करते हुए उसे एक चकले का भी अनुभव देने की नीयत से मिस लाइमन के चकले में पहुँचा देता है। वहाँ शरीर बेचने के लिये बाध्य की जाने वाली स्त्रियों की दुर्गति देखकर दुःखी होता है।

इसी संदर्भ में अमला नाम की एक दुखी युवती की क्षीण अवस्था को देखकर युवक उसे पेशा करने से रोकता है। बोलो, मानोगी मेरी बात कि नहीं?" जरूर मानूँगी, तुम जैसा कहोगे वैसा ही करूँगी। जिन्दगी में पहली बार तुम्हीं एक ऐसे आदमी मिले हो जो मुझ जैसे गन्दी और घिनौनी औरत के दुख और दर्द को समझना

---

1. जहाज का पंछी, पृ0 238.

चाहते हो और उसके साथ हमदर्दी रखते हो । बाकी सब लोग हमें किस नजर से देखते हैं और ------------- कितना जलील पेशा है, यह तुम देख ही रहे हो । अपने शरीर का, प्राणों का, और आत्मा का सारा रस निचोड़-निचोड़कर देने पर भी दो जून पेट-भर अन्न जुटा पाना दूभर हो गया है ।"[1]

पुनः युवक दूसरी दुनिया का अनुभव संजोने के ख्याल से वहाँ से चल देता है और रांची पहुँच जाता है । कुछ दिनों तक वह रांची के पागलखाने में घूम - फिरकर पागलों के सम्पर्क में आता है, और ऐसे विक्षिप्त लोगों के कारणों का अन्वेषण करने का प्रयास करता है ।

लीला भी उस व्यक्ति का पता पाकर रांची पहुँच जाती है और अपनी सारी सम्पत्ति उसके चरणों में निछावर कर अपने चिर प्रतीक्षित जीवन-संगी को घर वापस ले जाती है और शून्य आकाश में निराश्रय भटकने वाला यह जहाज का पंछी अंत में अपने एक मात्र आश्रय स्थल पर आकर विश्राम लेता है ।[2]

---------::0::---------

---

1. जहाज का पंछी, पृ0 307.
2. शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास, पृ0 307.

अध्याय - 5:

"अज्ञेय के उपन्यासों में नियतिबोध का स्वरूप"

1. शेखर एक जीवनी.
2. नदी के द्वीप.
3. अपने - अपने अजनबी.

1. शेखर : एक जीवनी

अज्ञेय ने सन् 1940 और 1944 में यह उपन्यास जीवनी के रूप में दो भागों में प्रकाशित किया, पहला भाग 'उत्थान' और दूसरा भाग 'संघर्ष'। एक ही कथा-सूत्र में गुथे होकर-भी दोनों भाग अलग-अलग प्रायः सम्पूर्ण है। अज्ञेय ने पहले भाग की विस्तृत भूमिका में इस उपन्यास का दृष्टिकोण दर्शाते हुए लिखा है, "शेखर" घनीभूत वेदना की केवल एक रात में देखे हुए 'विज़न' को शब्द-बद्ध करने का प्रयत्न है।[1]

शेखर निस्सन्देह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजी दस्तावेज, 'ए रिकार्ड आफ पर्सनल सफरिंग' है, यद्यपि वह साथ ही उस व्यक्ति के युग-संघर्ष का प्रतिबिम्ब भी है।[2]

डा० बच्चन सिंह[3] के मतानुसार 'शेखर एक जीवनी' का मूल मन्तव्य है 'स्वतंत्रता की खोज'। इसकी खोज अपने से सबसे काटकर नहीं की गई है बल्कि अन्य संदर्भों में की गई है, मानवीय परिस्थितियों के बीच की गई है। इसमें माध्यम व्यक्ति होता है -------- वह अनेक प्रकार के आन्तरिक संघर्ष से जूझता है, भीतरी तनावों से गुजरता है। वह अपने को अरक्षित अनुभव करता है। पर इस अरक्षा में ही उसे अपने अस्तित्व का बोध होता है। इस आधुनिक दृष्टिकोण से शेखर विद्रोही हो जाता है।

लक्ष्मीकांत वर्मा[4] 'शेखर एक जीवनी' की सार्थकता की पुष्टि करते हुए,

---

1. अज्ञेय, शेखर : एक जीवनी, पहला भाग, भूमिका पृ० 5.

2. वही, पृ० 8.

3. डा० बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 368.

4. लक्ष्मीकान्त वर्मा, आलोचना, 13, 1954, पृ० 92.

बताते हैं कि मनुष्य के संस्कार, मोह, चेतन, उपचेतन स्तरों के विभिन्न आक्रोश, आरोह-अवरोह, नये संदर्भों में मानवीय संवेदनाओं का मूल्य नैतिक मानदण्ड की नई मर्यादा, साथ ही साथ वर्तमान विकृतियां, राष्ट्रीय आन्दोलन सम्बन्धी तत्कालीन भावनायें इन सबको समवेत अभिव्यक्ति ने जीवन को झिंझोड़ सा दिया और यही 'शेखर एक जीवनी' की सबसे बड़ी सफलता थी ।

अज्ञेय[1] ने पुनः लिखा है, 'यदि आपने क्रान्तिकारियों के जीवन का कुछ भी अध्ययन किया होगा, तो आप पायेंगे कि अथक कार्यशील इन प्राणियों में उनके सारे कृतित्व के नीचे छिपी हुई एक कठोर नियति रहती है । क्रान्तिकारी अन्तोगत्वा एक प्रकार के नियतिवादी होते हैं । लेकिन यह नियतिवाद उन्हें अक्षम और निकम्मा बनाने वाला कोरा भाग्यवाद नहीं होता, वह उन्हें अधिक निर्मम होकर कार्य करने की प्रेरणा देता है । इसमें वह गीता के कर्मयोग से एक सीढ़ी आगे होता है क्योंकि वह कर्ता को निरा निमित्त नहीं बना देता । यदि यों कहा जाय, कि क्रान्तिकारी का नियतिवाद अलख नियति की स्वीकृति न होकर, जीवन को विज्ञान-संगत कार्य-कारण परम्परा पर गहरा (यद्यपि अस्पष्ट) विश्वास होता है तो सच्चाई के निकट होगा । मेरा ख्याल है कि आज के अधिकांश वैज्ञानिक भी कुछ इसी प्रकार के नियतिवादी हैं ।

शेखर, परिस्थितियों, परिवेश और संदर्भ के फलस्वरूप कार्य-कारण परम्परा में जीवन के प्रत्येक मोड़ पर नियति का साक्षात्कार करता चलता है । उपन्यास का प्रारम्भ अज्ञेय ने शेखर को फाँसी की सजा की प्रतीक्षा से किया है । मृत्यु की निश्चित सम्भावना को सामने पाकर शेखर के सामने एक प्रश्न उठता है कि उसकी मृत्यु की सिद्धि क्या है ? सभी मनुष्यों, प्राणियों एवं चर-अचर कृतियों का एक न एक दिन मृत्यु का साक्षात्कार निश्चित है जो उनकी नियति है । अज्ञेय ने फाँसी

---

1. अज्ञेय, शेखर : एक जीवनी, पहला भाग, भूमिका, पृ0 6.

क्यों है, कैसे है, की जिज्ञासायें उद्वेलित करने के पश्चात् शेखर के जीवन की अतीत की घटनाओं का क्रमिक चित्रण यथार्थ रूप से किया है । डा० राम स्वरूप चतुर्वेदी[1] के शब्दों में अज्ञेय कथा कृतियों में स्थूल यथार्थ के सूक्ष्म जटिल और परस्पर गुँथे हुए पक्षों को अंकित करने की कोशिश हुई है ।

बचपन से ही शेखर ठोस सत्य को पा लेना चाहता है । शिशु के मन में उठने वाली जिज्ञासाओं उनकी शांति के लिए किये गये उपायों उनके मन में पैदा होने वाले कौतूहल तथा उनके शमन के लिए परिवार के सदस्यों एवं अध्यापकों द्वारा किए गये कार्यों का जन्मजात प्रवृत्तियों, मनोभावों आदि पर पड़ने वाले प्रभावों तथा घात-प्रतिघातों का अत्यन्त विशद् अध्ययन किया गया है ।[2]

- ऐसी-ऐसी स्मृतियां या अर्धस्मृतियां तो अनेक हैं किन्तु यह एक विचित्र बात है कि उसके जीवन की जो सबसे पहली दो एक घटनायें उसे ठीक तौर पर अपनी अनुभूति सी याद हैं, वे इन तीनों महती प्रेरणाओं का चित्रण करती हैं जो प्रत्येक मानव के जीवन का अनुशासन करती हैं ------- अहंता, भय और सेक्स ।[3]

विश्वम्भर 'मानव'[4] के अनुसार इन तीनों वृत्तियों पर अधिकार पाने का शेखर प्रयत्न करता है । भय तो एक दम उसके जीवन से एक दिन निकल ही गया । डा० गोपाल राय[5] के शब्दों में अहं और भय ।-मुक्ति। की प्रेरणायें शेखर को विद्रोही बनाती हैं, यों कहें कि जन्मना विद्रोही शेखर के मन में अहं और भय ।-मुक्ति। की प्रेरणायें बहुत प्रबल रूप में विद्यमान हैं । अत: शेखर की विद्रोही प्रकृति इन प्रवृत्तियों के परिणाम स्वरूप उसकी नियति की परिचायक बनती है ।

---

1. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 87.
2. डा० हेमराज निर्मम, शेखर एक जीवनी-महत्का का अंद, हिन्दी उपन्यास के पदचिन्ह, पृ० 82.
3. शेखर एक जीवनी, 1, पृ० 49.
4. विश्वम्भर 'मानव', आलोचना, 13, 1954, पृ० 99.
5. डा० गोपाल राय, शेखर एक जीवनी मूल्यांकन, पृ० 25.

शेखर की विद्रोही प्रकृति धीरे-धीरे पूरे समाज के प्रति प्रकट होने लगती है। परन्तु नारी के प्रति प्रारम्भ से ही आकृष्ट रहता है। सरस्वती, शशि, शारदा, शीला, शांति, मणिका आदि सभी पर आकर्षित है।

– शशि उसकी सगी बहन नहीं है। पर उस सम्बन्ध से यदि कोई अन्तर जान पड़ता ह भी तो दूरी का नहीं बल्कि और अधिक समीपत्व का, एक निर्बाध सखा भाव का। वह भाव जैसे प्रातःकालीन शारदीय धूप की तरह है जिसमें वह उस घर की ही नहीं, अपने अन्तर की भी छायाओं को सुला लेता है।[1]

– सबसे पहले तुम, शशि। इसलिए नहीं कि तुम जीवन में सबसे पहले आई या कि तुम सबसे ताज़ी स्मृति हो। इसलिए कि मेरा होना अनिवार्य रूप से तुम्हारे होने को लेकर है – ठीक वैसे ही जैसे तलवार में धार का होना सान की पूर्व-कल्पना करता है। तुम वह सान रही हो, जिस पर मेरा जीवन चढ़ाया जाकर तेज़ होता रहा है – जिस पर मँज-कर्मकर मैं कुछ बना हूँ जो संसार के आगे खड़ा होने में लज्जित नहीं है – लज्जित होने का कोई कारण नहीं जानता।

– तुम जीवित नहीं हो। मेरे, शेखर के बनने में तुम टूट गई हो – शायद स्वयं शेखर के हाथों ही टूट गई हो। और मैं अपने मन में बार-बार दुहराकर 'शशि नहीं है, शशि मर गई है, शशि नहीं है', भी यह समझ नहीं पाता कि क्या हुआ[2] – शेखर एक जीवनी की मूलभूत प्रेरणा क्रान्तिकारी या विद्रोहात्मक है। क्रांति और विद्रोह किसके प्रति ? 'जीवनी' में क्रान्ति और विद्रोह स्वयं अपना लक्ष्य है। यह एक मनोवृत्ति ही नहीं, एक स्वतंत्र जीवन दर्शन है, विद्रोह किसी वस्तु या स्थिति के प्रति नहीं, सम्पूर्ण वस्तुओं और सारी स्थितियों के प्रति। सृष्टि के प्रति क्योंकि वह अधूरी और अपूर्ण है : समाज के प्रति, क्योंकि वह संकीर्ण

---

1. शेखर एक जीवनी, 1, पृ0 18.
2. वही, पृ0 16.

है और विकास की विधायक है। सभी संस्थाओं के प्रति, समस्त रीतियों के प्रति, जीवन-मात्र के प्रति विद्रोह क्रांतिकारी की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। विद्रोह के पश्चात्? कुछ नहीं क्योंकि निर्माण भी विद्रोह ही है, विद्रोह में ही निर्माण है। इसलिए शेखर के विद्रोही व्यक्तित्व के प्रति लेखक की इतनी निष्ठा है। प्रकृति की अपूर्णता के विरुद्ध संघर्ष तथा समाज के बन्धनों के विरुद्ध संघर्ष - शेखर की क्रान्तिकारी जीवन की यही धारा है। इस विद्रोह का परिणाम अति भयानक है जो शेखर के चरित्र को अत्यधिक आतंकपूर्ण, व्यक्तिवादी और यातनामय ही नहीं बनाता, उसे एक अस्वाभाविक नृशंस और घातक व्यक्तित्व के रूप में भी उपस्थित करता है।[1]

शेखर एक ईमानदार व्यक्ति है अपनी अनुभूतियों और जिज्ञासाओं के प्रति बेहद ईमानदार[2] परिस्थितियों से वह अनुभव करता चलता है, सीखता चलता है। वह अनुभव से सीखता है कि व्यक्ति की जिज्ञासाओं को, और प्रश्नों को उत्तरित न कर या गलत ढंग से उत्तरित कर समाज उसकी स्वतंत्रता का हनन करता है, उसे शुरू से ही अपने ढाँचे में ढालने का प्रयत्न करता है और असत्य के उपकरणों से उसके व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

- कभी उसे उस युद्ध पर क्रोध आया करता जिसने उसे चारपाई पर लिटा दिया। कभी जब माँ कहती, "बेटा घबराओ नहीं, ईश्वर सब अच्छा करेंगे।" तब वह चाहता, फट पड़े बरस पड़े, पूछे कि क्या युद्ध अच्छा हुआ है? भूख अच्छी हुई है? मामा नहीं आये, यह अच्छा हुआ है? वह जो घोड़ा मर गया, अच्छा हुआ है? इतने लोग बीमार पड़े, अच्छा हुआ है? मरे अच्छा हुआ है? सब कुछ ईश्वर करता है, इसमें उसे आपत्ति नहीं, वह सब कुछ अच्छा करता है, यह झूठ

---

1. नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, पृ० 175.
2. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, पृ० 112.

उस पर अत्याचार है, इसे वह किसी तरह नहीं सह सकता ।[1]

- जिन्निया इन प्रश्नों का उत्तर दे रही थी, और शेखर उन्हें स्वीकार करता जा रहा था । लेकिन जब शेखर ने पूछा, "बच्चे क्यों आते हैं ? " और उत्तर मिला, "ईश्वर की जो मर्जी होती है, वही होता है" तब उसने जान लिया कि शुरू से अंत तक झूठ बताया गया है, और वह एक गुस्सा-भरी निगाह से ज़िन्निया को देखकर बाहर चल दिया ।[2]

इन कथनों में व्यावहारिक जगत और शेखर की अपनी चेतना के बीच आन्तरिक द्वन्द्व का भाव उत्पन्न होता है । इसे एक शाश्वत खाई के रूप में माना जा सकता है जिसका पाटना शेखर के लिए असंभव है । और इसी अर्थ में इन प्रश्नों से जूझना उसकी नियति है । इसके बगैर वह नहीं हो सकता है जो वह है क्योंकि स्वतंत्र होकर ही वह स्वाधीन हो सकता है और स्वतंत्र होना सामाजिक नियमों और रूढ़ियों के प्रतिकार की ओर ले जाता है । इस प्रकार के बाह्य और आन्तरिक तनाव के बीच से ही वह मनुष्य बनने यानी स्वतंत्र रहने की नियति से बंधा हुआ है । यही वह नियतिबोध है जो अज्ञेय के उपन्यासों में अन्तः प्रवाहित रक्त की तरह विद्यमान है । निम्नलिखित उदाहरणों में जहां द्वन्द्व है वहीं नियतिबोध भी है :-

- अज्ञेय के शब्दों में, शेखर नास्तिक है, और मूर्तिपूजक है । और सरस्वती ही वह उपास्य मूर्ति है । उपासना जब हद तक पहुँचती है, तब उपास्य ठीक उतना ही आत्मीय होता है जितना कि उपासक - बल्कि उपासक के लिए तो, वह उसी का प्रक्षेपण (प्रोजेक्शन) मात्र रह जाता है जो उसके भीतर न होकर, बिल्कुल घटनावश उसके सामने हो गया है और इस सामने होने में जाने कैसे अस्पृश्य हो गया है,

---

1. शेखर एक जीवनी, 1, पृ0 90.
2. वही, पृ0 95.

जैसे शीशे में अपना प्रतिबिम्ब, पर साथ ही विस्तीर्ण और अबाध भी हो गया है ------- वैसे ही थी सरस्वती । शेखर को कभी लगता ही नहीं था कि वह भिन्न है, या उसकी अनुभूतियाँ भिन्न हैं ; उसे भूख लगती तो वह कहता, "बहिन, रोटी खाओगी ? और जब वह सोने जाता, तो कहता, "बहिन, तुम्हें नींद लगी है -------"

जबकि शेखर बहिन से कहना चाहता, "बहिन, मुझे मूर्ति उतनी नहीं चाहिए, मुझे मूर्तिपूजक चाहिए । मुझे कोई ऐसा उतना नहीं चाहिए, जिसकी ओर मैं देखूँ, मुझे वह चाहिए, जो मेरी ओर देखे । यह नहीं कि मुझे आदर्शपुरुष नहीं चाहिए पर उन्हें मैं स्वयं बना सकता हूँ । मुझे चाहिए आदर्श का उपासक, क्योंकि वह मैं नहीं बना सकता । अपने लिए ईश्वर-रचना मेरे बस में है लेकिन मेरी ईश्वरता का पुजारी - वह नहीं -------" पर ये विचार उसके मन में स्पष्ट न होते, वह स्वयं उन्हें न समझता और जीवन चलता जाता ------- ।

जो आस्तिक है, उसके लिए ईश्वर कहाँ नहीं है ? और ईश्वर बिना जीवन की कल्पना उसके लिए कब सम्भव है ? लेकिन ईश्वर का घर भी आकाश है उसके आगे भी बादल जाते हैं ------- ।[1]

शेखर की काम-भावना की प्रवृत्ति भी धीरे-धीरे प्रेम में बदल जाती है और इस प्रकार शेखर के लिए प्रेम ऐसा अनुभव है जिसका 'रंग सुंदर है और स्पर्श कठोर' । शेखर वस्तुओं के वे नाम जानना चाहता है - जो हैं और बदल नहीं सकते । एक अनुभव वह होता है जिसमें संसार बना रहता है और एक वह जिसमें संसार मिट जाता है । सरस्वती के साथ शेखर को ऐसा लगा जैसे संसार का अस्तित्व मिट गया है । संसार मिट जाता है पर ऐन्द्रिक अनुभव शेष रह जाते हैं । स्मृतियाँ शेष रहती हैं ।[2]

---

1. शेखर एक जीवनी-1, पृ0 148.
2. डा0 परमानन्द श्रीवास्तव, उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा, पृ0 28.

शारदा के अधभीगे रिबन से बंधे हुए केशों के एक गुच्छे का बिम्ब याद रहता है जो उसके कंधे से फिसलकर उसके कान के नीचे छिपने का प्रयत्न कर रहा है - उसे देखते ही देखते वह अनुभव करता है, संगीत की जिस लहर में वह बहा जा रहा है, वह एक कोमल सफेद धुएं की भांति, पहाड़ से टकराकर भागते हुए नये बादल की भांति है और उसमें शारदा के शरीर से उड़ती हुई एक सुरभित भाप मिल रही है, और केशों का गीला-गीला सोंधा-सोंधा सौरभ -------- ।[1]

उसे जान पड़ता है कि वह आग की इन लपटों की सांसें ले रहा है । उसे जान पड़ता है कि उसका दम घुट रहा है और वह देख रहा है शारदा के बालों के उस उद्दण्ड गुच्छ की ओर । एक अनन्त को पार करके, अनन्त के पार तक ---- पर अनन्त के पार झुला देने वाले क्षण लम्बे नहीं होते ।[1]

सबको खोना शेखर की नियति है । ज्ञान भी यही है और शक्ति भी यही। नियति की प्रतिद्वन्द्विता शेखर को क्या नहीं पाती ।[2]

जातिगत और आर्थिक विषमता का सबसे तीखा अहसास शेखर को मद्रास में होता है, जब वह वहां कालेज में पढ़ने के लिए जाता है । वहां ब्राह्मणों और शूद्रों के लड़कों के लिए अलग-अलग छात्रावास है । चूंकि शेखर शिखा नहीं रखता, जनेऊ नहीं पहनता, पूजा-पाठ नहीं करता, अतः अन्य ब्राह्मण लड़के उसे ब्राह्मणों के छात्रावास से निकाल देने के लिए आवेदन के लिए प्रिंसिपल के पास जाते हैं । यद्यपि प्रिंसिपल का फैसला शेखर के पक्ष में होता है पर शेखर इससे अपने को अपमानित ही अनुभव करता है और अपने अवसाद को मिटाने के लिए वह मालावार घूमने निकल जाता है । वहां जाकर वह अछूतों के प्रति ब्राह्मणों का नृशंस अत्याचार देखता है ।

---

1. शेखर एक जीवनी-1, पृ0 168.
2. डा0 परमानन्द श्रीवास्तव, उपन्यास का यथार्थ एवं रचनात्मक भाषा, पृ0 28.

किसी वर्जित सड़क पर चलने के कारण एक अछूत स्त्री की कोई हत्या कर डालता है। शेखर उस स्त्री को कंधे पर लादकर 'रामकृष्ण मिशन भवन' लाता है पर वह बच नहीं पाती।[1]

इस अमानवीय एवं हिंसात्मक कार्यों के प्रतिक्रिया स्वरूप शेखर में समसामयिक सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह जागृत होता है और वह उस छात्रावास को छोड़कर हरिजन-छात्रावास में चला जाता है। शेखर के अन्दर गरीबों एवं अछूतों के प्रति स्नेह और करुणा का होना उसकी नियति है। क्योंकि ऐसा करना ही उसकी आकांक्षा है जिसका वह वरण करता है। चुनने की काम करने की यह स्वतंत्रता ही उसे व्यक्तित्व प्रदान करती है और असफल होना सामाजिक स्थिति का दबाव है। यह सब जानते हुए भी अपनी इच्छा के अनुरूप शामिल होना रिजेक्ट करना उसकी नियति है और इसके प्रति सजगता ही उसका बोध है।

ब्रिटिश साम्राज्य की दमनकारी नीतियों से भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन की गति बढ़ने लगी। जलियाँवाला हत्याकाण्ड, असहयोग आन्दोलन, भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव जैसे कई देशभक्तों को फाँसी आदि घटनाओं का व्यापक प्रभाव शेखर को क्रान्तिकारी बना देता है। ऐसी स्थिति में उसके मन में 'विदेशी'[2] मात्र के प्रति घृणा हो जाती है। वह पाता है कि उसकी सारी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी में हो रही है - उस अंग्रेजी में जो अंग्रेजों की भाषा है, जिन्होंने देश को गुलाम बना रखा है। उसी दिन से वह बड़ी लगन से हिन्दी पढ़ना आरम्भ करता है और अपनी बात-चीत से सावधानी पूर्वक अंग्रेजी शब्दों का बहिष्कार करने लगता है।

अंग्रेजी शासन के प्रति घोर विद्रोह शेखर के अन्दर पैदा हो जाता है जिसके

---

1. डा० गोपाल राय, शेखर एक जीवनी : मूल्यांकन, पृ० 28.

2. वही, शेखर और उसके उपन्यास, पृ० 58.

लिए परतंत्र भारत की तत्कालीन परिस्थितियाँ उत्तरदायी है । एक शिक्षित युवक की आजादी के बारे में जागरूक है और स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर वह जेल के यातनापूर्ण जीवन की नियति को सहर्ष स्वीकार करता है ।

कैम्प में एक सी0आई0डी0 व्यक्ति के साथ दुर्व्यवहार के अभियोग में पुलिस द्वारा गिरफ्तार होने के बाद शेखर जेल भेज दिया जाता है । जेल-जीवन में शेखर, बाबा मदन सिंह, मोहसिन और रामजी से बहुत प्रभावित होता है । बाबा इक्कीस वर्षों से जेल में रहते हुए भी अट्टहास कर सकने की शक्ति रखता है ।

शेखर अपने जेल-जीवन के दौरान कई कैदियों के सम्पर्क में आता है, उनके तथ्यों को जानने के बाद अनुभव करता है कि वे सभी जघन्य अपराधी नहीं हैं वरन् परिस्थितियों के कारण उत्पन्न असामान्य स्थिति को नियंत्रित करने के उद्देश्य से नियति उन्हें जेल में पहुँचा देती है । स्वयं वह किस प्रकार पुलिस की और अधिकारियों की ज्यादती का शिकार बन जाता है उसे अच्छी तरह ज्ञात है । शेखर को कुछ एक कैदियों के प्रति गहरी सहानुभूति है और वह उनके अन्दर मानवीय संवेदनशील हृदय का दर्शन पाता है । बाबा मदन सिंह भी शेखर से कहता है -

- "भाग्यवान हैं आप । मैं तो बिल्कुल अनपढ़ था जब आ गया - यहीं मैंने पढ़ना लिखना सीखा और यहीं रो-रोकर उन बड़ी बातों को जानने की कोशिश की है, जिनके बिना कोई जी नहीं सकता । और आप - आप विद्या लेकर आयें हैं । आपके सामने भारी दुर्ग है, लेकिन, उसकी चाभी आपके पास है ।[1] बाबा ने तीन वर्षों में अपने कमरे की दिवारों पर जीवन के अनुभवों एवं ज्ञान से करीब एक सौ सूत्र लिखे हैं, जिनसे शेखर बहुत प्रभावित है ।

---

1. शेखर एक जीवनी, 2, पृ0 57.

– अभिमान से भी बड़ा दर्द होता है, पर दर्द से भी बड़ा एक विश्वास है ——————।[1]

– हमारी सभ्यता मानव की शैशवावस्था को बढ़ाने का अनन्त प्रयास है। वह चाहती है सुरक्षा, पुरुषत्व मांगता है साहस।[2]

मोहसिन शेखर को मौलवी कहता था और शेखर उसे पण्डित कहकर बुलाता। मोहसिन का गला अच्छा था। स्वर की तीव्रता भी थी और घनत्व भी।[3]

जेल में शेखर अपने विचारों को लिखने लगा और नियति ने उसे एक सफल लेखक बना दिया।

शेखर ने लिखा – ईश्वर ने सृष्टि की। ——————— ईश्वर ने जान लिया कि भविष्य का प्राणी यही मानव है। तब उसने पृथ्वी पर से धुन्ध चीरकर एक मुट्ठी धूल उठाई और उसे अपने हृदय के पास ले जाकर उसमें अपनी विराट् आत्मा की साँस फूँक दी – मानव की सृष्टि हो गई।[4]

ईश्वर ने कहा – 'मेरी सृष्टि सफल हुई, लेकिन विजय मानव की है। मैं ज्ञानमय हूँ, पूर्ण हूँ। मैं कुछ खोजता नहीं। मानव में जिज्ञासा है, अतः वह विश्व को चलाता है, गति देता है ——————।[5]

रामजी को अपनी भाभी की हत्या के कारण सजा हुयी थी और फाँसी की

---

1. शेखर एक जीवनी-2, पृ0 93.
2. वही, पृ0 58.
3. वही, पृ0 61.
4. वही, पृ0 79.
5. वही, पृ0 81.

सजा हाईकोर्ट से बहाल की गई। रामजी ने अपील नहीं की थी, पर जेलवालों ने स्वयं ही उसकी ओर से हाईकोर्ट में दरख़ास्त भिजवा दी थी।

शेखर से रामजी कहता है कि मेरी फाँसी के वक्त वह मौजूद रहे, 'बाबू जी आप चुप क्यों हैं? इसमें बुराई नहीं है, एक पियारे की मदद ही है। मैं समझूँगा, मरते वक्त एक दोस्त मौजूद था।'[1]

अज्ञेय[2] 'आत्मने पद' में लिखते हैं, कि "रामजी और मदन सिंह 'शेखर' के ये दो विशेष पात्र हैं, दोनों में एक ऋजुता है, जीवन के प्रति एक भव्य स्वीकार का भाव। लेकिन उस स्वीकार के पीछे जाइए तो दोनों में मौलिक अन्तर है। राम जी का स्वीकार सहज आस्था का स्वीकार है। उसके कुछ सहज नैतिक मूल्य या प्रतिमान है, जिनके सहारे वह चलता है: उसकी शालीनता उसकी आस्था का प्रतिबिम्ब है। मदन सिंह की ऋजुता उतनी सहज नहीं है। वह दुःख से मँजकर बना हुआ व्यक्ति है, उसको जो दृष्टि मिली है वह बहुत अंधकार में टोलने के बाद मिली है। मदन सिंह की शालीनता विनय का 'ह्युमिलिटी' का प्रतिबिम्ब है। एक तीसरा पात्र मोहसिन है: उसमें भी ऋजुता है: वह उसके फक्कड़पन का प्रतिबिम्ब है।

तीनों ही पात्रों के स्वीकार भाग्यवाद के परिणाम नहीं हैं बल्कि तीनों को नियति का बोध है और इसीलिए वे 'हैं' उनका कर्तृत्व परिणति के ज्ञान के बावजूद है। वे जानते हैं कि यही होना है और हमें यहाँ तक पहुँचना था।

शेखर जब जेल में था, शशि की शादी हो जाती है। शशि अनिच्छा से विवाह करती है। यद्यपि यह विवाह अपनी माँ की मान रक्षा के लिए उसने किया

---

1. शेखर एक जीवनी-2, पृ0 87.
2. अज्ञेय, आत्मनेपद, पृ0 66.

था ।[1] अपने अनमेल विवाह में आत्मपीड़न सहना और कर्तव्य की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहना परिस्थितिवश शशि के वैवाहिक जीवन की नियति बनती है ।

शेखर जेल से छूटकर उद्भ्रान्त, निरुद्देश्य भटक रहा है । उस भटकन में एक दिन आत्महत्या तक की तैयारी कर लेता है । उसी रात शशि शेखर को जीवन में नया विश्वास भरने के लिए रुक जाती है । वह रात शशि और शेखर के संबंधों को जीवन में नया मोड़ देती है जिसे शेखर भी पहचान लेता है और शशि भी साहस से स्वीकार कर लेती है ।

इतना ही नहीं शशि प्रारम्भ से ही अपनी सम्पूर्ण इयत्ता का प्रतिफलन शेखर में ही देखने को कृत संकल्प है । वह बार बार शेखर की प्रेरणा से भरती है, उसकी रचनात्मक शक्ति को जगाती है । शेखर की प्रेरणा का प्रतीक बनने की बात कहने से भी झिझकती नहीं । वह साफ कहती है कि तुम्हें लिखने की प्रेरणा के लिए कोई प्रतीक चाहिए तो मेरे लिए लिखो, शेखर । बाद में तो वह शेखर के भविष्य में अपने अवसान का नया अर्थ ही ढूंढ लेती है । वह कहती है : पर तुममें मेरा वह जीवन है, जो मैं हूँ, जो मेरा मैं है ।[2]

शशि का शेखर के साथ मिलना जुलना उसके पति के मन में शशि के चरित्र के प्रति संदेह पैदा करता है और वह एक दिन शशि को घर से बाहर निकाल देता है।

पति-परित्यक्ता होकर शशि नारी के लिए समान अधिकारों की माँग करती है तथा शेखर को बनाने-बढ़ाने में अपना निजत्व तक मिटा देती है, यह उसकी मानवतावादी विशेषताएँ ही हैं । उसका आत्मोत्सर्ग अन्यतम है ।[3]

---

1. डा० सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास, पृ० 303.
2. राम कमल राय, अज्ञेय, कृष्ण और संबंधी, पृ० 110.
3. डा० सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास, पृ० 303.

प्रो0 विजयेन्द्र स्नातक[1] के शब्दों में "अज्ञेय ने समाज निर्धारित शास्त्र-सम्मत, संबंध-मर्यादाओं के नीचे पीड़ा भोगते मनुष्य की दर्द-गाथा और उनसे उसकी मुक्ति की छटपटाहट की कहानी कही है। उन्होंने शशि और शेखर की कहानी के माध्यम से एक ऐसे मानवीय, निसर्गसिद्ध संबंध की खोज की है जो किसी अंधविश्वास या जड़ मर्यादा की देन न होकर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच सहज रूप से उभरा है। यह प्रश्न बहुत सही है कि 'नीति-मर्यादा' के नाम पर शेखर और शशि को जो भोगना-सहना नियति के प्रति सजग होना ही आधुनिकता है। शेखर और शशि दोनों के लिए 'स्वतंत्रता' के लिए, निजत्व के लिए अस्ति के लिए 'प्रगति' से कई स्तरों पर संघर्ष प्रतिवाद ही मूलतः नियतिबोध है।

डा0 नगेन्द्र[2] के अनुसार "शेखर की शक्ति उसके अदम्य अहंकार की शक्ति है जो अभ्रभेदी त्रिशूल की तरह ऊपर की ओर बढ़ रही है। शेखर की जितनी घटनाएँ हैं, वे जैसे एक माला के मनके हैं, जिनका सुमेरु है उसका अहम्। उसने पाना ही जाना है, देना नहीं।"

शशि कहती है, "स्त्री हमेशा से अपने को मिटाती आई है। ज्ञान सब उसमें संचित है, जैसे धरती में चेतना संचित है। बीज अंकुरित होता है, धरती को फोड़कर, धरती अपने-आप नहीं फूलती-फलती। मेरी भूल हो सकती है, पर मैं इसे अपमान नहीं समझती कि सम्पूर्णता की ओर पुरुष की प्रगति में स्त्री माध्यम है - और वही एक माध्यम है। धरती धरती ही है, पर वह भी समान सृष्टा है, क्या हुआ अगर उसके लिए सृजन पुलक उन्माद नहीं, क्लेश और वेदना है।[3]

---

1. प्रो0 विजयेन्द्र स्नातक, विमर्श के क्षण, पृ0 15.

2. डा0 नगेन्द्र, विचार और अनुभूति, पृ0 137.

3. शेखर एक जीवनी-2, पृ0 212.

शेखर ने शशि को देखा, निर्निमेष आँखों से देखा -------- देखा ------ देवता भी चौंक जाएँ तो सुनकर चौंक जाएँ - पर उस प्यार को कहना ही क्यों जरूरी है ?

शेखर, तुमने आरम्भ से ही क्यों नहीं अपनी नियति को देखा ?[1]

- शेखर ने क्षुब्ध स्वर से कहा, "मैं यह सब नहीं सुनूँगा, शशि ! तुम तो पागल हो गई हो -

- मनोवैज्ञानिक केस हो गई हो - आत्म-पीड़न को तपस्या मानने वाली हिन्दू हो गयी हो - आत्मपीड़न को तपस्या मानने वाली हिन्दू । पर तुम्हारा आत्म-हनन मुझे स्वीकार नहीं है - और वैसी मूर्खता दो जन भी कर सकते हैं ।[2]

-"शशि, शक्ति मेरे पास रही है, पर मैंने उसे जाना नहीं, आजीवन मैं विद्रोही रहा हूँ, पर बराबर मैं अपनी विद्रोही शक्ति को व्यर्थ बिखेरता रहा हूँ -------- एक दिन तुम्हारे ही मुख ने मुझे यह दिखाया - बताया कि लड़ना स्वयंसाध्य नहीं है, लड़ने के लिए लड़ना निष्परिणाम है, कि विद्रोह किसी के विरुद्ध होना चाहिए - ईश्वर, समाज, रोग, मृत्यु, माता-पिता, अपना-आप, प्यार, कुछ भी हो, जिसके विरुद्ध विद्रोह किया जा सके -------- तब मेरे विद्रोह को धार मिली - वह विरुद्ध हुआ -------- मैं प्रतिद्वन्द्वी हुआ -------- ।[3]

अज्ञेय के शब्दों में - 'मैं शेखर की कहानी लिखता हूँ, क्योंकि मुझे उसमें से जीवन के अर्थ के सूत्र पाने हैं । किन्तु एक सीमा ऐसी आती है, जिससे आगे मैं

---

1. शेखर एक जीवनी-2, पृ0 214.

2. वही, पृ0 218.

3. वही, पृ0 239.

अपनी और शेखर की दूरी बनाए नहीं रख सकता - उस दिन का भोगने वाला और आज का पूत्तकार दोनों ही एक हो जाते हैं क्योंकि अन्ततः उसके जीवन का अर्थ मेरे ही जीवन का ही तो अर्थ है, और जो सूत्र मुझे पकड़ने हैं, उनके प्रति मैं अनासक्त नहीं हूँ, नहीं हूँ ।[1]

डा० मदन[2] इस उपन्यास की वस्तु में विद्रोह का स्वर प्रमुख मानते हैं । "जहाँ तक इसकी वस्तु का सम्बन्ध है इसमें मध्यकालीन संस्कृति के प्रति विद्रोह शेखर के व्यक्तित्व में स्पष्ट झलकता है । आस्था-अनास्था, नैतिकता-अनैतिकता, हिंसा-अहिंसा आदि प्रश्नों पर खुलकर गम्भीर चिंतन इसका साक्षी है । अन्य पात्रों के माध्यम से भी - बाबा, रामजी, मोहसिन, शशि-सामन्ती बोध का विरोध हुआ है ।

अज्ञेय ने लिखा है "कि शेखर के तीसरे भाग में चित्र पूरा हो जाता है पर वह अभी प्रकाशित नहीं हुआ है । शेखर हिंसावाद से आगे बढ़ जाता है । मैं समझता हूँ कि वह मरता है तो एक स्वतंत्र और सम्पूर्ण मानव बनकर । यों उसे फाँसी होती है - ऐसे अपराध के लिए जो उसने नहीं किया है ।[3]

पुनः अज्ञेय स्वीकार करते हैं, कि मानव में मेरी आस्था अधिक है और इसका कारण भौतिक दर्शन का सबसे आज तक का विकास भी है ।

इस प्रकार शेखर का सम्पूर्ण जीवन 'शेखर एक जीवनी' के दोनों भागों के आधार पर विद्रोह और संघर्ष का यथार्थ चित्रण है । अज्ञेय का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

---

1. शेखर एक जीवनी, 2, पृ० 241.

2. डा० इन्द्रनाथ मदान, आज का हिन्दी उपन्यास, पृ० 35.

3. अज्ञेय, आत्मने पद, पृ० 65.

नियति के अन्तर्गत कार्य-कारण परम्परा में 'डिटरमिनिज्म' को उद्घाटित करता है। नियतिबोध शेखर की रचना तन्तुओं में ही अनुस्यूत है। रचनाकार ने सजग होकर ही उसे रचा है। आत्म-सजगता और यथार्थ की प्रतीति के द्वन्द्व से नियति-बोध का रूप उभरता है। शेखर में कर्मठता और चेतना के साथ भवति को - होते हुए को - बदलने का भाव है जो नियतिबोध को 'मानवीय सत्ता' की प्रतीति से जोड़ता है। इस अर्थ में 'शेखर एक जीवनी' का नियतिबोध मनुष्य होने को प्रमाणित करते रहने की अनिवार्यता से जुड़ा है।

2. नदी के द्वीप

अज्ञेय का दूसरा उपन्यास 'नदी के द्वीप' (1951) सामान्यतः शेखर की संवेदना का विकास माना जाता है। शेखर और भुवन तथा रेखा और शशि में एक तरह का सादृश्य लगता है। -------- नदी के द्वीप को एक स्वतंत्र कृति के रूप में मूल्यांकित करना अधिक संगत है। डा० बच्चन सिंह[1] अपने इस विचार की पुष्टि करते हुए लिखते हैं - "इसमें संदेह नहीं कि दोनों की भाव संवेदना में निश्चित रूप से एक सूत्रता है पर लगता है शेखर की तेजस्विता इस उपन्यास में समाप्त हो जाती है। भुवन की तेजस्विता कृत्रिम, आरोपित और अविश्वसनीय है। वह ठीक ढंग से सिचुएट नहीं होता है इसलिए वह आत्म-केन्द्रित और दंभी बन जाता है। 'शेखर एक जीवनी' की शशि भी सिचुएटेड चरित्र है पर रेखा कहीं भी नहीं है इसलिए उसकी बौद्धिक ऊँचाई स्वयं नदी का द्वीप है, प्रवाह से अलग। -------- आवेग के चुक जाने पर नदी का द्वीप बन जाना विद्रोही की नियति होती है।

---

1. डा० बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 370.

डा० रामखेलावन पाण्डेय[1] के शब्दों में "यौनवृत्ति की संतुष्टि ही 'नदी के द्वीप' की समस्या है, सांस्थिक संस्कारों से विच्छिन्न एवं पारिवारिक-सामाजिक परिवेश से अपेक्षाकृत मुक्त । इसमें उभारने वाला संघर्ष व्यक्तियों की टकराहट है, व्यक्ति और समाज की नहीं । यह समस्या निर्वैयक्तिक व्यक्तियों की नहीं, सामाजिक व्यक्तित्व की वैयक्तिक अभिव्यक्ति से पूर्ण व्यक्तित्व की भी नहीं, बल्कि विशिष्ट, पूर्णतया व्यक्तिक और वैयक्तिक तथा अपेक्षाकृत स्वतंत्र-वृत्ति व्यक्तियों की है, सामाजिक परिवृत्त जिन्हें क्षीण रूप में प्रभावित तो करता है किन्तु नियंत्रित और नियमित नहीं ।

'नदी के द्वीप' हिन्दी उपन्यास की महत्वपूर्ण रचनात्मक उपलब्धियों में से एक है । उपन्यास के रूप में न केवल उस प्रकार की कोई अन्य रचना हिन्दी में है बल्कि उतनी सूक्ष्मता, संवेदनशीलता और अनुभूतिगत प्रखरता से लिखी हुई प्रतियां बहुत कम है ।[2]

'नदी के द्वीप' स्वयं अज्ञेय के अनुसार ही - समाज के जीवन का चित्र नहीं है, एक अंग के जीवन का है, पात्र साधारण जन नहीं है एक वर्ग के व्यक्ति हैं और यह वर्ग भी संख्या की दृष्टि से अप्रधान ही है ।[3] स्वयं लेखक ने त्रिशंकु नामक निबंध संग्रह में लिखा है - " ------- हमारा युग संक्रान्ति का युग है । सब ओर परिवर्तन एक नियति सा हमें खींचे जा रहा है - समाज के संगठन में, राज्य व्यवस्था में, कीर्ति और आचार में - साहित्य की ओर आयें तो पाप और पुण्य ऊँच और नीच की व्याख्या में वस्तु और शैली में, तुक और छेद में - घोर परिवर्तन हो रहा है ।[4]

---

1. डा० रामखेलावन पाण्डेय, आलोचना, 13, 1954, पृ० 150.
2. नेमिचन्द्र जैन, अधूरे साक्षात्कार, पृ० 22.
3. अज्ञेय, आत्मनेपद, पृ० 73.
4. डा० मनमोहन सहगल, हिन्दी उपन्यास के पदचिन्ह, पृ० 167.

'नदी के द्वीप' व्यक्ति-चरित्र का उपन्यास है । व्यक्ति अपने सामाजिक संस्कारों का पुंज भी है, प्रतिबिम्ब भी, पुतला भी, इसी तरह वह अपनी जैविक परम्पराओं का भी प्रतिबिम्ब और पुतला है, क्योंकि जिन परिस्थितियों में वह बनता है उन्हीं को बनाता और बदलता भी चलता है । वह निरा पुतला, निरा जीव नहीं है, वह व्यक्ति है, बुद्धि-विवेक-संपन्न व्यक्ति ।[1]

नदी के द्वीप में व्यक्ति सुगठित चरित्र लेकर आता है । यह समाज के जीवन का चित्र नहीं एक अंश के जीवन का है । 'नदी के द्वीप' एक दर्द भरी प्रेम कहानी है । दर्द उनका भी जो उपन्यास के पात्र हैं, कुछ उनका भी जो पात्र नहीं हैं । वास्तविकता के इस निर्वाह के साथ 'नदी के द्वीप ' में एक आदर्शपरकता भी है ।[2]

डा0 राम दरश मिश्र[3] के अनुसार -'व्यक्ति 'नदी का द्वीप' है, घिरे होकर भी एक दूसरे से कटे हुये हैं और कटे होकर भी धारा के नाते कहीं न कहीं जुड़े हुए हैं । ये द्वीप धारा में अपनी सत्ता विलीन कर दें तो अपने को नष्ट करेंगे ही, धारा को भी गंदला करेंगे ।

इस उपन्यास में मानवता की रक्षा के लिए नायक के दूसरे महायुद्ध में शामिल होने का प्रसंग एकदम घल्पा किया गया ही लगता है । व्यक्ति के सामाजिक प्रवाह में द्वीप होने का - धारा से घिरे स्पष्ट, किन्तु अपनी सत्ता में स्वतंत्र होने का - सिद्धांत, भुवन, रेखा का काफी-हाउस का बौद्धिक विलास ही रहता है ।[4] रेखा के शब्दों में -

---

1. अज्ञेय, आत्मनेपद, पृ0 71.
2. वही, पृ0 73.
3. डा0 रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ0 119.
4. डा0 नवल किशोर, आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता, पृ0 95.

"लेकिन, डा० भुवन, काफी-हाउस में मानवता का जो अंश आता है, उसका जीवन मानवता का जीवन नहीं है । वह तो - वह तो - " । वह तो केवल एक भँवर है, वह भी बहुत छोटा सा, और जीवन का प्रवाह" -------- मुझे तो लगता है, जब आप मानव से हटकर मानवता की बात सोचने लगते हैं, तभी आप जीवन से दूर चले जाते हैं । क्योंकि जीवन मानव का है, यथार्थ मानव है, मानवता केवल एक उद्भावना-एक युक्ति-सत्य - "[1]

जीवन की नदी अथवा द्वीपों पर, सेतु बाँधने की बात वे कभी-कभार करते अवश्य हैं यद्यपि उस बात की निरर्थकता को भी समझते हैं ।

- पर जीवन की नदी पर सेतु बाँधने की कल्पना कर सकना ही इतनी बड़ी बात है कि मुझे ईर्ष्या होती है ।

भुवन ने कहा, "हाँ, यों सेतु बनना चाहना है बड़ी मूर्खता - क्योंकि सेतु दोनों ओर से केवल रौंदा ही जाता है ।"[2]

"हाँ, मगर सचमुच सेतु बन सके तो दोनों ओर से रौंदे जाने में भी सुख है, और रौंदे जाकर टूटकर प्रवाह में गिर पड़ने में भी सिद्धि । मैं तो समझती हूँ, हम अधिक से अधिक इस प्रवाह में छोटे-छोटे द्वीप है, उस प्रवाह से घिरे हुए भी, उससे कटे हुए भी, भूमि से बँधे और स्थिर भी, पर प्रवाह में सर्वथा असहाय भी - न जाने कब प्रवाह की एक स्वैरिणी लहर आकर मिटा दे, बहाले जाए, फिर चाहे द्वीप का फूल-पत्तो का आच्छादन कितना ही सुंदर क्यों न रहा हो ।"[3]

---

1. अज्ञेय, नदी के द्वीप, पृ० 21.

2. वही, पृ० 22.

3. वही, पृ० 22.

डा० योगेन्द्र बक्शी[1] इस संदर्भ में इन द्वीपों की प्रतीकात्मकता की पुष्टि करते हुए लिखते हैं, "इसे व्यक्तिवादी जीवन-दृष्टि की संज्ञा दी जा सकती है जिसके अनेकानेक स्तरों, स्वरूपों को उपन्यास में बांधने का प्रयास हुआ है । यही उपन्यास के कथ्य की आधारभूमि है तथा इसी में इसके प्रतीकात्मक शीर्षक की सार्थकता भी निहित है ।

रेखा एक स्थान पर भुवन से कहती है - "आपकी मान्यता विशाल मरुभूमि है - और मेरे ये सहज साक्षात् छोटे-छोटे हरे ओएसिस । न एक हरियाली से सम्पूर्ण मरु की कल्पना हो सकती है, न असंख्य हरियालियों को जोड़ देने से एक मरुभूमि बनती है । ये चीजें ही अलग हैं ।[2]

- आप बिना मरु के ही, ओएसिस का अस्तित्व मानते हैं । आप भाग्यवान हैं ।

भुवन इस तथ्य से नकारता नहीं कि जीवन ही मरुस्थल है । वह यह जानता है कि विधि ने जो भी नियत कर रखा है उसे सहज रूप से स्वीकार्य है । उस मरुस्थल में भी ओएसिस कहीं-कहीं है यही जीवन है ।

उपन्यास में कई स्थलों पर पात्रों को नदी के द्वीप का प्रतीक बनाकर लेखक ने चित्रित किया है । ये द्वीप जीवन की नियति स्वरूप मनुष्य के अस्तित्व की व्याख्या करते हैं । इस शृंखला में रेखा और भुवन के सम्पर्क के प्रत्येक क्षण एक मूल्यवान द्वीप का प्रतीक बनता है ।

- रेखा का व्यक्तित्व उसका समूचा जीवन नदी के द्वीप के प्रतीक को ही

---

1. डा० योगेन्द्र बक्शी, हिन्दी उपन्यास के पदचिन्ह, पृ० 168.

2. नदी के द्वीप, पृ० 22.

सार्थक करता है । भुवन के साथ रेखा कश्मीरी दरवाजे की ओर बढ़ रही है, उससे कहती है - "मेरे साथ कुछ ही दिन में आप सर्वत्र द्वीप देखने लगेंगे - हमी द्वीप हैं, मानवता के सागर में व्यक्तित्व के छोटे-छोटे द्वीप, और प्रत्येक क्षण एक द्वीप है - खासकर व्यक्ति और व्यक्ति के सम्पर्क का काँटैक्ट का प्रत्येक क्षण - अपरिचय के महासागर में एक छोटा किन्तु कितना मूल्यवान द्वीप ।"[1]

भुवन और रेखा बस द्वारा पहलगांव के लिये चले जा रहे थे । रेखा भाग्य के अधीन होकर भुवन से कहती है तुम चले जाओगे मैं जानती हूं कि तुम चले जाओगे मैं आदी हूं कि जीवन में कुछ आये और चला जाये मैंने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ना भी छोड़ दिया है - कौन पकड़कर रख सकता है ।[2]

नेमिचन्द्र जैन[3] 'अधूरे साक्षात्कार' में रेखा के अद्भुत व्यक्तित्व का परिचय देते हुए लिखते हैं, रेखा अपने व्यक्तित्व की सम्पूर्णता की खोज में, अपने भाव-जगत की परिपूर्णता की खोज में, बड़े आत्म सम्मान के साथ बढ़ी चली जाती है । इसमें कोई संदेह नहीं कि इतनी संवेदनशील, सजग, गौरवमयी, और फिर भी आधुनिक नारी का चित्र हिन्दी उपन्यास में दूसरा है ही नहीं । रेखा स्नेहकातर है, प्रणयकांक्षिणी है, पर दीन नहीं । दीनता और क्षुद्रता उसमें कहीं भी नहीं है । उसके व्यक्तित्व में जो कुछ मुखर है वह है - अमानवीय सामाजिक विधान के प्रति विद्रोह ।

---

1. नदी के द्वीप, पृ0 110.

2. वही, पृ0 145.

3. नेमिचन्द्र जैन, अधूरे साक्षात्कार, पृ0 26.

रेखा गर्भवती होती है, यह नहीं कि वह वासना के आवेग में, बिना कुछ सोचे समझे सामान्य विवेकहीन लड़कियों की तरह इस नियति की शिकार हो जाती है ।[1] वह एक जगह अपनी कापी में लिखती है -

"-------- तुमने डर की बात कही थी । वह एक चीज है जो मैंने पहले कभी नहीं जानी । दुख - हां, वह खूब जाना है, अपमान, ग्लानि, ईर्ष्या - ये भी सहे हैं, पर डर -------- किसका डर ? तुमसे डर ? तुमसे !! तुम्हारे लिए डर ? " तुम्हें क्या दूंगी, यह ?[2]

रेखा का आत्मसमर्पण वासना के आवेग में किया हुआ विवेकहीन आत्म-समर्पण नहीं है उसके पीछे विवेक का तीव्र आलोक अनुभूति की गहराई और जीने की लालसा है । रेखा की विशेषता यही है कि वह शेखर की तरह अपने चुनने के परिणाम को जानते हुए भी चुनने की स्वतंत्रता मात्र से ही अपनी इयत्ता को सम्पन्न मानती है । नियति का वरण उसके द्वारा किया गया है न कि वह कोई पूर्व - निश्चित विधान है । अज्ञेय के उपन्यासों में यही अस्तित्ववादी नियतिबोध है ।

रेखा अपने से कितनी संतुष्ट है, इसका पता उसकी इन पंक्तियों से चलता है, "भुवन जाने से पहले एक बार कहना चाहती हूँ आइ एम फुलफिल्ड । अब अगर मैं मर जाऊं तो परमात्मा के - प्रकृति के - प्रति यह आक्रोश लेकर नहीं जाऊंगी कि मैंने कोई भी फुलफिलमेंट नहीं जाना - कृतज्ञ भाव ही लेकर जाऊंगी - परमात्मा के प्रति - भुवन तुम्हारे प्रति । और हठात् वह भुवन के पैरों की ओर झुक गई थी और भुवन के चौंकते चौंकते उसने भुवन के पैरों की धूल ले ली थी ।[3]

---

1. डा० गोपाल राय, अज्ञेय और उनके उपन्यास, पृ० 84.
2. नदी के द्वीप, पृ० 146.
3. वही, पृ० 159.

रेखा समाज को अप्रासंगिक तो नहीं मानती पर उसे निर्णायक भी नहीं बनाना चाहती है।

- "मेरे कर्म का - सामाजिक व्यवहार का नियमन समाज करे, ठीक है ; मेरे अंतरंग जीवन का - नहीं। वह मेरा है। मेरा यानी हर व्यक्ति का निजी।"[1]

अंतरंग और बाह्य द्वीप और धारा के बीच के इस संयोग-वियोग से ही उपन्यास में नियति की सजग भूमिका बनती है क्योंकि निजत्व की स्वतंत्रता और सामाजिकता के दबाव दोनों की नियति का निर्धारण करते हैं वे और जानते तथा देखते हुए भी अन्ततः उस नियति की ओर ही जाते हैं।

रेखा के गर्भवती होने की सूचना पाकर भुवन उससे मिलने काश्मीर गया और विवाह का प्रस्ताव किया तो रेखा ने इसे मात्र दया समझ कर निश्चयात्मक ढंग से इनकार करते हुए कहा, "मैंने - तुमसे प्यार मांगा था, तुम्हारा भविष्य नहीं मांगा था, न मैं वह लूंगी।"[2]

रेखा भुवन की पत्नी बनने से इनकार करती पर प्रेयसी बनी रहती है। कुछ परिस्थितिवश रेखा को भुवन के सम्मान की रक्षा के लिए गर्भपात कराना पड़ता है। इस प्रकार भावी शिशु के कारण भुवन पर जो सामाजिक या नैतिक दायित्व आता, उसे रेखा अपने ही हाथों समाप्त कर डालती है - अपनी भावनाओं की बलि देकर अपने सपनों को चूर-चूर करके, अपने प्राणों को संकट में डालकर।[3]

---

1. नदी के द्वीप, पृ0 215.

2. वही, पृ0 214.

3. डा0 गोपाल राय, अज्ञेय और उनके उपन्यास, पृ0 85.

भुवन के द्वारा रेखा को पत्र में, - "प्यार मिलता है; व्यथा भी मिलती है; साथ भोगा हुआ क्लेश भी मिलता है; लेकिन क्या ऐसा नहीं है कि एक सीमा पार कर लेने पर ये अनुभूतियाँ मिलाती नहीं, अलग कर देती हैं, सदा के लिये अन्तिम रूप से ।" और पत्र के अन्त में - "हम मिलेंगे, लेकिन मानों इस दीवार के आर-पार, हाथ मिलाएंगे, लेकिन मानो इस चौखट के भीतर से, एक दूसरे को देखेंगे, लेकिन मानो इस चौखटे में बड़े हुए - तुम उधर से, मैं इधर से -------- रेखा, मैं अब भी तुम्हें प्यार करता हूँ, उतना ही, पर -------- ।"[1]

भुवन के बारे में कहा जा सकता है कि वह सच्चे अर्थों में रेखा के लिए डेस्टिनी है । रेखा भी इस बात को पूरे उपन्यास में स्वीकारती है कि भुवन ने ही उसके नैराश्य जीवन को फिर से अंकुरित किया । भुवन से विलग होकर व उसकी मान-रक्षा हेतु रेखा, डा० रमेश के विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है । अपने पत्र में भुवन को लिखती है -

"यह क्या है, भुवन ? बरसों मैं श्रीमती हेमेन्द्र कहलायी, -------- अब अगले महीने से श्रीमती रमेशचन्द्र कहलाऊँगी । -------- मैं इतना ही सोच पाती हूँ कि मेरे लिये यह समूचा श्रीमतीत्व मिथ्या है, कि मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी, तुम्हारी ही हुई हूँ, और किसी की कभी नहीं, न कभी हो सकूँगी । ------- तुम्हीं मेरे गर्व हो, तुम्हारे ही स्पर्श से 'सकल मम देह मन वीणा सम बाजे ---।[2]

उपन्यास के अन्त में रेखा द्वारा लिखे गए भुवन के पत्र के कुछ वाक्यांशों से यह स्पष्ट होता है कि उसकी नियति किस प्रकार भुवन से जुड़ी है ।

---

1. नदी के द्वीप, पृ0 262.

2. वही, पृ0 314.

- "तुम भटक रहे हो, भटक ही नहीं रहे भाग रहे हो । यद्यपि मेरे कारण तुम्हारे मन पर बोझ न आये, इसकी पूरी कोशिश करती रही हूँ, देवता साक्षी है; सफल कहाँ तक हुई, यह दूसरी बात है -------- पर अब नहीं कोसती, वह कोसना भी अहंकार ही था, क्योंकि अब लगता है, नहीं मुझसे नहीं, कुछ और है जिससे तुम भागते हो, क्योंकि उससे तुम बंधे हो, जिससे तुम्हारी नियति गुंथी है, और यह भागना केवल अन्तःशक्तियों का वह वर्ष-विकर्ष है जो अन्ततोगत्वा अनुकूल स्थिति लावेगा ।

उपन्यास का एक अन्य पात्र है - चन्द्रमाधव, जो अपनी पत्नी के प्रति कुंठाग्रस्त हो अतृप्त हुआ इधर उधर भटकता है । वह कभी रेखा को कभी गौरा को आकृष्ट करने का सतत प्रयास करता है ?

चन्द्रमाधव के हास्यास्पद चरित्र की यह रोचक विडम्बना है कि एक बार रेखा उसकी डेस्टिनी बनी हुई थी अब गौरा बनी हुई है ।[1] रेखा और गौरा दोनों को प्राप्त न करने की प्रतिक्रिया उसे जो कुंठा और निराशा देती है उससे वह साम्यवादी बन जाता है ।

आगे चलकर चन्द्रमाधव रेखा को गौरा से मिलाता है परन्तु चन्द्रमाधव अप्रासंगिक रह जाता है । गौरा कहीं टूटती और कहीं जुड़ती है । भुवन, रेखा और गौरा तीनों ही नियति की बागडोर से बंधे हुए हैं और प्रतिक्षण अपने को उसमें से बाहर निकलने का प्रयास करते हैं ।

छः महीनों बाद भुवन पर ट्रैजेडी का प्रभाव जब कम होता है वह गौरा को एक पत्र भेजकर लिखा है[2], लेकिन न जाने क्यों तुमसे मिलने को, तुमसे बात करने

---

1. डा० परमानंद श्रीवास्तव, उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा, पृ० 40.
2. नदी के द्वीप, पृ० 273.

को, तुम्हें न जाने क्या कुछ बताने को मन होता है -------- मुझे लगता है कि मैं बड़े-बड़े बहुमूल्य वस्तुओं को नष्ट होते, मरते देखा किया हूँ, अकेले किया हूँ और इसलिए साथ ही स्वयं भी मरता रहा हूँ, अगर उस अकेलेपन से निकल सकता, जो देखा है वह कह सकता, तो शायद उस मृत्यु से भी उबर सकता -------- ।

भुवन और गौरा के बीच पत्रों का आना-जाना लगा रहता है । गौरा के अपने पत्रों में श्रृंगार नहीं, भक्ति, श्रद्धा, अनुरक्ति और समर्पण ही झलकता है । भुवन विदेश से वापस लौटकर एक सप्ताह गौरा के अतिथि-कक्ष में मसूरी आकर रहता है । यहीं पहली बार वह भुवन को 'आप' से 'तुम' कहती है । जिस गहरे स्नेह भाव से वह भुवन की सेवा करती है, वह उसके अनुराग का ही व्यंजक है । इतना ही नहीं, भुवन जिस अवसाद, कुंठा और अपराध भावना से पिजड़ित है, उसे भी दूर करने में गौरा सफल होती है ।[1]

रेखा के साथ घटित उन क्षणों को, संबंधों को भुवन गौरा को बताता है, कुछ छिपाता नहीं । गौरा उसकी कहानी ही नहीं सुनती वरन् उसकी पीड़ा की सहभोक्ता भी बनती है । जब भुवन अपनी कहानी समाप्त करता है और घोर पीड़ा की मन:स्थिति में रहता है तो देखता है गौरा के आंसू भी उसके दुख में गिर जाते हैं ।

गौरा एक कागज पर उस रात की घटना की प्रतिक्रिया में लिखती है, "सचमुच मेरे जीवन का सबसे इष्ट यही है कि तुम्हें सुखी देख सकूं - तुम्हारा व्रण ठीक कर सकूं । मेरे स्नेह-सिक्त मैं तुम्हारे ही लिए जीती हूँ, क्योंकि तुम में जीती हूँ -------- ।[2]

---

1. डा० गोपाल राय, अज्ञेय और उनके उपन्यास, पृ० 96.
2. नदी के द्वीप, पृ० 305.

नेमिचन्द्र जैन[1] के शब्दों में, "भुवन के प्रति गौरा की लगभग 'शरच्चन्द्रीय भक्ति' का कोई कारण समझ में नहीं आता क्योंकि भुवन के व्यक्तित्व में ऐसा कहीं कुछ नहीं दिखाया गया है जो साधारणतः और साधारण परिस्थितियों में किसी नारी को इस भाँति अभिभूत करे । -------- पुनः गौरा के लिए लिखते हैं कि "भुवन के प्रति उसकी भक्ति का, लगभग पूजा-जैसी भावना का उससे प्रेम और अन्त में विवाह-प्रस्ताव तो बड़ा ही 'एन्टी-क्लाइमेक्स' जैसा लगता है ।

नेमिचन्द्र जैने के विचारों की पुष्टि से यह धारणा बनती है कि क्या कोई नारी रेखा - भुवन के संबंधों को जानने के पश्चात् किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं करेगी ? इस प्रतिक्रिया में ईर्ष्या होगी, विरोध होगा । परन्तु गौरा जैसा आत्मसमर्पण का भाव तो स्वाभाविक नहीं लगता । स्वयं अज्ञेय[2] 'आत्मनेपद' में इस बात की प्रामाणिकता को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं - "मेरे निकट ईर्ष्या भी अधूरी दृष्टि का, अपरिपक्वता का, परिणाम है । एक वय में - वय मानसिक भी होता है - ईर्ष्या स्वाभाविक हो सकती है, पर मैं मानता हूँ कि बच्चा बड़ा भी हो सकता है । युवती के लिए - हिन्दी उपन्यास की नायिका के लिए भी । - वयस्क हो जाना नितान्त अस्वाभाविक नहीं है ।

रेखा एक पत्र गौरा को भेजती है तथा एक अंगूठी आशीर्वाद स्वरूप भी उसे पार्सल के साथ भेजती है । इस पत्र[3] के कुछ अंश दिये जा रहे हैं :-

- गौरा, जीवन में आनन्द सब कुछ नहीं है, पर बहुत बड़ी चीज है, और है वह सुखों में नहीं, है वह मन की प्रवृत्ति । मैं बहुत लालची थी, मैंने एक साथ

---

1. नेमिचन्द्र जैन, अधूरे साक्षात्कार, पृ0 29.
2. अज्ञेय, आत्मनेपद, पृ0 80.
3. नदी के द्वीप, पृ0 330.

ही सारे तारों - भरे आकाश को बाँहों में घेर लेना चाहा था । तुम में अधिक धैर्य है । तुम आकाश की छत को छू सकोगी । और एक - एक तारा तुम्हारी एक - एक सीढ़ी होगी -------- जीवन की चरम एक्स्टैसी तुम जानो, गौरा, उसे जाने बिना व्यक्ति अधूरा है, पर यह फिर कहूँ : आनन्द अनुभूति में नहीं है, किसी अनुभूति में नहीं, आनन्द मन की एक प्रवृत्ति है, जो सभी अनुभूतियों के बीच में भी बनी रह सकती है ।

तुम्हें सीख नहीं दे रही, गौरा, हर व्यक्ति एक अद्वितीय इकाई है, और हर कोई जीवन का अन्तिम दर्शन अपने जीवन में पाता है, किसी की सीख में नहीं। पर दूसरों के अनुभव वह खाद हो सकते हैं जिससे अपने अनुभव की भूमि उर्वरा हो ।

उस समान आनन्द की कामना तुम्हारे लिए करती हूँ, गौरा - तुम्हारे लिए, और भुवन के लिए ।

रेखा के पत्र में चिन्तनशीलता युक्त दर्द की जो अनुभूति है वह रचना को नया आयाम तो देती ही है उपन्यास के सारांश को भी बताती है । इस पत्र में भी उसने नियति को दोष नहीं दिया है बल्कि स्वीकार ही किया है । अपने जीवन दर्शन पाने का 'तात्पर्य' अपनी नियति का बोध होना भी हो सकता है ।

चन्द्रमाधव का चरित्र हिन्दी फिल्मों के 'विलेन'[1] जैसा होने का आभास देता है, क्योंकि -------- वह सनसनी खोजी है ? असल में उसने जीवन खोजा है, तीव्र बहता हुआ प्लावनकारी जीवन -------- उसे मिली है यह छोटी-छोटी दुःखी अनुभूतियाँ, घुटकियाँ -------- और चिकोटियाँ -------- प्यार नहीं, बीबी बच्चे । स्वातंत्र्य नहीं, तनख्वाह । जीवनानन्द नहीं, सहूलियत, परंतु

---

1. डा0 सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास, पृ0 309.

सिनेमा, पान-सिगरेट, मित्रों की हिंसा --------- ।' उसमें सामाजिकता है और प्रत्येक दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों से वह किसी न किसी स्तर पर सम्पृक्त है, किन्तु अपने मूल रूप में वह चरित्रहीन, अवसरवादी, विध्वंसी, वंचक, कुटिल तथा कम्युनिस्ट है। उसमें आडम्बर का बाहुल्य है तथा क्रूरता की हद है। एक शब्द में वह 'क्रूकेड' है।

चन्द्रमाधव जैसे व्यक्ति का चरित्र जिसमें सद्गुणों का विकास लगभग शून्य हो, किस कार्य-कारण परम्परा का निर्वाह करके बना है? ऐसे व्यक्तियों की नियति, क्या दूसरों के जीवन में विघ्न और अशांति फैलाने या ब्लैकमेल करने की नियत से एक भद्दे अनुकृति के रूप में बनती है।

अज्ञेय ने उपन्यास के प्रारम्भ में ही दुख की अनुभूति को वाणी देने का प्रयास किया है। सम्भवतः दुख से ही मुक्ति की नियति बनी है।

"दुख सबको मांजता है
और -
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु -
जिनको मांजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।"[1]

पुनः भुवन, रेखा और गौरा की नियति को चित्रित करने के लिए अज्ञेय[2] ने रेखा के माध्यम से अतीत का परिचय अपने वर्तमान में निम्न अर्नेस्ट डाउसन की पंक्तियों द्वारा रेखांकित किया है :

---

1. नदी के द्वीप, प्रारम्भिक पृष्ठ.

2. वही, पृ0 115.

- तुमने एक ही बार वेदना में मुझे जना था, माँ,
  पर मैं बार-बार अपने को जनता हूँ।
  और मरता हूँ।
  पुनः जनता हूँ और पुनः मरता हूँ।
  और फिर जनता हूँ,
  क्योंकि वेदना में मैं अपनी ही माँ हूँ।

'नदी के द्वीप' के कैनवस को लेकर, उसके समाज के कटाव को लेकर बहुत कुछ कहा गया है। कुछ आत्म-केन्द्रित, असाधारण व्यक्तियों की अनुभूतियों के घात-प्रतिघात की कथा के रूप में इसे चित्रित करते हुए इसको एक संकीर्ण एवं समाज-निरपेक्ष रचना की संज्ञा कुछ आलोचकों ने दी है। इस प्रकार की प्रतिक्रिया केवल उन लोगों की ही हो सकती है जो अपनी धारणा, अपने पूर्वाग्रहों से इतने ग्रस्त हैं कि कोई रचना अपनी समग्रता में उन्हें दिखाई नहीं पड़ती। जैसा पूरे विश्लेषण में छनकर ध्वनित होता है, 'नदी के द्वीप' व्यक्तित्व की रचना का एक अद्वितीय प्रयास है।[1] यहाँ पर डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी[2] की इस मान्यता का विशेष महत्व है : "पीड़ा और प्रेम के माध्यम से - जो मानवीय चरित्र के विशिष्ट अंग हैं - और उनसे व्युत्पन्न सर्जनात्मक उर्जा के बीच से व्यक्तित्व परिपूर्णता स्वायत्त करने की चेष्टा अज्ञेय के उपन्यासों की मूल वस्तु हैं।

नदी के द्वीप का अंत विवाह की औपचारिकता में नहीं, प्रतीक्षा के क्षणों में है जिसे अज्ञेय[3] ने बहुत ही मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है, "मूल्यवान और सम्पृक्त

---

1. राम कमल राय, अज्ञेय सृजन और संदर्भ, पृ० 130.
2. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 79.
3. नदी के द्वीप, पृ० 336.

क्षण, क्योंकि प्रतीक्षा के क्षण – वह प्रतीक्षा चाहे कितनी लम्बी हो, कर्म की इस अजस्र – प्रवाहिनी नदी से लम्बी, भुवन प्रतीक्षा करेगा, जैसे कि निस्सन्देह, गौरा भी प्रतीक्षा करेगी -------- क्योंकि प्रतीक्षाएं भी अजस्र अनाद्यन्त काल की नदी में स्थिर, सिमित समय के द्वीप हैं ।

नरेन्द्र कोहली[1] के मतानुसार अज्ञेय के उपन्यासों में शैली की विशिष्टता तथा गरिमा है और चिन्तन में संभ्रान्तता । साहित्य हेतु के रूप में उन्होंने प्रतिभा को मान्यता दी है जो कि सर्वथा शास्त्रीय हेतु है । उनका स्वीकृत प्रयोजन अहं की तुष्टि है जो प्रकृति में नवीन न होते हुए भी नवीन संज्ञा से विभूषित है ।

इस उपन्यास का अंत शेखर से भिन्न है और नियतिबोध की दृष्टि से नियतिवादी न होकर भाग्यवादी है । गौरा और भुवन के अंतिम अंश दोनों को ही भाग्यवादी बनाते हैं । गौरा ने तो भुवन को ही अपनी नियति मान ली और उसके भाग्य में ही अपना भाग्य नितांत भारतीय स्त्री की तरह । रेखा और चन्द्रमाधव अपने व्यक्तित्व के कारण नियति का वरण करते हैं । अपने पत्रों से उसने नियति के स्वीकार का नहीं चुनाव का बोध व्यक्त किया है । एक प्रकार से वेदना को ही नियति मान लिया है । उपन्यासों की रचना में जो अन्तर है इस बोध के कारण ही है ।

3. अपने-अपने अजनबी

अज्ञेय का तीसरा उपन्यास अपने-अपने अजनबी ।1961। हिन्दी में सर्वथा एक नये प्रकार का उपन्यास है, क्योंकि मृत्यु के माध्यम से इसमें काल के माप को अनुभव से जोड़ दिया गया है । 'शेखर : एक जीवनी' में सम्भव मृत्यु के साक्षात्कार से व्यक्ति द्वारा अपने जीवन की सिद्धि का अनुचिन्तन है, यहाँ 'जीवन-मात्र के

---

1. नरेन्द्र कोहली, हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धांत, पृ0 173.

नबो में मृत्युमात्र का स्थान' प्रदर्शित है ।[1]

इस उपन्यास में मनोविज्ञान और अस्तित्ववाद दोनों का सुंदर समन्वय है या यों कहा जाय कि अस्तित्ववादी दर्शन सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया में उभारा गया है । इसमें एक विशेष परिस्थितियों में पड़े हुए दो पात्रों की मानसिक अवस्था का सूक्ष्म निरूपण है । मृत्यु की नियति को जानते हुए उससे मुक्त होने या उबरने का वर्णन है ।

लेखक ने इस उपन्यास को तीन उपशीर्षकों में विभाजित किया है - 1. योके और सेल्मा 2. सेल्मा 3. योके ।

'योके और सेल्मा' में बर्फ से ढके घर में साथ साथ हुई योके और सेल्मा की मानस-कथा है । 'सेल्मा में' 'फ्लैश-बैक' द्वारा सेल्मा के अतीत जीवन की कहानी कही गयी है । 'योके' में योके के जीवन का अप्रत्याशित अंक दिखाया गया है ।[2]

योके अपने प्रेमी पाल के साथ पहाड़ की सैर करने आयी थी और वह अपने प्रेमी से अलग होकर सेल्मा के इस मकान में अतिथि की तरह ही आयी थी कि बर्फ की चट्टानों से घर ढक गया । घर के चारों ओर बर्फ का पहाड़ होने से बाहर निकलने का कोई उपाय नहीं रहा । अतः बाध्य होकर दोनों पात्रों को घर की कब्र में कुछ दिनों के लिये रहना पड़ता है । जबकि दोनों ही एक दूसरे के लिये अजनबी हैं । मृत्यु एक अटल सत्य है जिसकी परिकल्पना से दोनों ही सिहर उठती हैं । ऐसी स्थिति में योके के मन में एक प्रश्न उभरता है कि - "क्या वह सीधे-सीधे उनसे पूछ ले कि उनके मन में क्या है ? क्या सचमुच आन्टी सेल्मा का यही

---

1. डा० नवल किशोर, आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता, पृ० 95.

2. डा० राम दरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ० 121.

अनुमान है कि वे दोनों अब बचेंगी नहीं - यही बर्फ से ढंका हुआ का० का बंगला उनकी कब्र बन जायेगा ? बल्कि कब्र बन क्या जायेगा, कब्र तो बनी बनायी तैयार है और उन्हीं को मरना बाकी है । कब्र समय से ही बन गयी है - उन्हें ही मरने में देर हो गयी है - इस काल - विपर्यय के लिये निश्चय ही विधि को दोष नहीं दिया जा सकता ।[1]

डा0 गोपाल राय[2] का मत है कि "योके और सेल्मा स्त्री पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने जीवन, मृत्यु, वरण की स्वतंत्रता, आस्था आदि से संबंधित प्रश्नों पर विचार किया है। योके और सेल्मा एक दूसरे से सर्वथा अपरिचित, भिन्न वय, स्वभाव और विचारों की दो महिलायें आकस्मिक रूप से बर्फ से दबे एक मकान में बिना चाहे रहने को बाध्य होती हैं । इससे एक विचार निकलता है कि मनुष्य काफी हद तक प्रकृति का, परिस्थितियों का, दास है और उसकी विवशता और उससे उत्पन्न घुटन, ऊब, निराशा आदि उसकी नियति है ।

योके सेल्मा के बारे में सोचती है, सेल्मा इतनी निश्चिंत क्यों है ? क्यों नहीं उसे मृत्यु भय लगता है और तब वह अपने आप ही उस बुढ़िया के बारे में यह सत्य पा लेती है कि सेल्मा भी काल में जीती है जैसे कि हम सब जीते हैं, लेकिन वह मानों किसी एक काल में नहीं जीती समूचे काल में जीती है, मानो वहां फिर काल का प्रवाह नहीं है, उसमें कुछ भी आगे पीछे नहीं है बल्कि सब एक साथ है ।

- समय मात्र अनुभव है, इतिहास है । क्षण वहीं है जिसमें अनुभव तो है लेकिन जिसका इतिहास नहीं है, जिस का भूत-भविष्य कुछ नहीं है, जो शुद्ध वर्तमान है इतिहास से परे स्मृति के संसर्ग से अदूषित, संसार से मुक्त । अगर ऐसा नहीं है, तो वह क्षण नहीं है, क्योंकि वह काल का कितना ही छोटा खण्ड क्यों न हो उसमें

---

1. अपने-अपने अजनबी, पृ0 11.
2. डा0 गोपाल राय, अज्ञेय और उनके उपन्यास, पृ0 103.

मेरा जीना काल सापेक्ष जीना है । ऐतिहासिक जीना है । यह बिन्दु नहीं है रेखा है, रेखा परम्परा है और क्षण परम्परायुक्त होना चाहिये ।[1]

बर्फ से ढका हुआ घर संसार है जो बन्द है जहाँ आना और जहाँ से निकल जाना दोनों, अपनी इच्छा से नहीं होता । सार्त्र ने चारों ओर से घिरे नरक को इसका प्रतीक बनाया है । मनुष्य के लिए सबसे सुख होता है - वरण की स्वतंत्रता और वही वह नहीं प्राप्त कर पाता - यहाँ तक कि मृत्यु के वरण में भी उसे स्वतंत्रता नहीं है । इस बन्द कक्ष में हम एक-दूसरे के साथ रहने को मजबूर होते हैं, बिना किसी प्रेम के, सहानुभूति के, सहयोग के, एकदम अजनबी की तरह, हम कहीं जा भी नहीं सकते ।[2]

योके कहती है : 'आण्टी आपको क्या मेरा यहाँ रहना कष्टकर लगा । -------- अगर वैसा है तो मुझे दुख है, पर मेरी लाचारी है । यह तो मैं नहीं कह सकती कि मैं अभी चली जाती हूँ । यह मेरे बस का होता - ।'

बुढ़िया ने सहसा गम्भीर होकर कहा : 'कुछ भी किसी के बस का नहीं है, योके । एक ही बात हमारे बस की है - इस बात को पहचान लेना । इस से आगे हम कुछ नहीं जानते ।'[3]

नियतिबोध की यह परिभाषा है चाहे उससे मुक्ति का प्रश्न हो या स्वीकार का । सेल्मा का तात्पर्य ही यही है कि नियतिबोध में ही मुक्ति है ।

एक स्थल पर सेल्मा योके से कहती है : 'हमें क्यों नहीं कुछ । जो हमारे भीतर नहीं है वह हम बाहर कैसे दे सकते हैं ? कुछी निखरी हुई, स्निग्ध, हँसती

---

1. अपने-अपने अजनबी, पृ0 20.

2. डा0 रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ0 124.

3. अपने अपने अजनबी, पृ0 25.

धूप - मैं बाहर उसकी कल्पना करती हूँ तो वह मेरे भीतर भी खिल आती है और मैं सोच सकती हूँ कि मैं उसे औरों को दे सकती हूँ। नहीं तो - कितना ठण्डा अँधेरा होता है उसके भीतर, जिसे मरना है और सिवा मरने के कुछ और नहीं करना है।'[1]

तेल्मा के ये निराशाजनक कथन उसकी नियति का परिचायक है। तेल्मा और योके, दोनों की उस कैद की अवस्था में एक ही नियति हो गयी थी - मृत्यु से साक्षात्कार। तेल्मा एक बार पहले भी प्रलयंकर बाढ़ के समय में इस साक्षात्कार के एक अनुभव से गुजरकर दृष्टि पा गई है। परन्तु युवती योके मृत्यु भय से पीड़ित है - प्रतिक्षण वह जीवन के लिए अधीर है। योके नियति से भयग्रस्त है उसका बोध करने से इनकार करती है लेकिन तेल्मा तो नियति से साक्षात्कार ही कर रही है।

योके तेल्मा से कहती है: 'स्वतंत्रता मुझे भी चाहिए। यहाँ मैं अपनी इच्छा से कैद नहीं हुई हूँ, और न बीमार आदमी से सेवा लेकर स्वस्थ आदमी अपने को स्वतंत्र महसूस कर सकता है।'[2]

संसार की नियति कुछ और ही है और मनुष्य की इच्छा कुछ और मनुष्य चाहता है कि वह स्वतंत्र रहे परन्तु यह उसके बस का नहीं है। तेल्मा एक स्थान पर योके से कहती है: 'मेरी बीमारी की बात बार-बार दोहराने की जरूरत नहीं है - मैं जानती हूँ कि मैं बीमार हूँ। मैं क्या जानबूझ कर हुई हूँ, या कि तुम्हें सताने के लिये बीमार हुई हूँ? और स्वतंत्रता - कौन स्वतंत्र है? कौन चुन सकता है कि वह कैसे रहेगा, या नहीं रहेगा? मैं क्या स्वतंत्र हूँ कि बीमार न रहूँ - या कि अब बीमार हूँ तो क्या इतनी भी स्वतंत्र हूँ कि मर जाऊँ? मैंने चाहा था कि अन्तिम दिनों में कोई मेरे पास न हो। लेकिन वह भी क्या मैं चुन सकी? तुम

---

1. अपने-अपने अजनबी, पृ० 32.
2. वही, पृ० 40-41.

क्या समझती हो कि इससे मुझे तकलीफ नहीं होती कि जो मैं अपनों को भी नहीं दिखाना चाहती थी उसे देखने के लिए भगवान ने - एक अजनबी भेज दिया ।

योके का मित्र पाल जब उसे छोड़कर चला जाता है तो योके उस पर अपना कोई निर्णय नहीं देती कि वह कृतघ्न था या कुछ और । पाल को इस बात की स्वतंत्रता थी कि वह आए या न आए । योके ऐसा इसलिये नहीं करती कि वह मात्र अपनी पूर्ण स्वतंत्रता एवं अस्तित्व के लिए चिन्तित रहती है । वह सोचती है, "एक धुंधली रोशनी - एक ठिठका हुआ निःसंग जीवन । मानो घड़ी ही जीवन को चलाती है, मानो एक छोटी सी मशीन ने, जिसकी चाबी एक हमारे हाथ में है, ईश्वर की जगह ले ली है । और हम हैं कि हमारे इतना भी वश नहीं है कि यंत्र को चाबी न दें, घड़ी को रूक जाने दें । ईश्वर का स्थान हड़पने के लिये यन्त्र के प्रति विद्रोह कर दें और अपने को स्वतंत्र घोषित कर दें ।[1] योके इस बात को लेकर बराबर अन्तर्विरोध का शिकार बनी रहती है ।

सेल्मा जो एक कैन्सर से पीड़ित वृद्धा है, पहले से ही मृत्यु की प्रतीक्षा में जी रही थी । यह बर्फ का आच्छादन उसके निकट कोई नई भयानकता लेकर नहीं उपस्थित हुआ है इसलिये उसमें जो एक मृत्यु से असम्पृक्तता है, उसकी एक तात्कालिक पृष्ठभूमि भी है परन्तु सेल्मा की जीवन दृष्टि भी भिन्न है ।[2]

सेल्मा योके से एक भयावह अतीत के बाद का दृश्य बताती है जिसमें केवल पुल के निचले हिस्से की तीन दुकानें बाढ़ ग्रस्त होने से बच जाती हैं । उसकी, यान की तथा फोटोग्राफर की । परिस्थिति वश वे साथ हो जाते हैं जबकि वे तीनों ही आपस में एक-दूसरे के लिए अजनबी थे ।

---

1. अपने-अपने अजनबी, पृ0 15.
2. राम कमल राय, अज्ञेय, सृजन और संघर्ष, पृ0 135.

फोटोग्राफर भूख से मरता रहता है लेकिन कोई उससे सहानुभूति एवं करुणा की आवश्यकता नहीं समझता, क्योंकि वे सब अलग-अलग अपने अस्तित्व के प्रति चिंतित हैं । सेल्मा को एकाएक ऐसा लगा कि दुनियां का मतलब और कुछ नहीं है, सिवा इसके कि एक वह है और बाकी ऐसा सब है कि वह नहीं है ।

- उसमें और इस बाहर में एक मौलिक विरोध है जिसे पकड़े रहना है ; वही ध्रुव है और उसे पकड़े रहना का सामर्थ्य ही जीवन है ।[1]

पीने का पानी न मिल पाने पर, फोटोग्राफर बाढ़ का गंदा पानी पीने को मजबूर हो जाता है । पेचिश हो जाती है और वह दुकान में आग लगाकर नदी में कूद कर मर जाता है । फोटोग्राफर की नियति और मृत्यु की विवशता का चित्रण इस उपन्यास में अज्ञेय ने बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है ।

इधर सेल्मा कितनी स्वार्थी बन जाती है कि जब यान अपनी अंतिम पूंजी से खरीदी हुई मांस की बोटी उससे खरीदता है, वह अपने मुनाफे को उस स्थिति में भी नहीं छोड़ पाती ।

- यान सेल्मा से कहता है "इसीलिए साझा करने आया हूं । अपनी अंतिम पूंजी देकर यह अंतिम भोजन मैंने खरीदा है । इसे अकेला नहीं खा सकूंगा । ' यान पुनः बताता है, 'कि इसे पकाना भी कुछ आसान नहीं था - फोटोग्राफर की जली हुई दुकान की आंच पर ही यह पका है । इसे जरूर ही बहुत स्वादु होना चाहिए- मेरे जीवन के मोल यह खरीदा गया और फोटोग्राफर के जीवन के मोल पक सका ।[2]

डा० सुरेश सिनहा के शब्दों में, "यह इसलिए आवश्यक व्यवहार था, क्योंकि मनुष्य का पूर्ण अस्तित्व हो । उसे किसी दबाव या परिस्थितियों द्वारा खण्डित

---

1. अपने-अपने अजनबी, पृ० 71.
2. वही, पृ० 80.

न किया जा सके । ऐसे में आत्म हत्या या मृत्यु से क्या अंतर पड़ता है ? अस्तित्ववादी मानव मूल्यों का यह एक प्रमुख तत्व है, जिस पर - व्यंग्य कसा गया है ।[1]

यान का यह अंतिम भोजन उनके लिए एक नई साझेदारी की आधारशिला बन जाता है, जिस पर उनकी अगली गृहस्थी की नींव पड़ती है, तीन-तीन संतानें जन्म लेती हैं । तब जाकर यान मरता है और सेल्मा कैन्सर के कारण मर जाती है ।[2]

सेल्मा की मृत्यु पर योके फिर अपने अस्तित्व के बारे में सोचती है -

-'क्या कहीं भी ईश्वर है, सिवा मानवों के बीच के इस परस्पर क्षमा-याचना के सम्बन्ध को छोड़कर' यह क्षमा तो अभ्यास नहीं है, याचना भी अभ्यास नहीं है ; तब यह सच है और ईश्वर है तो कहीं गहरे में इसी में होगा -------- पर क्या क्षमा, कैसी क्षमा, किससे क्षमा ? मैं जो हूँ वही हूँ ।[3]

योके सतत् मृत्यु-भय से आक्रान्त रहने वाली है और एक भयानक अनास्था, कुंठा तथा वैराग्य घर कर जाता है । योके की 'मृत्यु गंध' एवं मृत्यु की प्रतीक्षा की त्रस्तता उपन्यास में अधिक उभरकर सामने आती है ।

सेल्मा की बातें योके को याद आती हैं - वरण की स्वतंत्रता कहीं नहीं है, हम कुछ भी स्वेच्छा से नहीं चुनते हैं । ईश्वर भी शायद स्वेच्छाचारी नहीं है - उसे भी सृष्टि करनी ही है क्योंकि उन्माद से बचने के लिए सृजन अनिवार्य है ; वह सृष्टि नहीं करेगा तो पागल हो जायेगा ।[4]

---

1. डा0 सुरेश सिनहा, हिन्दी उपन्यास, पृ0 313.
2. रामकमल राय, अज्ञेय, सृजन और संघर्ष, पृ0 136.
3. अपने-अपने अजनबी, पृ0 94.
4. वही, पृ0 95.

योके की कहानी की तार्किक परिणति ईश्वर के निषेध और मृत्यु की वास्तविकता के स्वीकार में भी हो सकती थी, पर लेखक के इस चुनाव में उसे धार्मिक आस्था में पहुँचा देता है। वह एक 'अच्छे आदमी' की साक्षी में 'माफी माँगते हुए' और माफ करते हुए मरती है। कैसे वह आस्था को पाती है व कैसे जगन्नाथन अच्छा आदमी है ? आस्था अन्ततोगत्वा अहेतुक ज्ञान है, उसे कहीं पहुँची दिखाने के लिए ही जगन्नाथन का आविर्भाव किया गया है।[1]

- एकाएक आगन्तुका ने अपने निचले होंठ से चिपका हुआ सिगरेट अलग किया और जगन्नाथन के खरीदे हुए पनीर में उसे रगड़कर बुझा दिया, फिर अनमने भाव से सिगरेट को पनीर में ही खोंस कर उसने जगन्नाथन की ओर देखा।[2]

ऐसा करके जब योके जगन्नाथन को क्रुद्ध नहीं कर पाती तो सहसा उसे लगता है कि वह उस अच्छे आदमी को पा गई, जिसके समक्ष अब मर कर वह अपने जीवन की अन्तिम सिद्धि प्राप्त कर लेगी। योके जगन्नाथन से थोड़ा हांफ कर बोली :-

"मैं चाहती थी कि मैं किसी अच्छे आदमी के पास मरूं। क्योंकि मैं मरना नहीं चाहती थी - कभी नहीं चाहती थी।" फिर थोड़ा रुक कर उसने कहा : "मुझे माफ कर दो नाथन्। तुम जरूर मुझे माफ कर दोगे। तुम अच्छे आदमी हो। बताओ - अच्छे आदमी हो। न ?

उसने कहा, "अब मुझे छोड़कर मत जाओ - यही तो मैंने चुना है।"[3]

---

1. डा० नवल किशोर, आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता, पृ० 99.

2. अपने अपने अजनबी, पृ० 99.

3. वही, पृ० 102.

योके जेब से कुछ निकालकर जल्दी से मुंह में डाल कर अपने जीवन का अंत कर देती है ।

डा० बच्चन सिंह[1] के अनुसार सेल्मा ने साक्षे से, समर्पण से दूसरे को अपने से संबद्ध करके क्षण की परम्परा से संपृक्त करके नया अर्थ पूर्ण जीवन जिया । इसके अभाव में योके स्वतंत्रता के नाम पर आत्महत्या को चुन सकी । यह दर्शन मूलतः भारतीय है पर 'मेटाफिजिकल' होने की वजह से इसमें सब कुछ बौद्धिक स्तर पर घटित होता है स्वयं जीवन जीने के स्तर पर नहीं ।

नियति के साक्षात्कार के कारण सेल्मा, योके और मृत्यु दोनों के साथ नया सम्बंध बना सकी है बल्कि सम्पन्न हुई है जबकि उसके अस्वीकार के कारण मृत्यु के भय से ग्रस्त रही है । सेल्मा के लिए मृत्यु थी ही नहीं, योके के लिए मृत्यु ही थी । इसलिए कि वह कोई नियति बिन्दु नहीं निर्धारित कर सकी थी, अतीत और भविष्य के चक्कर में थी - यानी भाग्य के ।

नियति का सम्बन्ध वर्तमान के बोध से बनता है । वर्तमान केवल होता है - अनुभव किया जाता हुआ काल बल्कि अनुभव मात्र इस दृष्टि से इस उपन्यास में नियति भी विशुद्ध वर्तमान है । भाग्य का सम्बंध भविष्य से है या स्मृति से । बल्कि कहा जाय कि स्मृति और आकांक्षा ही नियति को भाग्य में बदलते हैं । 'शेखर एक जीवनी' के प्रारम्भ में ही अज्ञेय ने नियति और भाग्य के अन्तर को स्पष्ट कर दिया है । 'शेखर एक जीवनी' में भी वर्तमान के संदर्भ में ही नियति के प्रश्न को महत्व दिया गया है । लेकिन अज्ञेय ने यह कहीं-कहीं कहा है कि वर्तमान बोध ही नियतिबोध है । उपन्यासों की वस्तु, जिसमें आत्मकता निहित है ही यह प्रमाणित करती चलती है कि स्वतंत्रता की कामना और स्वतंत्र न हो पाने की

---

1. डा० बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 372.

विवशता का बोध नियति का साक्षात्कार है जिसके बगैर इन उपन्यासों का अध्ययन अधूरा रह जाता है। इन्हें अस्तित्ववादी संदर्भ में व्याख्यायित करना भी असम्भव है क्योंकि इन उपन्यासों में अन्तर्निहित मानवीयता ही मुख्य भावना भी है जो भारतीय मनुष्य होने की नियति का बोध कराती है।

--------::0::--------

उपसंहार

'नियति' शब्द का प्रयोग भारत में प्राय: भाग्य, दैव, प्रारब्ध, अदृष्ट, विधि आदि के पर्याय के रूप में किया जाता रहा है । नियति की सत्ता को लगभग विश्व की सभी विचार धाराओं ने स्वीकार किया है । इसे निरीश्वरवादी दार्शनिकों ने दूसरे रूप में चुनौती दी अवश्य परन्तु उन्होंने नियति को ही सर्वसत्ता मान लिया । विज्ञान के प्रभाव से इसकी परिभाषा जरूर बदली लेकिन इसकी सर्व-ग्रासिता में अन्तर नहीं पड़ा ।

मनुष्य की नियति का सम्बंध कितना मनुष्य से जुड़ा है और कितना नहीं जुड़ा है, इनके बीच का द्वन्द्व मानव-नियति का प्रमुख द्वन्द्व है । मनुष्य या पात्र अपने कर्मों से अपने नियति का साक्षात्कार करते भी हैं और नहीं भी कर पाते हैं । परिवेश को बदलने के क्रम में या स्वयं अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए मनुष्य संघर्ष करता है । कर्मफलवाद, मनुष्य के कर्म के परिणाम के प्रति चिंता का निषेध करता है तथा उद्योग करने को महत्व देता है । उद्योग करने पर यदि लक्ष्य की प्राप्ति न हो तो कहा जाता है कि यही 'नियति' थी । उपन्यास-रचना में व्यक्ति की नियति मानव-नियति का पर्याय बनकर प्रयोग में लाई जाती है । रचना का सम्पूर्ण बोध होना तथा सम्पूर्ण रचना का स्पष्ट होना ही साहित्य की दृष्टि से लेखक की नियति का बोध होना है । उपन्यास के भीतर 'नियति' पात्रों के कर्म और उसके परिणाम का सम्पूर्ण रचना में एक वाक्य की तरह सम्बद्ध होना ही महत्वपूर्ण है ।

धर्म भावना अथवा ईश्वर की परिकल्पना का रूप-परिवर्तन वैज्ञानिक चिंतन द्वारा निरंतर होता जा रहा है । जिसके कारण मानव का मूल्य बढ़ता गया और मानवेतर का मूल्य घटता गया है । विज्ञान ने नैतिकता को ईश्वर-परक न मानकर मानव-सापेक्ष मान लिया है ।

मनुष्य की क्रियाशीलता और संघर्ष का प्रभाव उसके कार्य प्रणाली में भाग्य अथवा नियति को कोई स्थान नहीं देता । मनुष्य समाज या परिवेश में केवल रहकर

ही नहीं बल्कि उसका अस्तित्व इस बात को पुष्ट करता है कि वह सोद्देश्य निवास करता है उसकी 'ईगो' इस बात की याद दिलाती रहती है कि उसकी भी सार्थकता है। अपनी इस सार्थकता, अस्तित्व एवं ईगो की संतुष्टि के लिए वह क्रियाशील रहता है, संघर्षरत रहता है। संघर्ष प्रकृति से, परिस्थिति से, परिवेश से, समाज और स्वयं अपने से भी।

मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है और स्वतंत्र है अपने निर्णय लेने के लिए। मनुष्य एक कर्मशील प्राणी है इसलिए वह निरंतर क्रियाशील रहकर जीवन पथ पर संघर्षरत है। मनुष्य के कर्म और संबंध ही उपन्यासों में जीवन समस्याओं का निर्माण करते हैं। सजगता का बोध और अपर्याप्तता का भाव मनुष्य को अपनी नियति से जोड़ता है। परन्तु यदि समाज में स्थिरता नहीं तो मनुष्य वरण करने को स्वतंत्र नहीं, वह अपनी नियति का साक्षात्कार कैसे कर सकता है?

'साहित्य और नियतिबोध : अन्तः सम्बन्ध और अभिव्यक्ति विधान' के अन्तर्गत यह पुष्ट किया गया है कि साहित्य की सभी विधाओं की तुलना में उपन्यास सबसे सशक्त और उपयुक्त विधा है जिसमें मानव जीवन का सर्वांगीण उद्-घाटन सम्भव है। उपान्यास को मनुष्य की नियति के सार्थक एवं समग्र अध्ययन को भाषा देने वाली माना गया है।

उपन्यासों से कुछ उद्धरणों को देकर विभिन्न पहलुओं पर विवेचना की गई है जिसमें मानव सम्बन्ध और नियतिबोध का विवरण दिया गया है। यह सम्बन्ध कई रूपों में स्थापित हो सकता है जैसे स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, पिता-पुत्र, पति-पत्नी आदि। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला - आंचल' में डा० प्रशान्त और कमली तथा लछमी और बालदेव के परस्पर आकर्षण का रूप प्रदर्शित किया गया है। पति-पत्नी सम्बन्ध, नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बंधु था' में श्रीधर और उसकी पत्नी सरस्वती के माध्यम से दर्शाया गया है। पिता-पुत्र के शाश्वत सम्बन्ध को

होरी और गोबर के द्वारा 'गोदान' में रेखांकित किया गया है । 'त्यागपत्र' में जैनेन्द्र ने प्रमोद और मृणाल को लेकर बुआ-भतीजे के सम्बन्ध को अभिव्यक्त किया है । 'अमृत और विष' उपन्यास में अमृत लाल नागर ने बाढ़ के दृश्य का भयावह वर्णन करके यह दर्शाया है कि संकट की घड़ी में किस प्रकार लोगों में परस्पर मानवता का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है ।

'प्रेमचन्द और उनके पूर्व के उपन्यासों में नियतिबोध' विषय पर प्रकाश डाला गया है । इस युग के उपन्यासों में कथा के माध्यम से संभव-असंभव घटनाओं एवं प्रसंगों की अवतारणा पाठकों के मनोरंजन हेतु की गई है । जासूसी, तिलस्मी, ऐयारी, ऐतिहासिक अथवा सामाजिक उपन्यास जो भी इस युग में लिखे गये वे सभी घटना या चमत्कार पर आधारित थे ।

'भूलक्ष्मी' और 'चम्पा' उपन्यासों में कथा प्रवाह केवल सस्ते मनोरंजन का ही नहीं है बल्कि भाग्यवाद के माध्यम से भविष्य में होने वाली परिवर्तनकारी घटनाओं के द्वारा संकेत किया गया है कि केवल वर्तमान ही सत्य नहीं है, अतीत भी इससे अछूता नहीं है । इन कृतियों में तत्कालीन समाज का दृष्टिकोण अव्यक्त रूप से अन्तर्भूत है कि सत्य और पुण्य कर्म के प्रति निष्ठा का परिणाम लाभदायक है ।

'ईश्वर पर विश्वास, कर्मफलवाद' विषय पर 'परीक्षा गुरु' नामक उपन्यास बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि इसमें सर्वप्रथम यथार्थ जीवन व्यापारों को कथा का विषय बनाया गया । 'परीक्षा गुरु' में परिश्रम और सूझ-बूझ के महत्व को उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है कि गलत कार्य और दुष्ट संगति का परिणाम भयानक होता है । अच्छे कर्म का अच्छा और बुरे का बुरा परिणाम की चेतना में लेखक ने सोच-विचार का तत्व डालकर उसका आधुनिकीकरण करने का प्रयत्न किया है । यह उपन्यास भाग्यवादी निष्क्रियता का नहीं बल्कि मनुष्य केन्द्रित निष्काम कर्म का प्रतीक है । इसमें नियति को मनुष्य से संदर्भित किया गया है ।

'परिवेश को बदलने की क्षमता' बिन्दु पर गोदान में होरी का चित्रण करके प्रेमचन्द ने तत्कालीन परिवेश में होरी के सामर्थ्य एवं पुरुषार्थ द्वारा उसे बदलने का अथक प्रयास की गाथा को रेखांकित किया है। समसामयिक सामाजिक परिवेश जो रूढ़िवादी और परम्परागत मूल्यों पर स्थापित था वहां होरी ने मानवतावादी दृष्टिकोण से झुनिया को अपनाकर एक अदम्य साहस का कार्य किया था। होरी के इस कार्य की उस परिवेश में प्रशंसा न हो सकी। अपना सर्वस्व दांव पर लगाकर उसे रंचमात्र भी मलाल न था कि वह परिस्थितियों से समझौता करके अपनी मर्यादा को कुत्सित कर सकता। जिस इकलौते पुत्र गोबर की इच्छा को रखने के लिये उसने कितना त्याग किया, वह भी उससे अलग हो गया। अपनी नियति को जानते हुए भी होरी उसे बदलने की कोशिश में टूटता चला जाता है। होरी हर विषम परिस्थिति में परम्परागत धारा प्रवाह के दिशा में जाकर विरोध करता है - दुर्व्यवस्थाओं का रूढ़िवादी परम्पराओं का, और जानते हुए इसका परिणाम भोगता है।

देवकी नन्दन खत्री, किशोरी लाल गोस्वामी आदि के उपन्यासों में यथार्थ का वर्णन है ही नहीं। घटनाओं को कौतूहल, जिज्ञासा, मनोरंजन और आकस्मिकता के तत्वों को जोड़कर प्रस्तुत करने से रोचकता जरूर पैदा हुई है। परन्तु जीवन यथार्थ या युग-यथार्थ का कोई स्पष्ट विधान नहीं है। इसलिए उस संवेदना का विकास ही नहीं हुआ जिससे नियतिबोध होता है। चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता सन्तति तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासों की श्रेणी में आते हैं। इन रचनाओं में कथानक प्रायः एक सा होता है। जासूसी उपन्यासों में अपहरण, हत्या, डाका या चोरी आदि का अत्यंत कौशल से सूक्ष्म परीक्षण और विश्लेषण करके पता लगाने वाले नायक का सविस्तार चित्रण मिलता है। उसमें न तो यथार्थ ही चित्रित होता है और न नियतिबोध।

जयशंकर प्रसाद का 'कंकाल' तितली की तुलना में नियतिवादी उपन्यास

है। इसमें नियतिबोध नहीं नियतिवाद है। क्योंकि किसी पात्र को नियति का बोध नहीं है - कृष्ण शरण को छोड़कर।

ऐतिहासिक तथ्यों के साथ-साथ कई प्रेम-प्रसंगों का सजीव चित्रण 'गढ़-कुण्डार' में मिलता है। अग्निदत्त और सोनवती एक-दूसरे को बहुत प्रेम करते थे परन्तु सोनवती की नियति अग्निदत्त को पाने में न थी। अतः वह राजधर की होकर रह गयी। गढ़-कुण्डार का प्रधान विषय है - युद्ध और प्रेम।

'चन्द्रकान्ता, संतति से गोदान तक' की औपन्यासिक यात्रा प्रेमचन्द तथा उनके पूर्व के अवधि तक की दूरी तय करता है। 'भाग्यवाद' से 'नियतिबोध' की दिशा में धीरे-धीरे परिवर्तन आता गया है। नियतिबोध यथार्थ की समझ और मानवीय पक्ष की विवशता के द्वन्द्व से पैदा होता है जबकि भाग्यवाद अदृश्य या चिरन्तन शक्ति के आगे समर्पण से जिसमें मनुष्य मात्र निमित्त होता है पशु या वस्तु की तरह विवश अस्वतंत्र।

'निर्मला' उपन्यास की प्रमुख कथा निर्मला की ही है जिसकी शादी डाक्टर लड़के से निश्चित होती है। परन्तु पिता की आकस्मिक मृत्यु से कथा में मोड़ आता है और दहेज न मिलने की सम्भावना से शादी कट जाती है। अतः निर्मला की नियति एक दुहाजू वकील, तीन पुत्रों के पिता - तोताराम से अनमेल-विवाह को विवश करती है। वह परिवार के सुखमय जीवन के लिए सतत प्रयत्नशील रहती है परन्तु परिस्थितियों के घेरे में उसकी नियति दुख और कष्टपूर्ण जीवन में बदल जाती है और उसकी मृत्यु हो जाती है।

'गबन' में रतन, जोहरा और जालपा की दुखद कहानी है। विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार नियति इनकी जीवन-नौकाओं का दिशा मार्ग निर्धारित करती है और कैसे संघर्ष करती है, यही प्रेमचन्द ने दिखाने का प्रयास किया है। जालपा सत्य और न्याय के कठिन मार्ग पर नियति स्वरूप प्राप्त यातनाओं को सहर्ष

स्वीकार करती है । परन्तु पति परमेश्वर मानकर रमानाथ द्वारा अन्यायपूर्ण निर्णय को कभी स्वीकार नहीं करती ।

'चन्द्रकान्ता, संतति से गोदान' तक की इस यात्रा में 'गोदान' मानव नियति का इस दृष्टि से साक्षात्कार करने वाला उपन्यास है । प्रेमचन्द के उपन्यासों में यथार्थ का बोध और उससे टकराने की प्रतीति पात्रों में है । नियति का साक्षात्कार और उससे जूझने का संकल्प गोदान की गाथा है जो पहले के उपन्यासों में नहीं था । यहां तक कि 'निर्मला' और 'सेवा सदन' में भी नहीं है ।

इस दृष्टि से गोदान हिन्दी उपन्यास और भारतीय कृषक समाज की तत्कालीन स्थिति और चेतना का समग्र उपन्यास है । मातादीन और सिलिया प्रसंग सामंती और मानवीय दोनों ही मूल्यों को रेखांकित करता है । बदलते हुए यथार्थ से समायोजित न हो पाने की विवशता का दर्द ही 'गोदान' है ।

प्रेमचन्द के पश्चात् अर्थात् प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासकार यथार्थ के साथ-साथ मानव-मूल्यों मनोवैज्ञानिक व वैज्ञानिक दृष्टिकोणों को ध्यान रखते हुए कथा-साहित्य को विकसित करने के लिए प्रयत्नशील हैं ।

उपन्यासों में मानव-नियति का स्वरूप क्या है और उसका कैसे उद्घाटन किया गया है, ज्ञात करने के लिए प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नियतिबोध के विविध रूपों के अध्ययन के लिए निम्न बिन्दुओं पर कुछ विशिष्ट उपन्यासों को वर्गीकृत किया गया है :-

1. मानव बनाम परिस्थिति.
2. मनुष्य बनाम समाज.
3. व्यक्ति बनाम समाज.
4. व्यक्ति बनाम व्यक्तित्व.

'मानव बनाम परिस्थिति' प्रकरण में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का विवरण दिया गया है । लेखक ने चारित्रिक विकास को महत्व देते हुए कई योजनाबद्ध घटनाओं का क्रम से बाणभट्ट को कार्य करते हुए चित्रित किया है । परन्तु नियति के आगे बाणभट्ट नत मस्तक है । वह कई प्रतिज्ञायें भी करता है परन्तु नियति के वश में कितनी समस्याओं में उलझ जाता है । परिस्थितियों के वश में बाणभट्ट किस प्रकार भट्टिनी को बचाने के चक्कर में सैनिकों द्वारा घिर जाता है । नियति के चंगुल में किस प्रकार राजकुमारी से बंदिनी बनकर भट्टिनी, दुर्गम जीवन-यापन को विवश होती है ।

डा० रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ' एक यथार्थ उपन्यास है जिसमें स्वतंत्रता के बाद एक तराई क्षेत्र की वर्षा और बाढ़ से प्रभावित जन-जीवन का मार्मिक चित्रण किया गया है । मास्टर सुग्गन तिवारी के रूप में गाँव के छोटे किसानों की नियति ही है कर्ज और रेहन की वीभत्स छाया में संतप्त जीवन की पनाह । मास्टर की लड़की, गीता की शादी अर्थाभाव और गरीबी के कारण एक अधेड़ व्यक्ति से हो जाती है । एक गरीब परिवार की लड़की का जीवन गीता की नियति है । ससुराल वालों के दुर्व्यवहार और अत्याचार से उत्पीड़ित गीता बीमार पड़ जाती है, निमोनिया हो जाता है और समुचित इलाज न होने पर उसकी मृत्यु हो जाती है । बाँध भी पोख्ता नहीं बनाये गये जिससे दरारों से पानी बहकर कई दिशाओं में बह जाता है । यही जल टूट रहा है, यदि जल संयत कर एक दिशा में प्रवाहित किया जाता तो विद्युत पैदा होती । जिसका उपयोग गाँव के लिए होता परन्तु इस जल की नियति बाढ़ के भयावह रूप में गाँव की तबाही का हर साल कारण बनता है । इस दृष्टि से प्रतीक भी है सामन्ती व्यवस्था के टूटने का जिसकी पतनोन्मुखता का प्रमाण ही उपन्यास है । मानवीय विषमता परिस्थिति और तनाव के कारण धीरे-धीरे भाग्यवादी बनाकर कर्मशून्यता पैदा करती है ।

'भूले-बिसरे चित्र' में भगवती चरण वर्मा ने सविस्तार मनुष्य बनाम समाज का द्वन्द्व और संघर्ष चित्रित करने का सफल प्रयास किया है, किस प्रकार समाज से मनुष्य की नियति प्रभावित होती है। इस उपन्यास में एक व्यक्ति को केन्द्र में रखकर समय के परिवर्तन का चित्रण है। चार-पीढ़ियों का जिक्र किया गया है। जैदेई का जीवन अपने निर्मम पति और पुत्र के कारण, लाखों की सम्पत्ति होने के बावजूद भी नियति वश उपेक्षित रहता है और अन्त में वह मर जाती है। इस उपन्यास में लेखक ने परिवार से लेकर समाज और शासन तक के परिवर्तन को चित्रित किया है।

कहीं वह इसे नई पीढ़ी का करिश्मा जाहिर करता है और कहीं वह इसे नियति-परिवर्तन मान लेता है। नवल आई०सी०एस० बनने और रायसाहब की लड़की से शादी का स्वप्न छोड़कर, नियति के विधान स्वरूप सत्याग्रह में शामिल हो जाता है।

इसी शृंखला में फणीश्वर नाथ 'रेणु' का सुप्रसिद्ध उपन्यास 'मैला आंचल' है जिसमें पूर्णिया जिला के एक गांव की कथा का चित्रण किया गया है। एक लावारिश शिशु नियति के वश में एक दिन उस गांव में डाक्टर प्रशांत बनकर लोगों को जीवन दान देगा किसे पता था ? एक और सशक्त पात्र 'बावन दास' जो सत्याग्रही एवं स्वतंत्रता सेनानी है, महात्मा गांधी और पं० नेहरू के साथ जेल में रहा हो नियति के हाथों में पड़कर कुछ अराजक तत्वों द्वारा मौत का शिकार हो जाता है।

'अलग-अलग वैतरणी' शिवप्रसाद सिंह कृत एक आंचलिक उपन्यास है जिसमें ग्रामीण परिवेश 'करैता' गांव का सजीव वर्णन है। आजादी के बाद जीवन की विसंगतियों, परिवर्तनों, सच्चाइयों और प्रतिक्रियाओं का साक्षात्कार कराया गया है। धरमू सिंह एक ईमानदार व नेक इंसान है पर गरीबी उसके लिए अभिशाप बन जाती है और नियति की चपेट में आकर उसका परिवार तबाह हो जाता है।

जमींदार के अत्याचार के फलस्वरूप घर की कुर्की तक हो जाती है ।

'व्यक्ति बनाम समाज' के अन्तर्गत 'मानस का हंस' अमृतलाल नागर का बहु चर्चित उपन्यास है जो तुलसी चरित पर आधारित है । तुलसी एक साधारण मनुष्य जैसे जन्म से ही नियतिचक्र में आकंठ डूबे रहते हैं । वास्तव में यह उपन्यास मनुष्य के नियति को मानते हुए भी संघर्ष की गाथा है ।

इसी संदर्भ में 'दिव्या' यशपाल का ऐतिहासिक परन्तु कल्पना द्वारा रचा हुआ उपन्यास है । दिव्या एक कुलीन घर की पुत्री होकर भी नियति के बाहुपाश में जकड़कर किस प्रकार पहले दासी बनती है फिर वेश्या का जीवन व्यतीत करने के लिए समाज के द्वारा विवश की जाती है ।

पुनः इसी श्रृंखला में नरेश मेहता का प्रसिद्ध उपन्यास 'यह पथ बंधु था' चित्रित किया गया है । श्रीधर एक निष्ठावान अध्यापक है जो नियति के अधीन, सच लिखने पर नौकरी से इस्तीफा देने की स्थिति में आ जाता है । घर-परिवार के खर्चों और गरीबी को झेलने में अपने को सक्षम नहीं समझता और घर छोड़कर लापता हो जाता है । नियति का क्रूर मजाक का शिकार बनती है, उसकी धीर और सरल पत्नी सरो । पचीस वर्ष बाद जब वह आता है तो सरो कितनी यातनायें झेल चुकी होती है और संघर्ष करते करते टूट जाती है । तत्पश्चात् मृत्यु की गोद में चिर निद्रा में सो जाती है ।

'व्यक्ति बनाम व्यक्तिमन' के संदर्भ में जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित उपन्यास 'त्यागपत्र' महत्वपूर्ण है जिसमें प्रमोद अपनी बुआ मृणाल की करुण गाथा का यथार्थ साक्षात्कार करता है । जज होने के बावजूद मृणाल के साथ न्याय नहीं कर पाता। नियति के चक्र में बेकसूर मृणाल जीवन भर पराजित होने के बाद भी अपना विवेक बोध मरने नहीं देती । वह टूटती जाती है - उपेक्षित होने का करुण भाव लेकर । वह मर जाती है और जब प्रमोद का हृदय का आत्म विश्लेषण करके अपने को क्षमा नहीं कर पाता और पद से त्यागपत्र दे देता है ।

इसी क्रम में इलाचन्द्र जोशी का सुप्रसिद्ध उपन्यास 'जहाज का पंछी' वर्णित है जिसमें नायक नौकरी की तलाश में कलकत्ता जैसी महानगरी में पहुँचता है। नियति के थपेड़ों में पड़कर युवक कितनी यातनाओं के दौर से गुजरता है कभी पुलिस, कभी जेल, कभी अस्पताल आदि जगहों से। मिस ताइमन के चक्के में युवक शरीर बेचने के लिए बाध्य औरतों की दुर्गति देखकर दुखी होता है। युवक राँची में पागल एवं विक्षिप्त व्यक्तियों के कारणों का पता लगाता है। भाग्य वश वहाँ लीला से मुलाकात होती है और उसके जीवन संगी के रूप में वह अपार वैभव का स्वामी बनता है।

'अज्ञेय' के उपन्यासों में नियतिबोध का स्वरूप' प्रकरण में, शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप तथा अपने-अपने अजनबी का विवरण दिया गया है।

'शेखर एक जीवनी' में शेखर का विद्रोही व्यक्तित्व दर्शाया गया है। अज्ञेय, शेखर को युग-संघर्ष का प्रतिबिम्ब मानते हैं। उन्होंने लिखा है कि अथक कार्यशील प्राणियों में उनके सारे कृतित्व के नीचे छिपी हुई एक कठोर नियति रहती है। शेखर के सामने फाँसी की बीभत्स छाया उभरती है। मृत्यु की निश्चित सम्भावना को सामने पाकर शेखर सोचता है कि सभी मनुष्यों का, प्राणियों एवं चर-अचर संसार की कृतियों का एक न एक दिन मृत्यु का साक्षात्कार निश्चित है, जो उनकी नियति है।

बाल्यावस्था से ही शेखर घटनाओं के आधार पर तीन महती प्रेरणाओं का संकेत करता है - अहं, भय और सेक्स। शेखर का सम्पूर्ण जीवन इन्हीं तीन वृत्तियों पर अधिकार पाने का प्रयत्न करता है।

प्रकृति की अपूर्णता के विरुद्ध संघर्ष शेखर के क्रान्तिकारी जीवन की नियति बनती है। शेखर के जीवन में सरस्वती, शारदा, शशि आदि नारियाँ आती हैं, जिनके सान्निध्य में शेखर स्नेह एवं प्रेम के अनेक संवेदनाओं से अभिभूत होता है। उनके साथ बीते हुए उन स्नेह और प्रेम के क्षणों को खोना शेखर की नियति है।

'नदी के द्वीप' में एक दर्द भरी प्रेम कथा का चित्रण है जिसमें भुवन, रेखा, गौरा और चन्द्र माधव नियति की पारदर्शक डोरी से बंधे हुए हैं। रेखा के जीवन में भुवन आता है, हेमेन्द्र भी आता है परन्तु नियति से पराजित होकर, रेखा उनसे विमुख होकर उन्हें खो देती है। उनके जीवन की नियति नदी के सेतु सदृश है और स्वयं वे नदी के द्वीप भाँति हैं।

रेखा जीने की नियति को स्वीकार करती है परन्तु वह विवश हो जाती है कुट से। इस जीवन में उसे सब कुछ मिलकर भी कुछ नहीं मिल पाता। जबकि नियति भुवन और गौरा को वैवाहिक सूत्र में बांधने में सफल होती है।

'अपने-अपने अजनबी' में अज्ञेय ने मानव नियति के शाश्वत सत्य-मृत्यु के साक्षात्कार का सजीव वर्णन किया है। 'योके' और 'सेल्मा' बर्फ के नीचे घर में बंदी हो गयी हैं और मृत्यु की छाया में जीवन बिताने को विवश हैं। सेल्मा कैंसर से पीड़ित वृद्धा है उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है परन्तु योके युवा है जिसमें जीने की परम आकांक्षा है। योके भी मृत्यु को अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लेती है।

--------::0::--------

परिशिष्ट

क. हिन्दी के संदर्भ ग्रन्थ

अपने-अपने अजनबी : अज्ञेय
पंचम सं0, 1975, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, दिल्ली.

अधूरे-साक्षात्कार : नेमिचन्द्र जैन
द्वितीय सं0, 1979, वाणी प्रकाशन, दिल्ली.

अमृत और विष : अमृत लाल नागर
चतुर्थ सं0, 1976, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद.

अलग-अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह
तृतीय सं0, 1970, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद.

अज्ञेय, सृजन और संघर्ष : राम कमल राय,
प्रथम सं0 1978, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद.

अज्ञेय और उनके उपन्यास : डा0 गोपाल राय
संशो0 सं0, 1984, ग्रन्थ निकेतन, पटना.

अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या. : डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी
प्रथम सं0, 1972, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली.

आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास. : डा0 अतुल वीर अरोड़ा
प्र0सं0 सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद.

आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता : डा0 नवल किशोर
प्रथम सं0, 1977, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली.

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास. : डा0 बच्चन सिंह
प्रथम सं0 1978, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद.

आज का हिन्दी उपन्यास : डा0 इन्द्रनाथ मदान
प्रथम सं0

आत्मने पद : अज्ञेय
प्रथम सं0, 1960, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी.

आधुनिक साहित्य : नन्द दुलारे वाजपेयी
दूसरा सं0, संवत् 2013, भारती भण्डार, इलाहाबाद.

उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा : डा0 परमानन्द श्रीवास्तव
प्रथम सं0, 1976, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली.

कुछ विचार : प्रेमचन्द
1965, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद.

कंकाल : जयशंकर प्रसाद
बारहवां सं0, संवत् 2026, भारती भण्डार, इलाहाबाद.

कर्मभूमि : प्रेमचन्द
नवीन सं0, 1989, हंस प्रकाशन,

गबन	:	प्रेमचन्द नवीन सं0, 1985, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद.
गढ़-कुण्डार	:	वृन्दावन लाल वर्मा, सातवां सं0, 1974, मयूर प्रकाशन, झांसी.
गेरुआ बाबा	:	गोपाल राम गहमरी संवत् 1986, एस0एस0 मेहता एण्ड ब्रदर्स काशी.
गृह लक्ष्मी	:	गोपाल राम गहमरी प्रथम सं0 संवत् 1834, क्षेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई.
गोदान	:	प्रेमचन्द चौदहवां सं0, 1973, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद.
चन्द्रकान्ता	:	देवकीनन्दन खत्री दूसरा सं0, 1989, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.
चन्द्रकान्ता संतति (भाग 1 से 6 तक)	:	देवकीनन्दन खत्री दूसरा सं0, 1989, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.
चिन्तन के क्षण	:	विश्वेन्द्र स्नातक.
चम्पा उपन्यास	:	पं0 शिवनारायण द्विवेदी प्रथम सं0, 1834, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई.

जल टूटता हुआ : डा0 रामदरश मिश्र
छठाँ सं0, 1986, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली.

जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी
नवीन सं0 1968, लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद.

त्यागपत्र : जैनेन्द्र कुमार
प्रथम सं0 1974, पूर्वोदय प्रकाशन,
दिल्ली.

दिव्या : यशपाल
पि0सं0, 1968, लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद.

दर्शन-दिग्दर्शन : राहुल सांकृत्यायन
प्रथम सं0, 1944, किताब महल,
इलाहाबाद.

नदी के द्वीप : अज्ञेय
तीसरा सं0 1951, सरस्वती प्रेस,
इलाहाबाद.

नालन्दा विशाल शब्दसागर : न्यू इम्पीरियल बुक डिपो,
प्रथम सं0, दिल्ली.

निर्मला : प्रेमचन्द
प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी.

नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण : डा0 संगम लाल पाण्डेय
द्वितीय सं0 1985, सेन्ट्रल पब्लिशिंग
हाउस, इलाहाबाद.

परीक्षा गुरु : श्रीनिवास दास
दूसरा सं0, 1941 वि0,
गणपत कृष्णाजी का छापाखाना,
बम्बई.

प्रामाणिक हिन्दी कोश : रामचन्द्र वर्मा
द्वितीय सं0, हिन्दी साहित्य कुटीर,
बनारस.

प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प-विधान : कमल किशोर गोयनका
प्रथम सं0, 1974, सरस्वती प्रेस,
इलाहाबाद.

प्रेमचन्द के पात्र : कोमल कोठारी
प्रथम सं0, 1970, अक्षर प्रकाशन,
दिल्ली.

प्रेमचन्द पूर्व के कथाकार और उनका युग : डा0 लक्ष्मण सिंह बिष्ट
प्रथम सं0,

बलचनमा : नागार्जुन
द्वितीय सं0, 1956, किताब महल,
इलाहाबाद.

बाणभट्ट की आत्मकथा : डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी
तेरहवाँ सं0, 1981, राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली.

भूले-बिसरे चित्र : भगवतीचरण वर्मा
प्रथम सं0, 1959, राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली.

माधव-माधवी वा मदनमोहिनी (प्रथम भाग) : किशोरी लाल गोस्वामी
दूसरा सं0, 1979, छबीलेलाल गोस्वामी,
सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन.

मानस का हंस : अमृत लाल नागर
सातवाँ सं0, 1983, राजपाल एण्ड संस,
दिल्ली.

मानववाद और साहित्य : डा0 नवल किशोर
प्र0सं0, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली.

महाभारत : चित्रशाला प्रेस, 19[illegible] सं0, पूना.

मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु
तेरहवाँ सं0 1983, राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली.

यह पथ बंधु था : नरेश मेहता
चतुर्थ सं0, 1982, लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद.

व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के संदर्भ में उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा : डा0 रमाकान्त श्रीवास्तव
प्रथम सं0, 1977, वाणी प्रकाशन,
दिल्ली.

विचार और अनुभूति : डा0 नगेन्द्र
प्र0सं0 नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली.

शेखर एक जीवनी पहला भाग : अज्ञेय
पंचम सं0, 1955, सरस्वती प्रेस,
बनारस.

शेखर एक जीवनी - भाग दो : अज्ञेय
प्रथम नवीन सं0 1984,
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली.

शेखर एक जीवनी: मूल्यांकन : डा0 गोपाल राय
द्वितीय सं0 1984, ग्रन्थ निकेतन, पटना.

सर्जना और सन्दर्भ : अज्ञेय
प्रथम सं0, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली.

संस्कृति का दार्शनिक विवेचन : डा0 देवराज
प्रथम सं0 1957, भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी.

हिन्दी काव्य में नियतिवाद : डा0 रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'
प्रथम सं0, 1964, किताब महल, इलाहाबाद.

हिन्दी उपन्यास : डा0 सुरेश सिन्हा
द्वितीय सं0 1972, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.

हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा : डा0 रामदरश मिश्र
द्वितीय सं0 1982, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.

हिन्दी उपन्यास : शिवनारायण श्रीवास्तव
प्रथम सं0 2016 वि0, सरस्वती मंदिर, वाराणसी.

हिन्दी उपन्यास सृजन और सिद्धान्त : डा0 नरेन्द्र कोहली
प्रथम सं0 1977, सौरभ प्रकाशन, दिल्ली.

हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य : सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'
प्रथम सं0 1967, राधाकृष्ण प्र0, दिल्ली.

हिन्दी उपन्यास के पदचिन्ह : डा0 मनमोहन सहगल
प्रथम सं0 1973, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली.

हिन्दी साहित्य में विविधवाद : डा० प्रेम नारायण शुक्ल
प्र० सं०, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर.

हिन्दी विश्वकोश : नगेन्द्रनाथ बसु, कलकत्ता, भाग 16.

हिन्दी साहित्य कोश : डा० धीरेन्द्र वर्मा
प्रथम सं०, ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी.

हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (प्रथम भाग) : डा० राजबली पाण्डेय
सं० 2014, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.

2. अप्रकाशित संदर्भित शोध-प्रबंध

युग यथार्थ का हिन्दी उपन्यासों में रचनात्मक प्रयोग : सुरेन्द्र मणि त्रिपाठी, 1981,
डी०फिल् थीसिस,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद.

3. संस्कृत के संदर्भ-ग्रन्थ

अमरकोश — योगदर्शन
शब्द कल्प द्रुम — वाल्मीकि रामायण
माघकृत शिशुपाल वध — श्रीमद्भगवद्गीता
योगवशिष्ठ — ईशावास्योपनिषद

4. अंग्रेजी के संदर्भ-ग्रन्थ

इनसाइक्लोपीडिया - रैलिजन एण्ड एथिक्स.

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका.

द डिक्शनरी आफ फिलासफी.

इल्यूजन एण्ड रियलिटी - क्रिस्टोफर काडवेल.

द नेसेसिटी आफ आर्ट - अर्नेस्ट फिशर.

द नावेल एण्ड द पीपुल - राल्फ फॉक्स.

5. पत्र-पत्रिकायें

आलोचना.

सा0 हिन्दुस्तान.

सा0 भारत.

———::0::———